श्री आवश्यक सूत्र

E निर्युक्ति - भद्रबाहु स्वामी (वि.सं. 500-600)

D 1. मलयगिरीय टीका (वि.सं. 1150-1250)

A 2. आवश्यक चूर्णी - जिनदासगणि महत्तर (वि.सं. 650-750)

B 3. हरिभद्रीय टीका (वि.सं. 757-827)

E 4. लघुवृत्ति - तिलकाचार्य (पूनमीय गच्छ - वि.सं. 1296)

G 5. आवश्यक निर्युक्ति दीपिका - माणिक्यशेखर सूरि (अंचल गच्छ - विक्रम की 15मी सदी)

C 6. हरिभद्रीयवृत्त्यनुसार टीप्पणक - मलधारी हेमचंद्र सूरि (सं. 1180 में कातपधर्म)

F 7. हरिभद्रीय वृत्त्यनुसार अवचूर्णि - ज्ञानसागर सूरि (वि.सं. 1540)

पो. सु. 8, 2073
Dhanera Bhu.
Palitana

नमो नमः श्रीगुरु-राम-जगच्चन्द्रसूरये ॥

श्री आवश्यक सूत्रम्

Page
Date 1

प्रत्ययगीरीय टीका

मंगल

* पान्तु वः पार्श्वनाथस्य पादपद्मनखांशवः। अशेषविघ्नसङ्घातध्वान्तभेदैकहेतवः॥
जयति जगदेकदीपः प्रकटितनिःशेषभावसद्भावः।
कुमतपतङ्गविनाशी श्रीवीरजिनेश्वरो भगवान् ॥२॥

→ गुरु को नमस्कार ॥१॥

→ यद्यपि आवश्यक निर्युक्ति की अनेक विचित्र विवृत्ति हैं किंतु वे कठिन हैं तथा वर्तमान में लोग जड़बुद्धि वाले हैं, अतः विवृत्ति का संरम्भ है ॥२॥

→ बुद्धिमान लोगों की प्रवृत्ति प्रयोजनादि बिना नहीं होती अतः प्रयोजनादि -

* प्रयोजन

अपर (अनंतर)		अपर (परंपर)	
कर्ता	श्रोता	कर्ता	श्रोता
सत्त्वानुग्रह	आवश्यक श्रुतस्कंध के अर्थ का परिज्ञान	मोक्ष	मोक्ष

प्र. आवश्यक श्रुतस्कंध के ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति कैसे? उ. ज्ञान और क्रिया से मोक्ष होता है। आवश्यक ज्ञान और क्रियात्मक है। उन दोनों की प्राप्ति आवश्यक के ~~श्रवण~~ श्रवण से होती है।

* अभिधेय - सामायिकादि।

* संबंध - २ प्र. -

1. उपाय - उपेय भाव रूप लक्षण वाला - यह तार्किक शैली के अनुसार है। वचन रूप आवश्यक = उपाय। सामायिकादि का ज्ञान = उपेय अथवा मुक्ति = उपेय।
2. गुरुपर्वक्रमलक्षण - उद्देसे निद्देसे य.. इत्यादि गाथा से निर्युक्तिकार स्वयं कहेंगे।

प्र. शास्त्र-अर्थ को पढ़ने वालों को स्वयमेव ही प्रयोजनादि का ज्ञान हो जाएगा अतः शास्त्र के आदि में प्रयोजनादि का उपन्यास निरर्थक है?

उ. नहीं क्योंकि जिन्होंने शास्त्र-अर्थ को नहीं जाना है उनकी प्रवृत्ति का हेतु होने से आदि में प्रयोजनादि उपन्यास सफल है।

प्र. बुद्धिमानों की प्रवृत्ति तो निश्चय पूर्वक होती है। तो प्रयोजनादि कहने पर भी शास्त्रार्थ नहीं जानने वालों को निश्चय प्राप्त नहीं होता क्योंकि आप्त अर्थ के प्रति वचन की प्रमाणता नहीं है (अर्थात् किसी के कुछ भी कहने से वह वचन सच नहीं होता अतः संशय तो रहता है और संशय से प्रवृत्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि यदि वह संशय

पूर्वक प्रवृत्ति करता है तो उसकी बुद्धिमत्ता की क्षति का दोष आता है। अतः प्रयोजनादि के उपन्यास की सार्थकता कैसे है?

3. यह तो विचारे बिना बोला गया है क्योंकि बाह्य अर्थ प्रति वचन की प्रमाणता होती है। यदि वचन की प्रमाणता न स्वीकारे तो सभी व्यवहारों के उच्छेद की आपत्ति आएगी। अतः प्रयोजनादि के उपन्यास से बुद्धिमान् को अभिधेयादि का ज्ञान होगा और वह प्रवृत्ति करेगा।

9. यदि बाह्य अर्थ के प्रति वचन का प्रामाण्य है तो अभिधेयादि का ज्ञान होने से शास्त्र में बुद्धिमान् की प्रवृत्ति निरर्थक है क्योंकि अभिधेयादि का ज्ञान ही प्रवृत्ति का फल है और वह फल तो प्रयोजनादि के उपन्यास से ही सिद्ध हो गया?

3. इस उपन्यास से सामान्य ज्ञान होता है क्योंकि यहाँ आदि में सामान्य से ही प्रयोजनादि कहे जाते हैं। विशेष से संपूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसलिए विशेष के ज्ञान के लिए बुद्धिमान् शास्त्र में प्रवृत्ति करता है।

अथवा

यदि वचन का अप्रामाण्य स्वीकारो तो भी कोई क्षति नहीं है। क्योंकि संशय से भी प्रवृत्ति होती है। संशय २ प्र. - १. अर्थ संशय eg. तृष्यादि सामग्री है अतः धान्य की निष्पत्ति हो सकती है। २. अनर्थ संशय - eg. जो यह विष खाएगा वह मरेगा या नहीं? इन दोनों में अनर्थ संशय में भय होने से किसी जीव की प्रवृत्ति का हेतु नहीं है। किंतु अर्थ संशय बुद्धिमानों की प्रवृत्ति का हेतु है क्योंकि अनर्थ की शंका नहीं होती और अन्य किसी को फल दिखता भी है। यह अधिकृत प्रयोजनादि के उपन्यास से उत्पन्न संशय अनर्थ संशय नहीं है अतः बुद्धिमानों की प्रवृत्ति होती है।

मंगल → 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि। अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्वापि यान्ति विनायकाः'। यह आवश्यक का अनुयोग भी मोक्ष का बीज होने से कल्याण रूप है अतः इसमें विघ्न न हो इसलिए उसके आरंभ में मंगल का उपन्यास करते हैं। वह मंगल आदि में, मध्य में और अंत में होता है।

9. तीन मंगल की स्थापना योग्य नहीं है क्योंकि आदि मंगल से ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि हो जाती है?

3. आदि मंगल मात्र से अभीष्ट अर्थ की सिद्धि न होने से यह गलत है। वह इस प्रकार -
1. आदि मंगल - विवक्षित शास्त्र विघ्न बिना पार पहुँचे इसलिए।
2. मध्य मंगल - ग्रहण किए हुए शास्त्र के अर्थ के स्थिरीकरण के लिए।
3. अंत मंगल - शिष्य प्रशिष्य परंपरा में शास्त्र के अव्यवच्छेद के लिए।

आदि मंगल - 'आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं चेव' इत्यादि से क्योंकि ज्ञान परम मंगल है।

मध्य मंगल - 'वंदण चिइ किइकम्म' इत्यादि से क्योंकि वंदन विनय रूप है, विनय आभ्यंतर तप है और तप मंगल है।
पर्यंत मंगल - 'पच्चक्खाण' इत्यादि से क्योंकि पच्चक्खाण भी तप का भेद होने से मंगल है।

प्र. यह मंगल जिन शास्त्र से भिन्न है या अभिन्न? यदि (1) भिन्न मानो तो शास्त्र मंगल से भिन्न होने से अमंगल्य होगा। (a) स्वभाव से अमंगल शास्त्र अन्य मंगल के उपन्यास से मंगल्य नहीं किया जा सकता जैसे कांच वैडूर्यमणि नहीं किया जा सकता। इसलिए मंगल का उपन्यास निरर्थक है। (b) यदि मंगल करने के लिए अशक्य ऐसे शास्त्र का भी मंगल किया जाता है तो अनवस्था दोष होगा - जिस प्रकार अमंगल शास्त्र का मंगल कहा गया, उस प्रकार मंगल का भी अन्य मंगल, उसका भी अन्य मंगल किया जाना चाहिए।
(2) यदि अभिन्न मानो तो शास्त्र मंगल ही होने से (a) अन्य मंगल करना निरर्थक है। यदि (b) मंगल का भी मंगल करते हो तो अनवस्था - मंगल का मंगल, उसका भी मंगल, उसका भी अन्य मंगल, ... इस प्रकार (c) यदि ऐसी अनवस्था न मानो तो शास्त्र के अमंगल्यत्व की आपत्ति - ऐसा स्वीकारना पड़े, कि मंगल के योग में ही शास्त्र मंगल है अतः भावार्थ यही हुआ कि शास्त्र स्वयं अमंगल्य है किंतु अन्य मंगल के योग से वह मंगल्य है।

उ. (1) यहाँ पहला पक्ष तो हम स्वीकारते ही नहीं है अर्थात् हम मंगल को शास्त्र से भिन्न नहीं मानते। इसलिए उस पक्ष के दोष हमें लागू नहीं पड़ते।
यदि हम मंगल शास्त्र से भिन्न माने तो भी आपके द्वारा बताए गए दोष का हमें अवकाश नहीं है क्योंकि - जगत में दो प्र. की वस्तु हैं - ~~(क) भाव - जो स्वरूप से बदल नहीं सकती है eg. कांच को वैडूर्यमणि नहीं बना सकते (ख) अभाव्य~~
(क) भाव्य - जो स्वरूप से बदल सकती है eg. शास्त्र अमंगल होने पर भी मंगल के योग में मंगल होते हैं क्योंकि मंगल स्व-पर को तद्रूप (मंगल रूप) बनाने में समर्थ है। जैसे नमक स्वयं और दूध दोनों को खारापन प्राप्त कराता है, दीप स्व-पर दोनों को प्रकट करता है, वैसे मंगल स्व-पर दोनों का मंगल करता है।
(ख) अभाव्य - कांच वैडूर्य रूप नहीं हो सकता, इस प्रकार अन्य भी अभाव्य वस्तु है।
अतः इस पक्ष में भी कोई दोष नहीं है।
(2) दूसरे पक्ष में भी मंगल का उपादान निरर्थक नहीं है क्योंकि हम मंगल का उपादान शास्त्र के मंगलत्व के लिए नहीं करते किंतु शिष्य को खबर पड़े कि यह शास्त्र मंगल है इसलिए शिष्य प्रति में मंगल के परिग्रह के लिए करते हैं। इसलिए अन्य मंगल के उपादान में कैसे अनवस्था दोष या कैसे शास्त्र का अमंगल्यत्व? अर्थात् नहीं है।

प्र. यदि शिष्य प्रति में मंगल का परिग्रह न हो तो भी शास्त्र स्वतः मंगल होने से तथास्वभाव के कारण उसका कार्य तो करने ही वाला है। इसलिए मंगलोपादान निरर्थक है।

उ. भावों की शक्ति विचित्र है। कोई ~~शक्ति~~ वस्तु उस प्रकार से ग्रहण की जाती हुई

स्वकार्य की साधक होती है eg. सुवर्ण सुवर्णरूपतया ग्रहण करने पर ही फल देता है। कोई वस्तु तथास्वरूप से ग्रहण न करने पर भी स्वकार्य की साधक होती है eg. व्याधि व्याधिरूपतया ग्रहण न की जाए तो भी अनिष्ट करती है।
मंगल भी मंगलबुद्ध्या ग्रहण कराता ही मंगल का फल देने में समर्थ है eg. साधु सम्यग्दर्शन-चारित्र के परिणाम होने से मंगल है। भव्य जीव यदि साधु को मंगल रूप ग्रहण करे तो ही कार्यसाधक होता है। इसी प्रकार शास्त्र भी।

प्र. यदि मंगलबुद्धि से ही मंगल कार्य करता है तो आप अमंगल को भी मंगलबुद्धि से ग्रहण कर लो? क्योंकि आपके मत में मन ही प्रमाण है।
उ. मंगल स्वरूप से मंगल हो और तद्रूप ग्रहण किया जाता हो तो ही कार्य करता है। eg. सुवर्ण हो और सुवर्णबुद्धि से ग्रहण किया जाता हो तो ही वह फल देता है। पीतल को सुवर्ण बुद्धि से ग्रहण करने पर फल नहीं मिलता।

प्र. यदि शिष्यमति मंगलपरिग्रह के लिए ही मंगलोपन्यास है तो आदिमंगल ही पर्याप्त है, तीन मंगल से क्या?
उ. आदि मंगल से आदि में मंगल होता है, मध्य मंगल से मध्य में और अंतिम मंगल से अंत में मंगलमति परिग्रह होता है।

प्र. यदि इस प्रकार तीन मंगल करोगे तो बीच में 2 अंतराल मंगलरहित रहेंगे?
उ. जिस प्रकार लड्डु के उभाग करने पर बीच में 2 अंतराल नहीं बचते वैसे ही शास्त्र उभाग में विभक्त होने से 2 अंतराल बाकी रहने की संभावना नहीं है।

प्र. शास्त्र की स्वतः मंगलता कैसे?
उ. निर्जरा का अर्थ हेतु होने से। प्रयोग-
अधिकृतं शास्त्रं मंगलं निर्जरार्थत्वात् तपोवत्।

प्र. शास्त्र निर्जरा का हेतु कैसे?
उ. ज्ञान रूप होने से शास्त्र निर्जरा का हेतु है। क्योंकि ज्ञान निर्जरा का हेतु है -
नं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाहि वासकोडीहिं। तन्नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमेत्तेणं॥

★ मंगल शब्द के अर्थ
1. मगु गु प्रगु इत्यादि धातु। 'उदितः' से न् आगम।
मङ्गयते अधिगम्यते अस्य प्राप्यते हितं अनेन इति मङ्गलम्। अलु प्रत्यय।
⇒ हित जिसके द्वारा प्राप्त किया जाता है।
2. मङ्गयते प्राप्यते स्वर्गः अपवर्गः वा अनेन इति मङ्गः धर्मः (चम् प्रत्यय)। मङ्गं लाति

मङ्गलम् ('आतोऽनुपसर्गाद्दाम:' सूत्र से 'ड' प्रत्यय)
⇒ मंग यानि धर्म। मंगल = धर्म की प्राप्ति का कारण।

3. 'मदु मदु मूषायां' मण्ड्यते अलङ्क्रियते शास्त्रं अनेन इति मङ्गलम् । (अल प्रत्यय)
⇒ शास्त्र जिसके द्वारा अलंकृत हो।

4. मन् ज्ञाने 'मन्यते ज्ञायते निश्चीयते विघ्नाभाव: अनेन इति मङ्गलम्
⇒ जिसके द्वारा शास्त्र में विघ्न का अभाव निश्चित किया जाए।

5. 'मदै हर्षे' मादयन्ति हृष्यन्ति विघ्नाभावेन शिष्या अनेन इति मङ्गलम्
⇒ विघ्न के अभाव से जिसके द्वारा शिष्य खुश हों।

6. मह पूजायां' मह्यते पूज्यते शास्त्रं अनेन इति मङ्गलम् (अल प्रत्यय और निपातन)
⇒ शास्त्र जिसके द्वारा पूजा जाए।

7. मां गालयति अपनयति संसारात् इति मङ्गलम्
⇒ जो मुझे संसार से दूर करे।

8. मलं पापं गालयति स्फेरयति इति मङ्गलम्
⇒ पाप को दूर करे।

9. मा भूत् गल: विघ्न: अस्मात् इति मङ्गलम्
⇒ इससे विघ्न न हो। [पृषोदरादि से रूप की निष्पत्ति]

★ मंगल शब्द के निक्षेप

1. नाम निक्षेप →
→ 'नाम' का लक्षण - ⓐ किसी भी वस्तु का अन्य अर्थ में रहा हुआ नाम, वह उस अर्थ से निरपेक्ष वस्तु का नाम रखना। eg. इंद्र = परम ऐश्वर्य युक्त, यह नाम किसी ब्राह्मण के पुत्र का रखना वह नाम इन्द्र।

ⓑ यादृच्छिक - यदृच्छा से, स्वेच्छा से अन्य अर्थ में न रहा हुआ भी नाम रखना। eg. किसी का डित्थ, डवित्थ आदि नाम रखना।
यह नाम उसके पर्यायवाची शब्द से नहीं कहा जा सकता। eg. ग्वालपुत्र का नाम 'इन्द्र' रखा किंतु उसे शक्र, पुरन्दर आदि नहीं कह सकते।
→ दोनों ही प्रकार के लक्षण वाला नाम प्राय: जहाँ तक वह वस्तु होती है, तब तक होता है।

2. 'नाम आवकहियं' सिद्धांत में कहा गया है कि नाम तो यावत्कथिक होता है, वह कैसे ?

3. वह प्रतिनियत देशादि की संज्ञा के आश्रय से कहा है। eg. उत्तर कुरु आदि।
→ ~~इस लक्षण वाला नाम~~
→ इस प्रकार मंगल शब्द के अर्थ से रहित किसी जीव का या अजीव का 'मंगल' ~~इस~~ नाम करना, वह नाममंगल। यह नाम मंगल 3 प्र. -
ⓐ जीव विषयक - eg. सिंधु देश में अग्नि को मंगल कहा जाता है।

(b) अजीव विषयक – eg. लाट देश में मुड़े हुए धागे को (दोरी को) मंगल्य कहते हैं।
(c) उभय विषयक – eg. वंदनमाला (फूल की माला) को मंगल्य कहना।

2. स्थापना निक्षेप →
→ स्थापना का लक्षण – (a) सद्भाव – उस वस्तु के अर्थ से रहित किंतु उस वस्तु की बुद्धि से उसके आकार वाली जो ~~वस्तु~~ लेप्यादि कर्म, वे सद्भाव स्थापना।
(b) असद्भाव – उस वस्तु के आकार रहित जो अक्षादि में स्थापना की जाए, वह।
→ वह अल्पकालिक और यावद्द्रव्यभावि दोनों होती है।
→ इस प्रकार कोई लेप्यादि कर्म या ~~अक्षादि~~ का मंगल अक्षादि में स्थितिकारि की स्थापना, वह स्थापना मंगल।

3. द्रव्य निक्षेप →
→ द्रव्य का लक्षण – द्रव्य → द्रवति गच्छति तांस्तान् पर्यायान् अर्थेतनान् ज्ञानीनांश्च मुञ्चति इति द्रव्यं → जो आगे-आगे की पर्यायों को प्राप्त करे और पुरानी पर्यायों को छोड़े वह द्रव्य।
भूत काल के भाव या भावि भाव का जो कारण है, वह द्रव्य कहा जाता है।
→ द्रव्य मंगल 2 प्र.
(a) आगमतः – आ समन्तात् गम्यते वस्तुतत्त्वं अनेन इति आगमः → सब प्रकार से जिसके द्वारा वस्तु तत्त्व जाना जाए। यहाँ 'गम्ययपः कर्माधारे' से कर्म में पंचमी अर्थात् आगम की अपेक्षा से, श्रुत ज्ञान की अपेक्षा से।
आगम से मंगल शब्द के अर्थ का ज्ञाता किंतु उसमें अनुपयुक्त द्रव्य मंगल होता है।
Q. ज्ञान तो भाव है, तो वह द्रव्य कैसे?
A. ज्ञान उपयोगात्मक भाव है, लब्धिरूप नहीं। आत्मा अनुपयुक्त है किंतु उस ज्ञान (उपयोग) की लब्धि सहित है। लब्धि सहित होने से वह आत्मा ज्ञान का कारण है। 'भूत या भावि भाव का कारण द्रव्य' इस व्याख्या से अनुपयुक्त आत्मा द्रव्य है।

यह आगम से द्रव्य मंगल पूर्वाचार्यों द्वारा नयों से विचारा गया है। ७ नय हैं।
(1) नैगम – यह सामान्य और विशेष को अलग-अलग स्वीकारता है। अतः इस मत से एक अनुपयुक्त एक द्रव्य मंगल, अनेक अनुपयुक्त अनेक द्रव्यमंगल।
(2) संग्रह – यह एक सामान्य को ही स्वीकारता है। वह विशेषवादी को पूछता है – विशेष सामान्य से अलग है या नहीं? यदि अलग है तो विशेष खपुष्प जैसे असत् हो जाएगा, ~~यदि एक ही है~~ क्योंकि 'सत्' इस प्रकार ज्ञान कराने वाला सामान्य ही है। यदि अलग मानो तो विशेष में सामान्य न रहने से 'सत्' प्रत्यय नहीं होगा। यदि अलग न मानो तो भी वह विशेष सामान्य ही है। यह नय जगत् में एक ही द्रव्य मंगल स्वीकारता है क्योंकि सामान्य जगत् में एक ही है।

(3) व्यवहार- विशेषवादी है। वह संग्रह नय को कहता है- दोहन, वहनादि क्रिया में जुड़ने से विशेष ही तात्विक है। इसके मत में भी नैगम की तरह एक अनुपयुक्त एक द्रव्यमंगल, अनेक अनुपयुक्त अनेक द्रव्य मंगल।

प्र. नैगम भी विशेष मानता है और व्यवहार भी। इन दोनों में क्या अंतर?

उ. नैगम सामान्य विशेष दोनों स्वीकारता है, व्यवहार मात्र विशेष स्वीकारता है।

सिद्धसेन जी के मत में 6 ही नय स्वीकारे जाते हैं। वे नैगम का संग्रह और व्यवहार में अन्तर्भाव करते हैं।

(4) ऋजुसूत्र- जो अतीत, अनागत और परकीय है, वह अवस्तु है। क्योंकि अतीत नष्ट हो गया है, अनागत से प्राप्त नहीं हुआ और परकीय (दूसरे का) से अर्थक्रिया कारी नहीं होता। eg. देवदत्त का धन यज्ञदत्त के लिए कार्य न करने से असत् है। इसलिए इस मत में द्रव्य मंगल्य एक ही है।

(5-7) शब्द - समभिरूढ - एवंभूत → ये द्रव्य मंगल नहीं मानते क्योंकि द्रव्य मंगल्य ज्ञाता और अनुपयुक्त को कहते हैं। ज्ञाता और अनुपयुक्त एक-दूसरे के विरोधी हैं। यदि ज्ञाता हो तो कैसे अनुपयुक्त, अनुपयुक्त हो तो कैसे ज्ञाता? ज्ञान का उपयोगात्मक होने से उपयोग के अभाव में ज्ञान का भी अभाव है।

(1) नोआगमतः - नो शब्द 3 अर्थ में - देश, अभाव, मिश्र। अर्थात् आगम के अभाव से, आगम के एक देश से या आगम के साथ मिश्र।

इस अपेक्षा से द्रव्य मंगल 3 प्र. -

(a) शरीर - मंगलपदार्थ के ज्ञाता का मृत शरीर।

(b) भव्यशरीर - जो बालक अभी 'मंगल' शब्द का अर्थ नहीं जानता किंतु भविष्य में अवश्य जानेगा।

(c) तद्व्यतिरिक्त - जिनोक्त क्रिया, जिनोक्त क्रिया करने वाले मुनि किंतु अनुपयुक्त, चारित्र का परिणाम, चारित्रपरिणाम के योग्य बालक शरीर, शोभन वर्णादि गुण वाले सुवर्ण-दधि इत्यादि।

क्रिया द्रव्य मंगल्य है। उसे अनुपयोग से करता साधु भी द्रव्य मंगल्य है। चारित्र का परिणाम ज्ञान से भिन्न है, वह भी नोआगम से भूत काल की अपेक्षा द्रव्य मंगल है। बालक को भविष्य में चारित्र का परिणाम अवश्य होने वाला होने से वह भी द्रव्य मंगल है।

4. भावमंगल्य →

→ भाव का लक्षण - विवक्षित क्रिया की अनुभूति से युक्त भाव सर्वज्ञों द्वारा भाव कहा गया है।

eg. इन्दन क्रिया से युक्त इन्द्र आदि।

→ भाव मंगल्य 2 प्र. -

(a) आगमतः - मंगल्य पद के अर्थ का ज्ञाता और उपयुक्त।

प्र. मंगल पदार्थ के ज्ञानोपयोग मात्र से पुरुष भाव मंगल कैसे हो जाता है? अग्नि के ज्ञान

में उपयुक्त माणवक अग्नि नहीं होता क्योंकि दहन-पचनादि अर्थ क्रिया का असाधक है।

उ. 'अर्थाभिधानप्रत्ययास्च तुल्यनामधेया:' अर्थ-नाम और ज्ञान तुल्य हैं तथा सभी प्रवादी को अविसंवादी रूप से स्वीकार है। कैसे? -
लोक में चौड़े गले-पेट के आकार वाले अर्थ को 'घट' कहते हैं, उसका वाचक नाम भी घट है, उसका ज्ञानरूप प्रत्यय भी घट है। इन तीनों में कथंचित् अभेद है। लोक में कोई पूछे - यह क्या दिखता है? घट, यह क्या बोलता है? घट, इसके मन में क्या स्फुरता है? घट, इस प्रकार तीनों में कथंचित् अभेद है। यदि ज्ञान और ज्ञानी में अभेद न हो तो ज्ञान होने पर भी उसे 'घट' का पता नहीं चलना चाहिए क्योंकि ज्ञानी ज्ञानमय नहीं होगा।
इस प्रकार पदार्थ, नाम, ज्ञान और ज्ञानी में कथंचित् अभेद है। इसी प्रकार अग्नि आदि में भी जोड़ना।

प्र. अग्नि का तो भास्वरादि अमूर्त आकार होता है। वह आकार अग्नि के ज्ञान का नहीं होता। अत: ज्ञानी का भी अग्नित्व कैसे हो?

उ. ज्ञान निराकार नहीं होता। उसके आकार के आधार से ही ज्ञानी को पता चलता है कि अग्नि ऐसी भास्वरादि आकार वाली है। यदि ज्ञान को अनाकार मानें तो उस ज्ञान से मात्र अग्नि ही नहीं अन्य कोई भी पदार्थ का ज्ञान भी होने की आपत्ति आएगी। इसलिए ज्ञान का अग्न्याकार होने से उससे कथंचित् अभेदी ज्ञानी भी अग्न्याकार होता है।

प्र. यदि ज्ञानी अग्न्याकार है तो दहन-पचन-प्रकाशनादि अर्थ क्रिया क्यों नहीं होती?

उ. सभी प्रकार की अग्नि भी दहनादि अर्थ क्रिया नहीं करती जैसे प्रसन्नच्छन्न अग्नि। इसी प्रकार ज्ञानी भी नहीं करता।

इस प्रकार भंगत्व शब्द के अर्थ का ज्ञाता और उपयुक्त, सन्नय होने से भाव मंगल है।

(ख) नोआगमत: - नोआगम से 'विशुद्ध क्षायिकादि भाव' मंगल है। अथवा आगम सिवाय ५ ज्ञान हैं।

→ नो शब्द द्रव्य और भाव मंगल में सर्वनिषेध वाचक है।

प्र. नाम-स्थापना-द्रव्य निक्षेपों में द्रव्यत्व तो समान है क्योंकि विवक्षितभाव से शून्य है। इन तीनों में अंतर है?

उ. स्थापना इंद्र में इंद्र का आकार दिखता है, कर्ता को सच्चे इंद्र का अभिप्राय होता है, द्रष्टा को उसके दर्शन से सच्चे इंद्र की बुद्धि होती है, प्रणाम करने वाले को फल भी प्राप्त

होता है, इस प्रकार नाम इंद्र या द्रव्य इंद्र में नहीं होता। इसलिए नाम-द्रव्य से स्थापना का आकार, अभिप्राय, बुद्धि, क्रिया, फल इन के आधार पर भेद होता है।
द्रव्य इंद्र भाव इंद्र के स्वरूप को प्राप्त करता है या कर चुका है। उपयोग की अपेक्षा भी उपयोगता को प्राप्त करेगा या कर चुका है। नाम और स्थापना इंद्र कभी भी भाव इंद्रता को प्राप्त नहीं करते। यह द्रव्य निक्षेप का भेद है।
स्थापना और द्रव्य के लक्षण से नाम भिन्न स्वरूप वाला है। अतः द्रव्य-स्थापना से नाम निक्षेप की भिन्नता है।

प्र. भावों का अर्थक्रिया कारी होने से भावमंगल ही प्रधान है। जो नामादि हैं, वे तो संकल्पमात्र से सत्तावाले हैं अतः उनके उपन्यास से क्या?

उ. ① नामादि भी भाव की तरह तात्त्विक हैं क्योंकि सामान्य से उनकी भी भाव की तरह शब्द से प्रतीति होती है। सामान्य से इंद्र कहने पर शंका होती है कि इसके द्वारा नाम इंद्र की विवक्षा की गई है या स्थापना, द्रव्य, भाव इंद्र की।

② नाम-स्थापना-द्रव्य तात्त्विक हैं भाव के अंग होने से। उनमें भाव की अंगता भाव के परिणाम का कारण होने से है। जैसे मंगल वाक्य या सिद्धादि का नाम सुनकर, भगवान् की प्रतिमा - द्रव्य साधु-दीक्षार्थी आदि को देखकर भी कितने ही जीवों को सम्यग्दर्शनादि भावों की प्राप्ति होती है। अतः ये भी भाव जिन-भाव साधु के अंग हैं।

③ वस्तु का जो नाम-अभिधान है, वह अभिधेय धर्म के बिना नहीं होता। अभिधेय धर्म को भी नाम कहा जा सकता है, अभिधेय में अभिधान के उपचार से। वस्तु का नियत आकार स्थापना है। तद् तद् रूप से परिणमन की शक्ति होने से वह वस्तु द्रव्य है। साक्षात् उसी पर्याय में प्रगट होना भाव है। अतः एक वस्तु नामादि-चतुष्टयात्मक ही है।

प्र. नामादि ५ निक्षेप में से द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक कौन-कौन से निक्षेप स्वीकारते हैं?

उ. ★ द्रव्यनय नाम-स्थापना-द्रव्य को और पर्याय नय भाव निक्षेप को स्वीकारता है।

अब. नोआगम से भावमंगल नंदी भी है। नंदी शब्द का अर्थ क्या है? नन्दि = प्रमोद, हर्ष। नन्दि का हेतु होने से ज्ञानपंचक भी नंदि है। मंगल की तरह यह भी ५ भेद वाला है - नाम नंदि, इत्यादि। नाम-स्थापना सुगम है। द्रव्य नंदि में नोआगम से तद्व्यतिरिक्त ३९ के वाजिंत्र - भंभा मकुंद मद्दल कडम्ब झल्लरि हुडुक्क कंसाला।

काहलि तलिमा वंसो संखो पणवो य बारसमो॥

भाव नंदि - आगम से नंदि पद पदार्थ का ज्ञाता - उपयुक्त।
नोआगम से ३९ के ज्ञान।
३९ के ज्ञान -

~~आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, और केवलज्ञान।~~

गाथा 1
चूर्णि → मंगल में नवकार के 5 पद।

→ कोई शिष्य आचार्य के को वंदन कर कहता है - भगवन्! मैं संसार से निस्तरण के उपाय रूप आवश्यक अनुयोग को सुनने की इच्छा करता हूँ। आचार्य उसे योग्य जानकर आवश्यक अनुयोग कहते हैं।

शिष्य और आचार्य के अनेक विशेषण।

→ मंगल 3प्र.-

1. आदि मंगल- सामायिक अध्ययन। क्योंकि इस अध्ययन में तीर्थंकर-गणधर की उत्पत्ति आदि अनेक अर्थ कहे गए हैं। उन्हें जो श्रद्धा करता है, श्रद्धाकर करणीय में प्रवृत्त होता है और अकार्य से भटकता है, वह सर्व मंगल के निधान रूप निर्वाण को प्राप्त करता है।
सूत्र से भी 'करेमि भंते! सामाइयं' आदि सूत्र मंगल है क्योंकि उससे, 'सर्वजीवों पर समता करना चाहिए' इस प्रकार साधु प्रतिज्ञा करता है।

2. मध्य मंगल- वंदन अध्ययन क्योंकि वंदन करने हुए का नीचगोत्र कर्म क्षीण होता है तथा जिनशासन में धर्म विनय मूल वाला है।
सूत्र से 'इच्छामि खमासमणो! वंदिउं' मंगल है।
अथवा
मध्य मंगल चउवीसत्थय आदि है क्योंकि उससे दर्शन शुद्धि होती है।

3. अवसान मंगल- प्रत्याख्यान अध्ययन। क्योंकि आश्रव द्वार का संवर होने से नए पाप का आगम नहीं होता और तप से पूर्वसंचित कर्म की निर्जरा होती है।
सूत्र से भी 'नमोक्कारसहियं पच्चक्खामि' मंगल है।

→ प्र. यदि आदि-मध्य-अवसान मंगल हैं तो बीच के 2 अध्ययनादि क्या अमंगल हैं!?

उ. वे भी प्ररूपणा के लक्षण वाले और सर्वज्ञ भाषित होने से मंगल हैं। जैसे- अविरोधि द्रव्य के समवाय से बना मोदक सभी ओर से मीठा होता है, वैसे वे अंतराल भी श्रुतज्ञान रूप होने से मंगल हैं।

→ प्र. द्रव्य-भाव मंगल में क्या विशेष है?

उ. द्रव्य मंगल अनेकान्तिक और अनात्यंतिक है। अनेकांतिक यानि वह किसी के लिए मंगल है, किसी के लिए अमंगल है। अल्प अनात्यंतिक यानि कुछ काल बाद नष्ट होने वाला है।
भाव मंगल एकांतिक (यानि सभी के लिए मंगल है) और आत्यंतिक (यानि हमेशा रहने वाला है)।

हरिभद्रीय टीका → मंगल में जिनवरेंद्र, वीर, श्रुतदेवता, गुरु, साधु को नमस्कार।

टिप्पणक → मंगल में आदिनाथ भगवान्, शेष जिन को वंदन।

→ नमस्कार के उचित देवता 3प्र.-

1. अभीष्ट देवता → अभियुक्त सभी मुमुक्षु द्वारा पूजे जाए वे अभीष्ट। महावीरादि तीर्थंकर।
2. अभिप्रत देवता → कल्याण में प्रवृत्त व्यक्तियों द्वारा जो विघ्न के नाशक रूप में निश्चित किए जाएँ। ex. शासन देवतादि।
3. अधिकृत देवता → प्रस्तुत शास्त्र के प्रणेतृत्व रूप से जो अधिकृत किए जाएँ, जो संबंधित किए जाएँ ex. गणधरादि।

इस प्रकार हरिभद्र सूरि म. ने तीनों प्रकार के देवता को नमस्कार किया है।

→ 'यद्यपि मया वृत्तिः कृता' - इन वृत्तिकार द्वारा ४५०० श्लोक प्रमाण अन्य आवश्यक की वृत्ति की गई है, इस प्रकार का प्रवाद सुनाई सत्य लगता है। तो भी इन्होंने संक्षिप्त वृत्ति की रचना की।

प्र. यह संक्षिप्त वृत्ति क्यों रची?

उ. प्रज्ञादि दोष से कितने ही जीव संक्षेपरुचि वाले रहते हैं। अतः उन जीवों के अनुग्रह के लिए इस वृत्ति की रचना की।

दीपिका → मंगल में नंदिसूत्र की गाथाएँ तथा अंचल गच्छ की स्थविरावली।

→ स्तुति - 2प्र.- 1. प्रणाम रूप 2. असाधारणगुणोत्कीर्तन।

असाधारणगुणोत्कीर्तन 2प्र.- 1. स्वार्थसंपद् कहने वाला 2. परार्थ संपद् कहने वाला।

जो गुण स्वयं को लाभदायक हैं, वे स्वार्थ संपद् ex. ज्ञान, वचन इत्यादि।

जो गुण दूसरों को लाभदायक हैं, वे परार्थ संपद् ex. जगदानन्द, जगन्नाथ इत्यादि।

→ तप - परिमित काल के लिये इच्छानिग्रह।

नियम - यावज्जीव।

→ यः संपूर्ण आगमं पठितवान् स गणिः उच्यते। (मंगलाचरण में श्लो. ५)

प्रत्यभिज्ञीय टीका गा.1 आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं चेव ओहिनाणं च।
तह मणपज्जवनाणं केवलनाणं च पंचमयं॥1॥

अ. आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यव ज्ञान और केवलज्ञान।

★ आभिनिबोधिक की व्याख्या →

★ आ - अभिमुख, नि - नियत, बोध - बोध विशेष। ⇒ अर्थ के अभिमुख प्रतिनियत स्वरूप वाला बोध विशेष = आभिनिबोध।

1. आभिनिबोध एव आभिनिबोधिकं 'विनयादिभ्यः' सूत्र से स्वार्थ में 'इकण्'।

2. अभिनिबुध्यते अनेन अस्मात् अस्मिन् वा इति आभिनिबोधः तदावरणकर्मक्षयोपशमः तेन निर्वृत्तं आभिनिबोधिकं ⇒ जिससे अर्थ के अभिमुख बोध विशेष हो, वह कर्म का क्षयोपशम। उस क्षयोपशम से होने वाला ज्ञान आभिनिबोधिक।
अर्थात् इंद्रिय और मन के निमित्त वाला, योग्य देश में रही वस्तु के विषय वाला, स्पष्ट प्रतिभास वाला बोधविशेष।

★ श्रुतज्ञान की व्याख्या →

1. श्रूयते अनेन अस्मात् अस्मिन् वा इति श्रुतं तदावरणकर्मक्षयोपशमः। कार्य में कारण के उपचार से उससे होने वाला ज्ञान भी श्रुत।

2. श्रृणोति इति श्रुतं आत्मा। अभेदोपचार से ~~अ~~ ज्ञान भी श्रुत।
अर्थात् इंद्रिय-मन के निमित्त वाला, शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी, वाच्य-वाचक भाव पूर्वक शब्द से संसृष्ट अर्थ के ग्रहण का हेतु ज्ञान विशेष।

★ च शब्द से इन दोनों ज्ञान के स्वामी-काल-कारण-विषय-परोक्षत्व से साधर्म्य को प्रकट करने वाला है। -

1. स्वामी - जो मतिज्ञान के स्वामी हैं, वे ही श्रुतज्ञान के स्वामी हैं।
2. काल - मतिज्ञान का जितना स्थितिकाल है ⇒ श्रुतज्ञान का भी उतना ही है। प्रवाह की अपेक्षा से दोनों शाश्वत हैं, एक जीव की अपेक्षा से कुछ अधिक ६६ सागरोपम।
3. ~~काल~~ कारण - दोनों इंद्रिय और मन के निमित्त वाले हैं।
4. विषय - दोनों सर्वद्रव्य और असर्वपर्याय विषयक हैं।
5. परोक्षत्व - दोनों परोक्ष हैं।

★ एवकार अवधारण अर्थ में है - आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञान ही परोक्ष हैं, शेष ज्ञान नहीं।

★ 'परोक्ष' का अर्थ →

1. 'अशूङ् व्याप्तौ' ⇒ अश्नुते व्याप्नोति ज्ञानात्मना सर्वान् अर्थान् ~~अक्ष~~ इति अक्षः ⇒ जीव।
2. 'अश् भोजने' अश्नाति भुङ्क्ते पालयति यथायोगं सर्वान् अर्थान् इति अक्षः ⇒ जीव।
इस प्रकार जीव बनने के लिए द्रव्य मन और इंद्रिय पुद्गलमय होने से पर हैं, अलग हैं। उनसे जीव को जो ज्ञान हो, वह परोक्ष।
3. परैः इन्द्रियादिभिः सह इक्षा सम्बन्धः विषयविषयिभावलक्षणो यस्मिन् ज्ञाने, न तु साक्षात् आत्मना तत्परोक्षं।

* परोक्षत्व की चर्चा →

प. वैशेषिक- अक्ष यानि इंद्रिय। इंद्रियों को जो साक्षात् उपलब्धि हो वह प्रत्यक्ष और यह तो लोक में प्रसिद्ध है कि घटादि का ज्ञान प्रत्यक्ष है।

उ. यह गलत है क्योंकि इंद्रियाँ ज्ञान नहीं कर सकती। उनके अचेतन होने से ज्ञान करना संभव नहीं है- यहाँ प्रयोग है- परश्चेतनं तन्नोपलब्धा, परवत्, अचेतनत्वात्। यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि द्रव्येंद्रिय पुद्गलरूप होती है। यह हेतु संदिग्ध या अनैकांतिक भी नहीं है क्योंकि अचेतन को ज्ञान की शक्ति का अयोग ही है।

प. इंद्रियों को साक्षात् ज्ञान होने से यह प्रतिज्ञा प्रत्यक्ष बाधित है- चक्षु रूप को, कान शब्द को, नाक गंध को ग्रहण करते हैं।

उ. आत्मा शरीर और इंद्रिय के साथ एकमेक होकर रही है। जिससे सामान्य जीव दोनों में भेद न कर पाने से एक ही मानते हैं। किंतु परमार्थ से वहाँ आत्मा है ज्ञाता है।

प. आत्मा अत्यंग है और इंद्रिय अत्यंग कैसे?

उ. इंद्रिय के विगम में भी उसके उपलब्ध अर्थ के पुनः स्मरण से। कोई भी पूर्व में आँख से रूप को ग्रहण करता है, फिर आँख नष्ट होने पर भी उस रूप का स्मरण उसे होता है। यदि चक्षु ही द्रष्टा हो तो चक्षु अभाव में अर्थ का स्मरण नहीं होना चाहिए।
यहाँ स्मरण अनुभवपूर्वकता के साथ व्याप्त है। स्मरण व्याप्य है और अनुभव व्यापक।

प. हम इंद्रियों का उपलब्धृत्व नहीं जानते। किंतु जो ज्ञान इंद्रिय से होता है, वह प्रत्यक्ष है। ~~क्योंकि~~ इंद्रिय के व्यापार का व्यवधान होने से इंद्रिय साक्षात् उपलब्धा नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि इंद्रियाँ करण है, व्यवधान करने वाली नहीं है। जैसे- हाथ से भोजन करता देवदत्त हाथ के व्यापार का व्यवधान होने से साक्षात् भोक्ता नहीं है, ऐसा नहीं कहा जाता।

उ. जब आत्मा चक्षु आदि से ज्ञान करता है तब वह चक्षु आदि की सद्गुणता की अपेक्षा रखता है। जब आँख अच्छी है, तब बाह्य अर्थ स्पष्ट प्राप्त होता है। जब आँख में अंधारा-पित्त संक्षोभादि से विभ्रम होता है, तब बाह्य अर्थ विपरीत या संशय वाला प्राप्त होता है। अतः आत्मा इंद्रिय के पराधीन है।
जैसे- राजा परराष्ट्र के पुरुष को देखता हुआ भी 'उचित या अनुचित' इस प्रकार स्वयं के द्वारपाल के वचन से ही जानता है, साक्षात् स्वयं नहीं जानता। इसी प्रकार आत्मा भी बाह्य अर्थ को साक्षात् नहीं जानता किंतु इंद्रियों के सादृगुण्य के अवधारण से ही वस्तु के याथात्म्य का अवधारण करता है। इसलिए यह ज्ञान परोक्ष है।
तथा जो कहा कि 'हाथ से भोजन करता देवदत्त... भोक्ता नहीं है' वह भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि दृष्टांत और दार्ष्टान्तिक में विषमता है। भोक्ता भोजनक्रिया के अनुभवी को कहते हैं।

यहाँ भोजन क्रिया के अनुभव में देवदत्त को हाथ द्वारा व्यवधान नहीं किया जाता। हाथ मात्र कवलत्यागरूप करता है किंतु भोजन क्रिया का अनुभव साक्षात् देवदत्त करता है। इसके विपरीत आत्मा साक्षात् ज्ञान नहीं करता किंतु इंद्रियों के सादृगुण्य की अपेक्षा रखता है।

प्र. यह इंद्रिय के सादृगुण्य का अवधारण तो अनभ्यासदशा में होता है। अभ्यास दशा में पुरुष को जल्दी ज्ञान होने से इस इंद्रिय के सादृगुण्य की अपेक्षा नहीं रहती। इसलिए अभ्यास दशा में यह ज्ञान प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता?

उ. अभ्यास दशा में भी आत्मा को साक्षात् ज्ञान नहीं होता। केवल अभ्यास के प्रकर्ष से वह पूर्व में अवधृत अर्थ को जल्दी धार लेता है किंतु काल की सूक्ष्मता से वह ज्ञात नहीं होता। अपाय ज्ञान अवश्य ईहा और अवग्रह पूर्वक होता है।

प्र. आपने यह जो भी कहा है, वह सब उत्सूत्र है क्योंकि नंदिसूत्र में इंद्रियाश्रित ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है - 'पच्चक्खं दुविहं पन्नत्तं, तंजहा- इंदियपच्चक्खं नोइंदियपच्चक्खं'?

उ. यह सही है किंतु यह लोकव्यवहार की अपेक्षा से कहा गया है, परमार्थ से नहीं। दूसरे व्यवधान बिना इंद्रियाश्रित जो ज्ञान होता है, वह लोक में प्रत्यक्ष सिद्धान्त है कहा जाता है। क्योंकि उसमें धूमादि अन्य लिंग की अपेक्षा नहीं होती।
जो आत्मा से इंद्रियों की अपेक्षा बिना साक्षात् होता है वह परमार्थ से प्रत्यक्ष है।

प्र. यह कैसे पता चले कि व्यवहार की अपेक्षा से यह कहा है?

उ. वहीं पर आगे के सूत्र के अर्थ को विचारने से - 'परोक्खं दुविहं पन्नत्तं तंजहा- आभिणिबोहियनाणं सुयनाणं' इत्यादि।

★ अवधिज्ञान की व्याख्या →

1. अव शब्द - अधः शब्द के अर्थ में। अव- अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते परिच्छिद्यते अनेन इति अवधिः ⇒ नीचे-नीचे फैली हुई वस्तु को जिसके द्वारा जाना जाए।
2. अवधिः = मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमपि अवधिः ⇒ रूपी द्रव्यों विषयक ही ज्ञान करने रूप मर्यादा, प्रवृत्तिस्वरूप मर्यादा। इससे जनित ज्ञान भी अवधि।
3. अवधानं = आत्मनोऽर्थसाक्षात्करणव्यापारोऽवधिः ⇒ आत्मा का अर्थ को साक्षात् करने स्वरूप व्यापार।

★ च शब्द - मतिश्रुत ज्ञान के सार्थ अवधि ज्ञान का स्थित्यादि से साधर्म्य दिखाने के लिए
1. स्थिति- अवधि ज्ञान की स्थिति मतिश्रुत ज्ञान समान ही है।
2. विपर्ययसाधर्म्य- जैसे मिथ्यादर्शन होने पर मतिश्रुत ज्ञान विपरीत होते हैं, वैसे ही

अवधि ज्ञान भी विभंग ज्ञान हो जाता है।

3. स्वामी साधर्म्य - पूर्ववत्। अवधि ज्ञान मति-श्रुत ज्ञान से युक्त जीव को ही होता है।

4. लाभ साधर्म्य - मिथ्यादृष्टि देवादि को सम्यग्दर्शन होने पर एकसाथ तीनों ज्ञान प्रगट होने से।

* मनः पर्यव ज्ञान की व्याख्या →

परि = सर्वतः। भवनं गमनं वेदनं इति पर्यायः। भवनं भवः (औणादिक अ प्रत्यय)।

परि भवः पर्यवः। मनसि मनसो वा पर्यवः मनःपर्यवः।

⇒ सर्व ओर से मनद्रव्य का ज्ञान।

अथवा 'मनःपर्याय' पाठ ⇒ समान अर्थ ही है।

→ अन्य आचार्य - 'मनःपर्याय' मनोद्रव्याणि पर्येति = सर्वात्मना परिच्छिनत्ति मनःपर्यायम् (कर्मणोऽण् से अण् प्रत्यय)

यह ज्ञान 2½ द्वीप में रहे संज्ञी जीवों के मनद्रव्य विषयक ही है।

* तथा शब्द - अवधिज्ञान के साथ साधर्म्य बताने के लिए।

1. छद्मस्थत्व साधर्म्य - दोनों ज्ञान छद्मस्थ को ही होते हैं।

2. विषयसाम्य - दोनों के विषय रूपी द्रव्य।

3. भाव साधर्म्य - क्षायोपशमिक भाव।

4. प्रत्यक्ष साधर्म्य - दोनों ज्ञान साक्षात् प्रवृत्ति वाले होने से प्रत्यक्ष है।

* केवलज्ञान की व्याख्या →

1. केवल यानि एक, असहाय। मत्यादि ज्ञान से निरपेक्ष होने के कारण।

प्र. मत्यादि ज्ञान की निरपेक्षता कैसे?

उ. केवलज्ञान प्रगट होने पर मत्यादि ज्ञान असंभव होने से।

प्र. मत्यादिज्ञान स्व-स्व आवरण के क्षयोपशम में भी प्रगट होते हैं तो ये आवरण नष्ट हो जाने पर तो अवश्य होने ही चाहिए, इनका असंभव कैसे? चारित्रपरिणाम की तरह।

उ. जिस प्रकार सरकतादि प्रणि मल से लिप्त होने पर जैसे-जैसे कुछ भाग में उसका मल दूर होता है, वैसे-वैसे उसकी अभिव्यक्ति अनेक प्रकार से क्वचित्-कदाचित्-कथंचित् होती है। उसी प्रकार जब तक आत्मा के समस्त ज्ञानावरण दूर नहीं होते, तब तक जैसे-जैसे क्षयोपशम कम-ज्यादा होता है, वैसे-वैसे मतिश्रुतादि रूप अनेक प्रकार से ज्ञान होता है।

जब प्रणि समस्त मल दूर होता है, तब उसकी अभिव्यक्ति एक रूप में अतिस्पष्ट होती है। वैसे ही आत्मा में समस्त ज्ञानावरण दूर होने पर ज्ञान एकरूप होता है।

2. केवल = शुद्ध, संपूर्ण मल दूर होने से।
3. केवल = सकल, संपूर्ण आवरण हटने से।
4. केवल = असाधारण, अन्य कोई ज्ञान सदृश न होने से।
5. केवल = अनंत, ज्ञेय अनंत होने से।

* च शब्द - मनः पर्यय के साथ अपुन साधर्म्य दिखाने के लिए।
1. अप्रमत्त यति।
2. दोनों के विपर्यय का अभाव - विपर्ययाभाव साधर्म्य।

* पञ्चमकम् → क प्रत्यय स्वार्थ में।
प्र. केवलज्ञान इनसे कैसे?
उ. सूत्रक्रम के प्रामाण्य से। अथवा उपर्युक्त साधर्म्यादि से यह क्रम है।

* केवलज्ञान में शेष ज्ञान का अभाव और आवरण के भेद के हेतु की चर्चा →
प्र. सकल ⓐ यह ज्ञान ज्ञप्ति रूप एक स्वभाव वाला है तो ज्ञप्ति रूप एक स्वभाव सामान्य होने से यह आभिनिबोधिकादि भेद क्यों किए? यदि ज्ञेय के भेद से किया हो (जैसे-प्रतिज्ञान वर्तमान विषयक, श्रुत त्रिकाल विषयक, अवधि रूपी द्रव्य विषयक, मनःपर्यव मनोद्रव्य विषयक, केवल सर्वविषयक) तो केवलज्ञान के बहुत भेद होना चाहिए क्योंकि जो ज्ञेय मत्यादि ज्ञान के हैं, वे सभी केवलज्ञान के भी हैं नहीं तो केवलज्ञान उन्हें ग्रहण नहीं करेगा, जिससे केवली भी असर्वज्ञ होंगे। अतः केवलज्ञान के भी वे सभी विषय हैं अतः केवलज्ञान के भी मत्यादि अनेक भेद करना चाहिए।
ⓒ यदि प्रतिपत्ति के भेद से किया हो (मत्यादि सभी ज्ञानों की प्रतिपत्ति भिन्न-भिन्न है) तो प्रत्येक ज्ञान की भिन्न प्रतिपत्ति तद्-तद् देशकालादि के भेद से अनंत प्रकार की है। अतः प्रत्येक ज्ञान के अनेक भेद हो जाएँगे।
ⓓ कोई कहे कि आवारक कर्म ५ प्र. के हैं प्रज्ञापनादि सूत्र में कहे होने से। अतः हमने आवार्य ज्ञान के भी ५ भेद कर दिए हैं। यह भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि वस्तुतः ज्ञान आवार्य के भेद से आवारक कर्म के भेद हैं अतः आवार्य ज्ञान एक रूप होने से आवारक कर्म भी एक रूप होना चाहिए।
ⓔ यदि यह भेद स्वभाव से ही है और स्वभाव में कोई प्रश्न योग्य नहीं है, ऐसा कहो तो भगवान् को असर्वज्ञत्व का प्रसंग आएगा। तथाहि - यदि मत्यादि ज्ञान के भेद स्वभाव से ही है तो वह क्षीणावरण केवली को भी होने चाहिए क्योंकि स्वभाव तो बदला नहीं जाता। उन्हें मत्यादि ज्ञान होने से उन्हें हमारी तरह वे भी असर्वज्ञ हो जाएँगे क्योंकि वे मत्यादि ज्ञान से वस्तु जानेंगे। यदि ऐसा कहो कि केवलज्ञान होने से वे सर्वज्ञ ही हैं तो जब उन्हें केवलज्ञानोपयोग हो तब सर्वज्ञत्व होगा किंतु जब मत्यादिज्ञानोपयोग हो तब असर्वज्ञत्व होगा। यदि ऐसा कहो कि मत्यादिज्ञानोपयोग उन्हें होगा ही नहीं

तो स्वाभाविक होने से उनका भी उपयोग तो क्रम से आएगा ही, जैसे केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग क्रमशः होता है वैसे ही स्वाभाविक होने से मत्यादि ज्ञानोपयोग भी क्रम से आएगा। इसलिए उस समय वे असर्वज्ञ होंगे।

इसलिए हमें तो ज्ञान के दो ही भेद युक्त लगते हैं - 1. मतिज्ञ अवग्रह ज्ञान से लेकर परमावधि ज्ञान तक (छद्मस्थ होने से) 2. केवल (सर्वज्ञ होने से)

3. ⓐ जो कहा गया कि 'सकल ज्ञान क्षप्ति रूप एक स्वभाव वाला है, क्षप्ति स्वभाव सामान्य होने से ज्ञ भेद क्यों किए?' इस कथन में क्षप्ति रूप एक स्वभावता आप कैसे मानते हो - सामान्य से या विशेष से? यदि सामान्य से मानते हो तो हम भी सामान्य से एक रूप ही मानते हैं, अतः हमें कोई दोष नहीं है। यदि विशेष से मानते हो तो वह अयुक्त है क्योंकि प्रत्येक जीव में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से ज्ञान के उत्कर्ष-अपकर्ष के भेद दिखते ही हैं।

यदि तुम ऐसा कहो कि उत्कर्ष-अपकर्ष के भेद तो हजारों दिखते हैं तो हजार भेद करो, ५ ही क्यों? तो यह भी दोष नहीं है, क्योंकि हमने स्थूल निमित्त के भेद से ५ भेद स्वीकारे हैं। सकल घातिकर्म क्षय केवलज्ञान का निमित्त है, मनः पर्यव ज्ञान - विशिष्ट अध्यवसाय से युक्त अप्रमाद, अवधिज्ञान - रूपिद्रव्यज्ञान का कारण क्षयोपशम विशेष, मति-श्रुत - लक्षण और भेदादि।

ⓑ यह पक्ष तो नहीं स्वीकारने से दूर हो गया क्योंकि हम ज्ञेय के भेद से ज्ञान का भेद नहीं करते, एक अवग्रह से भी अनेक ज्ञेय का ज्ञान होने से।

ⓒ प्रतिपत्ति के भेद से ज्ञान के भेद स्वीकारने में हमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि इसमें देशकालादि से अनंत भेद होने पर भी स्थूल से ५ जाति भेद मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

ⓓ आवार्य ज्ञान की अपेक्षा से आवारक के भेद करने में भी स्थूल से ५ भेद स्वीकारने से ५ आवारक स्वीकारने में हमें कोई आपत्ति नहीं है।

ⓔ मत्यादि ज्ञानों को स्वाभाविक मानने में भी हमें केवली को उनका सद्भाव होने की आपत्ति नहीं आएगी क्योंकि जैसे बादलों से ढँके हुए सूर्य का मंद प्रकाश होता है किंतु बादल के हट जाने पर वे मंद प्रकाश नहीं होता, वैसे ही आवरण होने पर आत्मा का ज्ञान मत्यादि रूप में क्षयोपशम से मंद प्रकाश रूप होता है किंतु आवरण हट जाने पर मत्यादि ज्ञान भी नहीं होते। आवरण हट जाने पर केवली को ये क्षायोपशमिक भाव नहीं हो सकते।

★ मति-श्रुत ज्ञान में भेद →

मतिश्रुत ज्ञान में लक्षणभेद, हेतुफल के भेद, भेद, इंद्रियविभाग, वक्त, अक्षर, मूक के आधार पर भेद है।

1. लक्षण में भेद होने से भेद - अभिमुख, योग्य देश में रहे, नियत अर्थ को आत्मा इंद्रिय-मन के द्वार से जिस परिणाम विशेष द्वारा जानती है, वह परिणाम विशेष=ज्ञान का पर्याय अभिनिबो

आभिनिबोधिक ज्ञान है। तथा वाच्यवाचक भाव पूर्वक कान के विषय शब्द के साथ संसृष्ट अर्थ को जिस परिणाम विशेष से आत्मा जाने, वह परिणाम विशेष श्रुत है। (नंदिसूत्र)

9. यदि यह श्रुत का लक्षण है तो यह लक्षण श्रोत्रेंद्रिय लब्धि वाले और भाषालब्धि वाले जीवों को ही घटता है, एकेंद्रिय में नहीं घटता क्योंकि श्रोत्रेंद्रिय वाला जीव शब्द सुनकर उसका अर्थ जान सकता है और द्वीन्द्रियादि भाषा लब्धि वाले जीव भी चित्त में कुछ विचारकर ही शब्द बोलते हैं किंतु एकेंद्रिय तो ऐसा नहीं कर सकता। ? तो एकेंद्रिय में श्रुतज्ञान कैसे?

उ. एकेंद्रियों को आहारादि संज्ञा होती है। संज्ञा यानि अभिलाष। उन्हें भी 'मुझे इस प्रकार की वस्तु मिले तो अच्छा' इस प्रकार का अध्यवसाय होता है। वह भी शब्दार्थ के पर्यालोचनात्मक होने से श्रुत ही है। उन्हें शब्द अन्तर्जल्पाकार रूप होते हैं। तथा उन्हें स्पर्शेन्द्रिय सिवाय अन्य इंद्रिय द्रव्य से न होने पर भी पाँचों भावेंद्रिय सूक्ष्म होती है। अतः भाषा-श्रोत्रेंद्रिय लब्धि न होने पर सूक्ष्म श्रुत ज्ञान कुछ होता ही है। एकेंद्रियों में यह शब्दार्थ पर्यालोचन अव्यक्त होता है।
इसलिए पूर्वोक्त श्रुतलक्षण युक्त है।

2. हेतु फल से भेद- मति कारण है, श्रुत कार्य है क्योंकि श्रुत मति से प्राप्त होता है। जीव मति की पटुता बिना उत्तरोत्तर श्रुत ज्ञान प्राप्त नहीं करता। ऐसा देखा भी जाता है। जो जिसके उत्कर्ष-अपकर्ष के वश से उत्कर्ष-अपकर्ष का भागी होता है, वह उसका कारण होता है। जैसे- घट का कारण मृत्पिंड - मृत्पिंड के उत्कर्ष-अपकर्ष से श्रुत घट का उत्कर्ष-अपकर्ष होता है। तथा-
मति से श्रुत का पालन होता है। पालन यानि स्थिरीकरण। जिस प्रकार घट उत्पन्न होने पर भी मृद्भाव में नहीं रह सकता, मृद्भाव में ही रहता है वैसे ही श्रुत ज्ञान भी मति से स्थिर होता है। यह प्रत्यक्ष भी सिद्ध है कि जिस ग्रंथ में अधिक स्मरण-ईहापोह होता है, वह ग्रंथ अधिक स्पष्ट होता है।

3. भेद (प्रकार) से भेद- मतिज्ञान के अवग्रहादि 28 प्र. हैं, श्रुत के अंगबाह्य-अंगप्रविष्ट 2 प्र. हैं।

4. इंद्रिय के विभाग से भेद- इसका प्रतिपादन करने वाली यह पूर्वगतगाथा है-
'सोइंदियोवलद्धी होइ सुयं सेसयं तु मइनाणं। मोत्तूणं दव्वसुयं अक्खरलंभो य सेसेसु॥'
→ सोइंदियोवलद्धी होइ सुयं - श्रोत्रेंद्रिय से उपलब्धि श्रुतज्ञान होती है। यहाँ 'सर्व वाक्यं सावधारणं' न्याय से श्रोत्रेंद्रिय से होती उपलब्धि ही श्रुत है किंतु श्रोत्रेंद्रिय की उपलब्धि श्रुत ही है, ऐसा नहीं। क्योंकि जो श्रोत्रेंद्रिय की उपलब्धि श्रुतग्रंथानुसारी होती है, वही श्रुत कही जाती है, जो अवग्रह-ईहा-अपाय-धारणा रूप होती है वह मति होती है।

→ 'सेसयं तु मइनाणं'- शेष चक्षु आदि इंद्रियों की उपलब्धि मतिज्ञान ही होती है। तु शब्द समुच्चय अर्थ में। श्रोत्रेंद्रिय से होने वाले मतिज्ञान का समुच्चय।

→ 'शेष इंद्रियों से मतिज्ञान' इस प्रकार उत्सर्ग है। इसका अपवाद -
'मोत्तूण दव्वसुयं... सेसेसु'- शेषेंद्रिय में द्रव्यश्रुत और अक्षरलाभ को छोड़कर शेष उपलब्धि मतिज्ञान होती है। द्रव्यश्रुत- पुस्तकादि अक्षररूप और अक्षर लाभ, ये दोनों यदि शब्दार्थपर्यालोचन मंत्र सहित हो तो श्रुतज्ञान। मात्र अक्षर लाभ हो तो अवग्रहादि रूप होने से मतिज्ञान।
~~अर्थात् सभी इंद्रिय से जो शब्दार्थपर्यालोचनात्मक ज्ञान है वह श्रुत, बाकी मति।~~

प्र. यदि शेषेंद्रियों में भी अक्षर लाभ श्रुतज्ञान है, तो पहले जो अवधारण किया 'श्रोत्रेंद्रिय की उपलब्धि ही श्रुत है' यह अवधारण नहीं घटेगा ?

उ. वह अवधारण सही है क्योंकि शेषेंद्रिय से जो शब्दार्थपर्यालोचन अनुसार अक्षर लाभ होता है, वह श्रोत्रेंद्रिय की उपलब्धि है।-
कोई भी इंद्रिय से व्यंजनावग्रह - अर्थावग्रहादि रूप मतिज्ञान होता है। मतिज्ञान में मात्र अनुभव किसी का निर्णय होता है। फिर ~~वह~~ श्रुतज्ञान के अनुसार उसका अभिलाप वाक्य बनता है। यह वाक्य अक्षरात्मक होता है जैसे- ठंडा स्पर्श, सुगंध, मीठा स्वाद इत्यादि। मतिज्ञान में मात्र अनुभव, श्रुतज्ञान में अक्षरात्मक निर्णय।
यह अभिलाप वाक्य श्रोत्रेंद्रिय की उपलब्धि है। ~~इसलिए श्रोत्रेंद्रिय~~ क्योंकि वह वाक्य उस पुरुष या अन्य पुरुष द्वारा कभी भी सुना जा सकता है अतः श्रोत्र से उपलब्ध होने से वह श्रोत्रोपलब्धि है।
अतः श्रोत्रेंद्रिय की उपलब्धि ही श्रुतज्ञान है। शेष इंद्रियोपलब्धि मतिज्ञान है। इसलिए मति-श्रुत में इंद्रिय के विभाग से भेद है।

5. वत्क-शुंब की तरह भेद- वत्क यानि श्रीफल की छाल। शुंब- यानि छाल से बनी रस्सी। वत्क शुंब का कारण है वैसे ही मति श्रुत का कारण है।

6. साक्षर - अनक्षर → अवग्रहज्ञान अनक्षर है क्योंकि वह अनिर्देश्य मात्र प्रतिभासात्मक निर्विकल्प है। ईहादि साक्षर है क्योंकि पराम्रर्श रूप है। श्रुतज्ञान साक्षर ही है क्योंकि शब्दार्थ बिना शब्दार्थपर्यालोचन नहीं होता।

7. मूक - अमूक → मतिज्ञान मूक समान है क्योंकि मात्र स्व को ही प्रत्यायन रूप फल होता है। श्रुतज्ञान अमूक समान है, स्व-पर प्रकाशक होने से।

* ऽ ज्ञान के क्रम के कारण में -
मति-श्रुत में मति पहले क्यों ? क्योंकि श्रुत मतिपूर्वक ही होता है।

चूर्णि → प्र. सर्वज्ञ की मत तुल्य होने पर अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट भेद क्यों?
उ. जो गणधर भ. द्वारा रचे गए, वे अंगप्रविष्ट, आचारांग से दृष्टिवाद तक। जो अन्य स्थविरों द्वारा दशवैकालिकादि रचे गए, वे अंगबाह्य।

→ प्र. क्या प्राप्त किए अर्थ भी कहने के लिए शक्य नहीं है?
उ. जो प्रज्ञापनीय भाव हैं, वे अनभिलाप्य भावों के अनंतवें भाग जितने हैं। उन प्रज्ञापनीय भावों का भी अनंतवा भाग श्रुत में निबद्ध है क्योंकि 14पूर्वी भी स्वःस्थान में रहे होते हैं।

→ आभिनिबोधिक ज्ञान अनक्षर है। श्रुत साक्षर भी है, अनक्षर भी।

हरिभद्रीय टीका → मति-श्रुत ज्ञान का भेद - मतिज्ञान उत्पन्न और अविनष्ट अर्थ का ग्राहक है अर्थात् वर्तमान विषयक है। श्रुतज्ञान उत्पन्न-विनष्ट और अनुत्पन्न अर्थ का ग्राहक है अर्थात् त्रिकाल विषयक है।

→ मतिज्ञान की व्याख्या -
अभिनिबुध्यते तद् इति आभिनिबोधिकं, अवग्रहादिरूपं मतिज्ञानमेव, तस्य स्वसंवेदित-रूपत्वात्, भेदोपचारात् इत्यर्थः
⇒ जिसका अभिनिबोध किया जाए (ज्ञान) किया जाए, जाना जाए) वह आभिनिबोधिक ; अर्थात् अवग्रहादिरूप मतिज्ञान ही। क्योंकि वह मतिज्ञान स्वयं को जनाता है अर्थात् स्वयं का भी ज्ञान, आत्मा को स्वयं कराता है। यहाँ मतिज्ञान में कर्म और कर्ता का भेदोपचार किया है।

*

टीप्पणक → 'अभिनिबुध्यते तद् इति आभिनिबोधिकं' -
प्र. कर्ता के बिना कर्म नहीं होता। ~~तो~~ इस व्युत्पत्ति में मतिज्ञान कर्म है, कर्ता नहीं। तो यह कैसे घटता है?
इस प्रश्न के उत्तर में आगे की पंक्ति -
उ. 'तस्य स्वसंविदितरूपत्वात्' - ज्ञान स्वयं ही नीलादि के ग्राहक पन से आत्मा को (स्वयं को) जानता है इसलिए कोई बाह्य कर्ता ज्ञान को जानने वाला नहीं है। अर्थात् ज्ञान ही कर्ता है, वही स्वयं को जानने से कर्म भी है।

प्र. 'देवदत्त चावल पकाता है' इस प्रकार कर्ता-कर्म का भेद व्यवहार देखा गया है। यहाँ तो दोनों एक होने से व्यवहार कैसे होगा?
इस प्रश्न के जवाब में आगे की पंक्ति -

उ. 'भेदोपचारात्'- भेद के उपचार से।

मलयगिरीय टीका अव. अब 'यथोद्देशं निर्देशः' इस न्याय से सबसे पहले आभिनिबोधिक ज्ञान का स्वरूप कहते हैं। वह ज्ञान २ प्र.- श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित।
श्रुतनिश्रित- शास्त्र से परिकर्मित मति के उत्पाद काल में जो शास्त्रार्थपर्यालोचन बिना ही ज्ञान होता है, वह श्रुतनिश्रित है।
अश्रुतनिश्रित- जो सर्वथा शास्त्र के संस्पर्श से रहित तथाविधक्षयोपशम से ही होता है, वह अश्रुतनिश्रित। औत्पत्तिक्यादि बुद्धि।

प्र. 'तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला' इस प्रकार के वचन से उसमें भी वैनयिकी कोई श्रुत के उपकार से ही होती है तो अश्रुतनिश्रित क्यों?
उ. वैनयिकी को छोड़कर शेष अश्रुतनिश्रित है। वैनयिकी की ~~नंदि में या विशु~~ नंदी अध्ययन में या निर्युक्ति में जो पाठ है, वह बुद्धि के साम्य के कारण है।
[इस चर्चा की स्पष्टता मलधारीहेमचंद्रसूरि कृत टीप्पणक में] Pg. No. 22 पर]

उसमें श्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान का स्वरूप-

गा.2 उग्गहो ईहा अवातो य धारणा एव होंति चत्तारि।
आभिणिबोहियनाणस्स भेयवत्थू समासेणं ॥2॥

उ. आभिनिबोधिक ज्ञान के भेद वस्तु संक्षेप से ४ होते हैं- अवग्रह, ईहा, अपाय, धारणा।

★ अवग्रह का स्वरूप-
अनिर्देश्य सामान्यमात्र अर्थ का ग्रहण अवग्रह है।

★ ईहा का स्वरूप-
सद्भूत अर्थ के पर्यालोचनरूप चेष्टा ईहा अर्थात् अवग्रह के बाद और अपाय से पहले, सद्भूत अर्थ के विशेष को ग्रहण करने के अभिमुख और असद्भूत अर्थ के विशेष के त्याग के अभिमुख 'प्रायः यहाँ प्रचुरत्वादि धर्म दिखते हैं, खरकर्कशादि नहीं' इस प्रकार की मतिविशेष ईहा।

प्र. कुछ अन्य तो ईहा का 'संशयमात्र' वर्णन करते हैं?
उ. वह सही नहीं है क्योंकि संशय अज्ञान है, और ईहा तो मतिज्ञान का अंश है।

★ अवाय का स्वरूप-
उसी अवगृहीत और ईहित अर्थ का निर्णय अवाय। जैसे- यह शब्द शंख का ही है इ

इस प्रकार का अवधारणात्मक प्रत्यय अवाय है।

* च शब्द - अवग्रहादि के स्वरूप की स्वतंत्रता दिखाने के लिए है अर्थात् ईहादि अवग्रहादि के पर्याय नहीं हैं।

* धारणा का स्वरूप -
उसी ही निर्णीत अर्थ को धारण कर रखना, वह धारणा। यह धारणा 3 प्र.-

1. अविच्युति - उस निर्णीत अर्थ के उपयोग से नहीं खिसकना अर्थात् उपयोग उसी अर्थ पर रखना। यह अंतर्मुहूर्त प्रमाण होती है।
2. वासना - अविच्युति द्वारा जो संस्कार आत्मा पर डाले जाते हैं, वह वासना। यह संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले जीवों को संख्यात काल तक और असंख्य वर्ष के आयु वाले जीवों को असंख्य काल तक रहती है।
3. स्मृति - कुछ काल बाद कहीं से उसी प्रकार के अर्थ के दर्शनादि कारण से संस्कार का बोध होने पर जो ज्ञान होता है, कि 'मेरे द्वारा यही पहले जाना गया' इस प्रकार का ज्ञान स्मृति है।

* एवं शब्द - आर्ष होने से 'म्' का लोप।
यह क्रम दिखाने के लिए है कि इसी क्रम से आभि. ज्ञान के 4 भेद ही होते हैं - अनवगृहीत की ईहा नहीं होती, अनीहित की का अपाय नहीं... इत्यादि।

* भेदवस्तु = वास्तविक भेद।

* संक्षेप से - विस्तार से तो 28 भेद होते हैं।

हरिभद्रीय टीका → औत्पत्तिक्यादि बुद्धि अपरिकर्मितबुद्धि वाले को क्षयोपशम की पटुता से प्रगट होती है। अपरिकर्मित बुद्धि यानि शास्त्र से जिसकी बुद्धि तैयार न हुई हो।
ये बुद्धियाँ प्रातिभ हैं। नए-नए उल्लेख करने के स्वभाव वाली प्रज्ञा प्रतिभा होती है। उस प्रतिभा से बनी हुई प्रातिभ।

टीप्पणक → अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान में 4 बुद्धि का प्रतिपादन करने पर पूर्वपक्ष शंका करता है -
1. 'तिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला' अर्थात् त्रिवर्गसूत्रार्थगृहीतविचारा, इस प्रकार नंदिसूत्र की (गा.66) में और आवश्यक निर्युक्ति (गा.945) में कहा गया है कि वैनयिकी बुद्धि त्रिवर्ग यानि धर्म-अर्थ-काम के शास्त्रों के सूत्रार्थ ग्रहण करने पर प्रगट होती है। अतः बुद्धि चतुष्टय ~~का~~ अश्रुतनिश्रित कैसे?

उ. ये बुद्धि भी मतिज्ञान होने से अवग्रहादि रूप हैं तथा अवग्रहादि शास्त्र में श्रुतनिश्रित ही कहा गया है। अतः यद्यपि बुद्धि का श्रुतनिश्रितत्व साक्षात् नहीं कहा गया किंतु अवग्रहादि के सामर्थ्य से वह भी श्रुतनिश्रित हैं। परन्तु वे सहज प्रतिभा। क्षयोपशम से प्रगट होने के कारण सिद्धान्त में अश्रुतनिश्रित रूप में ही प्रतिपादित हैं। अतः उन्हें श्रुतनिश्रित ही जानना चाहिए।

~~प्र. किसी विशेष विषय का आश्रय कर वे तो श्रुतनिश्रित ही होगी?~~
~~उ. विशेष विषय तो प्रायः कभी-कभार ही होता है। अतः विशेषविषय की~~

प्र. तो फिर सभी बुद्धि को विशेष से अश्रुतनिश्रित मानो?
उ. यह प्रतिपादन सामान्य से है। ~~विशेष~~ सूत्र की प्रायः वृत्ति होने से। यह वैनयिकी बुद्धि का श्रुतनिश्रित रूप में विशेष से आगे कहेंगे।

प्र. यदि वैनयिकी श्रुतनिश्रित है तो उसे अश्रुतनिश्रित में क्यों कहा?
उ. बुद्धित्व का साम्य होने से।

प्रत्ययगिरीय

टीका अव. अवग्रहादि का स्वरूप-

गा. अत्थाणं उग्गहणं अवग्गहं तह विसालणं इहं।
ववसायं च अवायं धरणं पुण धारणं वेंति ॥३॥

अ. अर्थों का अवग्रहण अवग्रह, विचारणा ईहा, व्यवसाय को अवाय और धारण करने को धारणा कहते हैं।

★ अर्थ → अर्थ्यन्ते परिच्छिद्यन्ते इति अर्थाः (औणादिक 'थ' प्रत्यय)
→ जो जाने जाएँ वे अर्थ। वे रूपादि हैं।

★ अवग्रह → उन अर्थों का प्रथम ग्रहण अवग्रह कहा जाता है। वह २ प्र. -
1. व्यंजनावग्रह - व्यज्यते अनेन अर्थः इति व्यञ्जनम् ⇒ जिसके द्वारा अर्थ प्रगट किया जाए, व्यक्त किया जाए। जैसे- घट दीप से व्यक्त हो वैसे।
ⓐ यह उपकरण इंद्रिय और शब्दादि रूप में परिणत द्रव्यों का परस्पर संबंध है। इस संबंध से बँधते शब्दादि अर्थ का अव्यक्त ज्ञान ~~संज्ञा~~ व्यंजनावग्रह। अथवा
ⓑ व्यंजन यानि उपकरण इंद्रिय। उनका अव्यक्त ज्ञान व्यंजनावग्रह।
→ यह अंतर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

* चक्षु और मन के अप्राप्यकारित्व की चर्चा हारिभद्रीय टीका में भी Pg. No. 34 पर।

प्र. व्यंजनावग्रह में कुछ संवेदन नहीं होता तो यह ज्ञान क्यों कहा जाता है?
उ. यहाँ अनुमान प्रमाण है। यदि प्रथम समय में संबंध होने पर भी कुछ ज्ञान न हो, तो दूसरे समय में भी नहीं होगी क्योंकि दोनों समय में विशेष का अभाव है। इस प्रकार यावत् अंतिम संग्रय में भी ज्ञान नहीं होता। किंतु चरम समय में अर्थावग्रह रूप ज्ञान प्राप्त होता है। अतः प्रथम समय में भी कुछ ज्ञान तो होता है।

प्र. यदि ऐसा मानो कि 'प्रथमादि समयों में द्रव्य का संबंध होने पर भी ज्ञान नहीं होता क्योंकि वहाँ द्रव्य थोड़े ही होते हैं। चरम समय में द्रव्य बहुत होने पर ज्ञान होता है'?
उ. यदि प्रथमादि समयों में थोड़े द्रव्य के समूह से अव्यक्त ज्ञान भी नहीं होता तो चरम समय में बहुत द्रव्य के संबंध से भी नहीं होगा। जैसे- रेती के कणों में तेल का लेश भी न होने से रेती के ढगले में भी तेल नहीं होता।

→ यह व्यंजनावग्रह 4 प्र. का होता है- श्रोत्रेंद्रियव्यंजनावग्रह, घ्राणेंद्रियव्यंजनावग्रह, जिह्वेंद्रिय व्यंजनावग्रह, स्पर्शेंद्रिय व्यंजनावग्रह।

प्र. 5 इंद्रिय और 6ठां मन, 6 होने पर यह 4 प्र. का ही क्यों?
उ. क्योंकि व्यंजन यानि उपकरणेंद्रिय-द्रव्य का संबंध। यह संबंध 4 इंद्रियों में ही होता है, चक्षु और मन में नहीं। क्योंकि वे दोनों अप्राप्यकारी हैं।

* चक्षु और मन की अप्राप्यकारिता की चर्चा- ★1
प्र. चक्षु और मन अप्राप्यकारी कैसे?
उ. विषय से अनुग्रह और उपघात का अभाव होने से।
जिस प्रकार स्पर्शेंद्रिय चंदनादि अथवा अंगारादि प्राप्त अर्थ को ग्रहण करने पर अनुग्रह और उपघात की भागी होती है, वैसे यदि चक्षु और मन प्राप्त अर्थ को ग्रहण करते तो वे भी अनुग्रह-उपघात को प्राप्त करते किंतु ऐसा होता नहीं है अतः वे दोनों अप्राप्यकारी हैं।

प्र. चक्षु का अनुग्रह-उपघात तो देखा जाता है। अतः जैसे- तीव्र किरण वाले सूर्य को लंबे समय तक देखने पर चक्षु का विघात होता है और चंद्र को या तरंग से शोभित जल को या हरी वनस्पति-वृक्षादि को देखने पर अनुग्रह होता है?
उ. हम ऐसा नहीं कहते कि चक्षु के अनुग्रह-उपघात सर्वथा नहीं होते। उपघातक प्राप्त होने पर उपघातक और अनुग्राहक प्राप्त होने पर अनुग्रह होगा। हम ऐसा कहते हैं कि चक्षु अप्राप्त विषय भी ग्रहण करता है क्योंकि विषय से अनुग्रह-उपघात न होने पर भी उससे उसका ज्ञान होता है।

अनुग्रह-उपघात की स्पष्टता – सूर्य और चंद्र की किरणें सभी जगह फैलती हैं। अतैः सूर्य की किरण प्राप्त होकर चक्षु का उपघात करती है और चंद्र किरणें शीतल होने से अनुग्रह करती है। तरंग से शोभित जल देखने पर जलकण से युक्त हवा के अवयव के स्पर्श से अनुग्रह होता है। वृक्षादि के समूह देखने पर भी उनके संपर्क से ठंडी हुई हवा के स्पर्श से अनुग्रह होता है। शेष काल में भी उपघात के अभाव में अनुग्रह का अनुभव होता है e.g. सूक्ष्म अक्षर पढ़ने से अटकने पर अनुग्रह का अनुभव होता है।

हम यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं कि जैसे सूर्य से संपर्क होने पर उपघात होता है, वैसे अग्नि से जलना, पानी से गीला होना, त्रिशूल से फरना वि. अनुग्रह-उपघात क्यों नहीं होते? और यदि चक्षु प्राप्यकारी है तो स्वयं के पास रहे कचरे और काजल को क्यों नहीं देखती? अतः चक्षु अप्राप्यकारी ही है।

प्र. यदि चक्षु अप्राप्यकारी है तो सामान्य से सभी अर्थों को क्यों ग्रहण नहीं करती? वह प्राप्त अर्थ को ग्रहण करती है इसलिए अनावृत और पास रहे अर्थ का ही ग्रहण करती है, आवृत और दूर का नहीं। इस प्रकार ही चक्षु के ग्रहण-अग्रहण योग्य हैं; क्योंकि आवृत और दूर रहे अर्थ पर चक्षु की किरणें नहीं पहुँचती।

यदि वह अप्राप्यकारी है तो आवरण होने से अर्थ की अनुपलब्धि नहीं होती है, ऐसा नहीं होता क्योंकि चक्षु की किरण वहाँ जाती है और अप्राप्यकारी होने से आवरण के आर-पार जाकर अर्थ ग्रहण करेगी अर्थात् अप्राप्यकारी होने से वह आवरण उसका उपघात नहीं करेगा। प्राप्यकारी होने पर मूर्तद्रव्य रूप आवरण से वह किरण वहीं अटक जाती है जिससे पीछे अर्थ ग्रहण नहीं होता। इस प्रकार आवरण से व्याघात प्राप्यकारित्व में युक्तियुक्त है।

यहाँ प्रयोग- न चक्षुषः विषयपरिमाणं अप्राप्यकारित्वात् मनोवत् ⇒ मन जिस प्रकार अप्राप्यकारी होने से आवृत और दूर, सभी अर्थों को ग्रहण करता है, वैसे ही चक्षु का भी अप्राप्यकारी होने से विषय परिमाण नहीं होगा।

उ. इस अनुमान में दृष्टांत साध्य रहित है अर्थात् मन का विषय परिमाण है क्योंकि आगम गम्य सूक्ष्म अर्थों में मन को भी मोह होता है। अतः अप्राप्यकारी मन जैसे स्वावरणक्षयोपशम अनुसार नियतविषयवाला है वैसे अप्राप्यकारी चक्षु भी स्वावरणक्षयोपशम अनुसार नियतविषयवाला है, अवधानवाले या दूर रहे अर्थों की प्राप्ति की आपत्ति नहीं है। वह योग्य देश में रहे अर्थों को ग्रहण करता है। अप्राप्यकारी होने पर भी योग्य देश की अपेक्षा देखी जाती है। जैसे लोह चुंबक, वह अप्राप्यकारी होने से जगत् के सभी लोहे का नहीं खींचता किंतु योग्य देश में रहे लोहे को ही खींचता है।

प्र. लोह चुंबक भी प्राप्यकारी है क्योंकि खींचाती वस्तु का उसके छायाणुओं के साथ संबंध

होता है, मात्र वे परमाणु सूक्ष्म होने से ग्रहण नहीं किए जाते / जाने नहीं जाते।

उ. उन परमाणुओं का कोई ग्राहक प्रमाण नहीं है और अप्रमाण वस्तु को स्वीकारने में हम समर्थ नहीं है।

प्र. उसका ग्राहक अनुमान प्रमाण है - यदाकर्षणं तत्संसर्गपूर्वकं यथाऽयोगोलकस्य संदंशेन
अर्थ → जो आकर्षण है, वह संसर्गपूर्वक होता है, जैसे अयोगोलक का चीपीये से।
[पक्ष - आकर्षण, साध्य - संसर्ग, हेतु - आकर्षणत्वात् खींचने के कारण]
यहाँ चुंबक से लोहे का आकर्षण है अतः उसमें साक्षात् संसर्ग नहीं है अतः परमाणु के साथ देखना (जानना)।

उ. यह अनुमान सही नहीं है क्योंकि हेतु अनैकान्तिक है। हेतु आकर्षण विपक्ष में साध्याभाव में भी रहता है जैसे मंत्र। मंत्र स्मरण किया जाता भी विवक्षित वस्तु को खींचता है, वहाँ कोई संसर्ग नहीं है।
अतः चुंबक अप्राप्यकारी है।

प्र. चक्षु के प्राप्यकारित्व

इस प्रकार मन का भी अप्राप्यकारित्व समझना चाहिए। क्योंकि उसमें भी विषय से अनुग्रह-उपघात नहीं होते।

प. हर्षादि से अनुग्रह देखा जाता है, शरीर का उपचय दिखने से। हर्ष के प्रकर्ष से मन की प्रसन्नता होती है और उससे शरीर का उपचय होता है।
उपघात भी देखा जाता है, शरीर की दुर्बलता से दिखने से। अतिशोक करने से मन का विघात, उससे शरीर की दुर्बलता, चिंता से हृदयरोग इत्यादि।

उ. यहाँ मन का अप्राप्यकारित्व साध्य है, विषय से अनुग्रह-उपघात न होना हेतु है। तेरे द्वारा मन के अनुग्रह-उपघात नहीं बताए गए, तो व्यभिचार कैसे? मन पुद्गलमय होने से शरीर का अनुग्रह-उपघात करता है किंतु इससे मन का अनुग्रह-उपघात नहीं होता।
अतः मन भी अप्राप्यकारी है।

2. अर्थावग्रह - व्यंजनावग्रह के अंतिम समय में गृहीत अर्थों के अवग्रहण रूप लक्षण वाला अर्थावग्रह। सामान्य, अनिर्देश्य।
→ यह एक समय का होता है।
→ अर्थावग्रह व्यंजनावग्रह पूर्वक होता है।

★ ईहा → अर्थों की विचारणा अर्थात् अवग्रह के बाद और अपाय से पहले सद्भूत अर्थ के विशेष के ग्रहण के अभिमुख, असद्भूत अर्थ के विशेष के त्याग का कांक्षी मति विशेष।

★ अवाय → अर्थों का विशिष्ट निर्णय, निश्चय।

★ च शब्द → एवकार के अर्थ में, अवधारण अर्थ में। व्यवसाय, निर्णय ही अवाय।

★ धारणा → निर्णीत अर्थ को अविच्युति-वासना-स्मृति से धारण करना।

★ पुनः शब्द → एवकार अर्थ में।

★ 'बेंति' = ब्रुवते ⇒ इस प्रकार तीर्थंकर-गणधर कहते हैं।
इस प्रकार मतिज्ञान के 28 भेद जानना।

हरिभद्रीय टीका → अवग्रह की व्याख्या - अर्थानां प्रथमं दर्शनानन्तरं ग्रहणं अवग्रहः

दीपिका → ईहा - अवग्रह सामान्य ग्राही होने से दर्शन हैं। उनका चक्षु - अचक्षु दर्शन में अन्तर्भाव होता है। शेष भेद विशेष ग्राही होने से ज्ञान हैं। यहाँ बोधरूप होने से दर्शन - ज्ञान दोनों का ज्ञान शब्द से ही ग्रहण किया है।

मलयगिरीय टीका अव. अवग्रहादि का काल प्रमाण -

गा. उग्गह एक्कं समयं ईहावाया मुहुत्तमंतं तु।
कालमसंखं संखं च धारणा होइ नायव्वा ॥५॥

अ. अवग्रह एक समय, ईहा - अपाय अंतर्मुहूर्त, धारणा असंख्य, संख्य और अंतर्मुहूर्त काल तक होता है, ऐसा जानना।

★ अवग्रह यानि नैश्चयिक अर्थावग्रह - 1 समय।
★ सांव्यवहारिक अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह - अंतर्मुहूर्त।
★ ईहा - अवाय - अंतर्मुहूर्त।
तु शब्द - अवधारण अर्थ में। दोनों का काल अलग-अलग अंतर्मुहूर्त ही है।
★ अन्य आचार्य का मत -
'मुहुत्तमहं तु' ⇒ मुहूर्तार्ध।
तु शब्द - विशेषण अर्थ में। 'अर्ध' का अर्थ - अंतर ही लेना। अर्थात् मुहूर्तार्ध = अंतर्मुहूर्त।
★ धारणा - असंख्य काल या संख्य काल या (च) अंतर्मुहूर्त।

चूर्णि → श्रोत्रेंद्रिय के अवग्रहादि -
कोई पुरुष किसी सोते हुए पुरुष को उठाता है। जब उसकी श्रोत्रेंद्रिय अनंत पुद्गलों से पूरा जाती है, तब वह जानता है - 'कोई शब्द है' यह एक समय का अर्थावग्रह है। फिर अंतर्मुहूर्त ईहा होती है - 'किस पुरुष के शब्द हैं?'। फिर अंतर्मुहूर्त अपाय। फिर धारणा - संख्येय वर्ष की आयु वाले को संख्येय काल, असंख्य आयु वाले को असंख्य काल।

प्र. अवग्रह में एक समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण होते हैं या संख्य समय में या असंख्य समय में?
उ. असंख्य समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण को प्राप्त होते हैं।
यहाँ मल्लक (प्याला, चषक) का दृष्टांत है - कोई पुरुष मल्लक ग्रहण कर उसमें एक पानी की बूंद डालता है, वह बूंद मिट्टी का गायब हो जाती है, दूसरी दूसरी बूंद डालता है, वह गायब...

इस प्रकार डाली जाती पानी की बूंदों से एक उदग बिंदु ऐसी भाती है, जिससे वह मल्लक भर जाता है। इसी प्रकार ग्रहण होते पुद्गलों से श्रोत्रेंद्रिय जब पूरी भरा जाती है, तब वह अवग्रह होता है।

प्र. पहले अवग्रह 2 प्र. का कहा- व्यंजनावग्रह, अर्थावग्रह। यहाँ इन दोनों में अंतर क्या है?
उ. श्रोत्रेंद्रिय का शब्द पुद्गलों के साथ संयोग, वह व्यंजनावग्रह। जो शब्द उस इंद्रिय द्वारा जीव के पास लाया गया, वह अर्थावग्रह।

→ इस प्रकार शेष 4 इंद्रियों का भी संक्षिप्त दृष्टांत से विवरण।

→ मन के अवग्रहादि- कोई पुरुष अव्यक्त स्वप्न देखे, वह अवग्रह। फिर अंतर्मुहूर्त ईहा, अवाय- मेरे द्वारा देव देखा गया। फिर धारणा।

हरिभद्रीय
टीका → ईहा अंतर्मुहूर्त। मूल पाठ- 'मुहुत्तमद्धं तु'।
तथा मतांतर में 'मुहुत्तमंतं तु' पाठ।

मलयगिरीय
टीका- अब. इंद्रियों की प्राप्त-अप्राप्त विषयता को कहते हैं-
गा. पुट्ठं सुणेइ सद्दं रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु। गंधं रसं च फासं च बद्धपुट्ठं वियागरे॥5॥
उ. स्पृष्ट शब्द को सुनता है। अस्पृष्ट रूप को देखता है। गंध, रस और स्पर्श तो बद्ध-स्पृष्ट जानता है।
प्र. व्यंजनावग्रह की प्ररूपणा में ही यह प्राप्त-अप्राप्त विषयता का प्रतिपादन कर दिया गया अतः पुनः क्यों यह प्रयास किया?
उ. पहले व्याख्यान द्वार से कहा था, अब सूत्र से कहते हैं।

* श्रोत्रेंद्रिय का प्राप्यकारित्व →
'पुट्ठं सुणेइ सद्दं' श्रोत्रेंद्रिय स्पृष्ट यानि आत्मांगीत मात्र (Touch) शब्द को सुनती है। अर्थात् शब्द द्रव्य सकल लोक व्यापी हैं, सूक्ष्म हैं। अतः द्रव्येंद्रिय के अंदर भी कुछ प्रवेश करते हैं। श्रोत्रेंद्रिय शेष इंद्रियों की अपेक्षा पटुतर है इसलिए स्पृष्ट मात्र द्रव्य समूह का ही ग्रहण करती है। इसलिए श्रोत्र प्राप्यकारी है।

→ इस कथन से श्रोत्र को अप्राप्यकारी मानने वाले बौद्ध मत का खंडन हो गया।

* श्रोत्रेंद्रिय के प्राप्यकारित्व की चर्चा →

पू. (बौद्ध मत) हमारा ग्रंथ है 'चक्षुःश्रोत्रमनोऽप्राप्यकारि' अतः हम श्रोत्र को अप्राप्यकारी मानते हैं।

उ. अप्राप्यकारी वह स्वीकारने के लिए शक्य है, जिसे विषय से अनुग्रह - उपघात न हो eg. चक्षु- मन। श्रोत्र को शब्द से उपघात दिखता है eg. तुरंत जन्मे हुए बालक के समीप में ~~ब~~ जोर से झांझर वि. बजाने पर, बिजली गिरने में उसके आस-पास रहे लोगों में बहरापन देखा जाता है।

पू. यदि श्रोत्रेंद्रिय प्राप्त अर्थ को ही ग्रहण करती है तो जैसे गंधादि ग्रहण करने पर दूर-पास ~~की~~ के भेद की प्रतीति नहीं होती, वैसे शब्द में भी नहीं होती क्योंकि प्राप्त अर्थ पास ही होता है तो दूर-पास की प्रतीति कैसे हो? और शब्द में यह प्रतीति होती
~~उ~~. है क्योंकि लोक में कहा जाता है कि यह शब्द दूर सुनाई देता है इत्यादि। तथा यदि प्राप्त शब्द ग्रहण करेंगे तो चांडाल का शब्द सुनने पर चांडालस्पर्श का दोष होगा।

उ. शब्द प्राप्त ही ग्रहण किया जाता है तो भी शब्द जहाँ से उत्पन्न होता है उसके दूर-पास होने पर शब्द में भी स्वभाव की विचित्रता से भेद प्रतीति होती है। क्योंकि दूर से आया हुआ शब्द क्षीण शक्ति वाला होने से खिन्न और अस्पष्ट होता है। तथा लोकव्यवहार में 'यह दूर सुनाई देता है' इसका अर्थ ऐसा होता है कि दूर से आया हुआ शब्द सुनाई देता है।
तथा यदि ऐसा मान लें कि अप्राप्यकारी होने से दूर-पास भेद की प्रतीति होती है तो अतिव्याप्ति होगी क्योंकि ऐसा भी कहा जाता है कि 'दूर यह रूप दिख रहा है'। अतः चक्षु को भी प्राप्यकारी मानने की आपत्ति आएगी।
और दूसरा- हवा प्रतिकूल होने पर पास में रहा व्यक्ति भी शब्द नहीं सुनता तथा हवा अनुकूल होने पर दूर रहा व्यक्ति भी शब्द सुनता है।
और अन्य- यदि अप्राप्त ही शब्द ग्रहण किए जाते हैं तो क्रम ग्रहण की अनुपपत्ति रूप आपत्ति होगी। - जैसे चक्षु से योग्य देश में रहे घट-पटादि पदार्थ एक साथ ग्रहण किए जाते हैं वैसे 'यह पास है, यह दूर है' ऐसा क्रम ग्रहण नहीं होगा, सभी शब्द एक साथ सुनाई जाने चाहिए।
'चांडालस्पर्श दोष'- स्पर्श अस्पर्श की व्यवस्था लोक में व्यवहारिक है, काल्पनिक है; पारमार्थिक नहीं क्योंकि जिस पृथ्वी पर चांडाल चलता है उसी पर ब्राह्मण भी। जिस हवा को चांडाल ग्रहण करता है, उसी को ब्राह्मण भी। उसमें कोई स्पर्श दोष नहीं है।
जब चांडाल के हाथ में रहे सुगंधित पुष्प की गंध आपकी नाक में जाएगी, ~~तो क्या~~ तब स्पर्श दोष के भय से नाक को भी अप्राप्यकारी मानना पड़ेगा, ऐसा तो आपके शास्त्र में भी नहीं लिखा है।
अतः श्रोत्रेंद्रिय प्राप्यकारी है।

★ शब्द के आकाशगुणत्व की चर्चा→
कुछ दर्शन वाले श्रोत्रेंद्रिय को प्राप्यकारी मानकर शब्द को आकाश का गुण मानते हैं। वह ठीक नहीं है क्योंकि शब्द को आकाश का गुण मानने पर अमूर्त मानने की आपत्ति आएगी क्योंकि जो जिसका गुण है वह उसके समान धर्म वाला होता है। जैसे ज्ञान आत्मा का। इसलिए शब्द को अमूर्त आकाश का गुण मानने पर वह भी अमूर्त होगा। यह तो युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि शब्द तो स्पर्श वाले होने से मूर्त है।
यहाँ प्रयोग- स्पर्शवान् शब्दः, तत्संपर्के उपघातदर्शनात् लोष्ठवत्
यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि नुरंत जन्मे हुए बालक में उपघात देखा जाता है। इस प्रकार का उपघात अस्पर्शवाले में संभव नहीं है जैसे आकाश। इसलिए विपक्ष में न जाने से हेतु अनैकांतिक भी नहीं है।
पर्वतादि में शब्द गूंजने से भी स्पर्श वाले हैं।
अतः शब्द स्पर्शवान् है। इससे वह मूर्त है, तथा
वह आकाश एक है या अनेक है? यदि एक हो तो शब्द लाखयोजन दूर भी सुनाना चाहिए क्योंकि आकाश के गुणत्व से शब्द दूर-पास भेद का अभाव होगा।
यदि अनेक हो तो मुख के देश में ही रहने से वह भिन्न देश में रहे लोगों द्वारा कैसे सुना जाता है? क्योंकि दोनों का आकाश अलग है।

पू. आकाश के गुणत्व बिना शब्द की स्थिति- सत्ता नहीं हो सकती क्योंकि पदार्थ द्वारा स्थितिमान् होना आवश्यक है। उसमें रूप-स्पर्श-गंध-रसादि का पृथ्व्यादि ५ भूत आश्रय हैं, शब्द का आकाश है।
उ. इस प्रकार होने पर तो पृथ्व्यादि भी आकाश में रहते हैं तो उन्हें भी आकाश का गुण मानो।

पू. मात्र आश्रय होने से उसका गुण नहीं बनता किंतु समवाय गुणत्व का कारण है। और वह समवाय शब्द का आकाश के साथ है। अतः शब्द आकाश का गुण है।
उ. १. यह समवाय क्या है?
पू. पृथ्वी वि. का रूपादि का एकीभाव से रहना
उ. तो शब्द और आकाश का गुण नहीं है क्योंकि आकाश के साथ इसका एकीभाव पूर्वोक्त युक्ति से नहीं है।

पू. शब्द में प्राप्त होने से उसका गुण है।
उ. रुई वि. भी आकाश में प्राप्त होती है तो उसे भी आकाश का गुण मानो।

पू. तूलकादि तो परप्रार्थ से पृथ्वी पर ही रहते हैं किंतु, आकाश में तो वायु से उड़ते हैं।

* इस समास की एक विशेषता हरिभद्रीय टीका में Pg. No. 37 पर।

उ. यदि ऐसा है तो परमार्थ से शब्द का स्थान कान वि. है, आकाश में तो वायु से गुने हैं। अतः शब्द पुद्गल-मय है।

* चक्षु का अप्राप्यकारित्व →
'रूवं पुण पासई अपुट्ठं तु' चक्षु इंद्रिय अस्पृष्ट रूप ग्रहण करती है।

* तु शब्द → अवधारण अर्थ में - अस्पृष्ट रूप ही ग्रहण करती है।
* पुनः शब्द → विशेषण अर्थ में - अस्पृष्ट भी योग्यदेश में रहा हुआ ही ग्रहण करती है। अयोग्य देश में स्थित ग्रहण नहीं करती।

* शेष 3 इंद्रियों का प्राप्यकारित्व →
'गंध रसं च फासं च बद्धपुट्ठं वियागरे' - गंध, रस और स्पर्श को इंद्रिय बद्ध और स्पृष्ट ग्रहण करती है। बद्ध यानि आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक किया हुआ। स्पृष्ट यानि आलिंगित मात्र।
उ. परमार्थ से तो पहले स्पृष्ट फिर बद्ध होता है किंतु प्राकृत होने से 'बद्धपुट्ठ'* लिखा है।

प्र. जो बद्ध होता है, वह स्पृष्ट तो होता ही है क्योंकि अस्पृष्ट के संबंध का अयोग है। अतः स्पृष्ट शब्द का उच्चारण अनर्थक है।
उ. शास्त्र का आरंभ सभी श्रोता के लिए साधारण होता है। श्रोता 3 प्र. - ① उद्घाटितज्ञ ② मध्यबुद्धि ③ प्रपंचितज्ञ। यहाँ प्रपंचितज्ञ के अनुग्रह के लिए गम्यमान अर्थ को कहने में दोष नहीं है।

→ घ्राणादि शेष इंद्रिय श्रोत्रेंद्रिय की अपेक्षा से अपटु है। ~~इसलिए ये इंद्रियाँ द्रव्यों के~~ तथा गंधादि द्रव्य स्थूल, स्वल्प और अन्य को वासित करने वाले नहीं होते। अतः ये इंद्रियाँ द्रव्यों को आलिंगित मात्र नहीं किंतु एकमेक कर ग्रहण करती हैं।

* 'वियागरे' व्यागृणीयात् - प्रज्ञापक स्वशिष्यों को इस प्रकार वर्णन करे।

* इंद्रियों के विषय का मान →
प्र. इस प्रकार कहा गया कि योग्य देश में रहा अर्थ ही चक्षु ग्रहण करती है, अतः इन इंद्रियों का विषय मान क्या है?
उ. -

S.No.	इंद्रिय	जघन्य	उत्कृष्ट	शक्ति
1.	श्रोत्र	अंगुल का असंख्य भाग	12 यो.	स्पृष्ट
2.	चक्षु	अंगुल का संख्यात भाग	साधिक 1 लाख यो.	–
3.	घ्राण	अंगुल का असंख्य भाग	9 यो.	बद्ध-स्पृष्ट
4.	रसन	"	"	"
5.	स्पर्शन	"	"	"

★ इंद्रियों के विषय मान का अंगुल प्रमाण →

अंगुल 3 प्र. –

1. आत्मांगुल – जब जो मनुष्य हो, तब उनके मान के अनुरूप यह अंगुल अनियत मान वाला है। इस अंगुल से उस-उस काल में वापी-कूपादि वस्तु नापे जाते हैं।
2. उच्चारण। उत्सेध अंगुल – 8 परमाणु = 1 त्रसरेणु। 8 त्रसरेणु = 1 रथरेणु। 8 रथरेणु = 1 बालाग्र। 8 बालाग्र = 1 लिक्षा। 8 लिक्षा = 1 जू। 8 जू = 1 जव। 8 जव = 1 उत्सेध अंगुल। • इस अंगुल से नर-तिर्यंच-देव-नारक के शरीर नापे जाते हैं।
3. प्रमाणांगुल – 1000 उत्सेध अंगुल = 1 प्रमाणांगुल। इस अंगुल से पर्वत-पृथ्वी-विमानादि नापते हैं।

→ 2 उत्सेध अंगुल = 1 वीर प्रभु का आत्म अंगुल।

प्र. इंद्रिय विषय का मान किस अंगुल से मापना?

उ. आत्मांगुल से। (स्पर्शेंद्रिय सभी जीव में शरीर प्रमाण होती है, अतः उसका मान उत्सेध अंगुल से)

प्र. देह तो उत्सेध अंगुल से नापते हैं। इंद्रिय भी देह के आश्रित है तो उनका विषय मान आत्मांगुल से क्यों?

उ. विषय परिमाण देह से अन्य होने से यह कोई दोष नहीं है।
यदि विषय मान को उत्सेध अंगुल से नापे तो 500 धनुष की काया वाले के विषय व्यवहार का व्यवच्छेद हो जाएगा। तथाहि – भरत चक्री का आत्मांगुल प्रमाणांगुल है। यह प्रमाण अंगुल 1000 उत्सेध अंगुल के बराबर है। उन चक्री की नगरी प्रमाणांगुल 12 यो. की होती है। 1 उत्सेध अंगुल से तो वे अनेक हजार योजन हो जाते हैं। उनकी आयुधशाला में (आत्मांगुल) बजाई हुई भेरी का शब्द 12 यो. की पूरी नगरी में सुना जाता है। यदि उत्सेध से विषय मान हो तो पूरी नगरी में नहीं सुनना चाहिए।

→ इंद्रियों की लंबाई भी आत्मांगुल से मापी जाती है, अन्यथा 3 गाऊ वाले मनुष्यादि के विषय व्यवहार का व्यवच्छेद होगा। तथाहि – 3 गाऊ के मनुष्यों की और 6 गाऊ के हाथी वि. की जीभ भी उनके मुख के प्रमाण में बड़ा रहता है। जिह्वेंद्रिय में आभ्यंतर निवृत्ति आत्मक इंद्रिय का उत्कृष्ट मान अंगुल पृथक्त्व कहा गया है। यदि यह उत्सेध अंगुल से मापे तो छोटा होने के कारण पूरी जीभ में नहीं फैलेगा, जिससे उसे पूरी

जीभ पर रस का अनुभव नहीं होगा। इस विषय व्यवहार अवच्छेद की आपत्ति से इंद्रिय भी आत्मांगुल से मापना पड़ेगी।

पू. चक्षु का परिमाण साधिक लाख यो. नहीं घटता है। क्योंकि अन्य आगम में कहा गया है कि मानुषोत्तर पर्वत के पास अर्द्धपुष्करवर द्वीप में रहा मनुष्य कर्कसंक्रांति पर प्रमाणांगुल से 21 लाख 34 हजार 537 यो. दूर जंबूद्वीप का सूर्य देखता है।

उ. उपरोक्त विषय परिमाण प्रकाश्य/भास्वर पदार्थ का जानना। प्रकाशक/भास्वर पदार्थ का विषय परिमाण ज्यादा भी होता है।

* विषय परिमाण से अधिक विषय ग्रहण न होने का कारण →

1. श्रोत्रादि इंद्रियों की उत्कृष्ट से इतनी ही शक्ति है कि वे 12 यो. वि. से आते शब्दादि विषय को ही ग्रहण कर सकती है, उससे ज्यादा नहीं।
2. उपरोक्त मान से दूर से आते विषय के शब्दादि पुद्गल तथा स्वभाव से उस प्रकार के ही होते हैं, जिस प्रकार वे ~~उस मान से आगे~~ मंदपरिणाम वाले होने से जीव को स्वविषय का ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते।

* मन का विषय परिमाण →

मन का क्षेत्र से कोई विषय परिमाण नहीं है क्योंकि वह पुद्गल मात्र में बंधा हुआ नहीं है। यहाँ अनुमान प्रयोग –

यत्पुद्गलमात्रानिबन्धनियतं न भवति न तस्य विषयपरिमाणं, पुद्गलमात्रानिबन्धनाभावात् यथा केवलज्ञानस्य। यह व्यापकानुपलब्धि अनुमान है। विषयपरिमाण और पुद्गलनिबंधन में व्याप्य-व्यापक का संबंध है। व्याप्य – विषयपरिमाण, व्यापक – पुद्गलनिबंधन।

हरिभद्रीय टीका

* चक्षु और मन की अप्राप्यकारित्व की चर्चा →

सिद्धांत पक्ष – चक्षु योग्य देश में रहे अप्राप्त विषय का परिच्छेदक है, प्राप्ति के निबंधन (ज्ञापक) ऐसे विषयकृत अनुग्रह-उपघात नहीं होने से, मन की तरह, विपक्ष में स्पर्शेंद्रिय।

चक्षुः योग्यदेशावस्थिताप्राप्तविषयपरिच्छेदकं, प्राप्तिनिबन्धनतत्कृतानुग्रहोपघातशून्यत्वात्, मनोवत्, विपक्षे स्पर्शनेन्द्रियम्।

पू. जल-वनस्पति इत्यादि से अनुग्रह और सूर्यादि देखने से उपघात होने से यह हेतु असिद्ध है।

उ. उपरोक्त हेतु में 'प्राप्तिनिबन्धन' नामक हेतु के विशेषण के अर्थ से ही इस आक्षेप का निराकरण होने से अदोष है। [इसकी स्पष्टता मलधारी हेमचंद्र सूरि कृत टिप्पणक में', Pg. No 36]

और - यदि विषय से अनुग्रह-उपघात मानो तो अग्नि-शूल-जल देखने पर क्रमशः जलना- छेदना- गीला होना चाहिए।
और यदि प्राप्त विषय का ज्ञान करे तो आँख में रहे काजल वि. का भी ग्रहण करना चाहिए।

पू. आँख की किरणें निकलकर उस अर्थ को ग्रहण करती हैं। अतः उनका तैजस स्वरूप होने से और सूक्ष्म होने से उन्हें अग्नि आदि के संपर्क में भी दाहादि नहीं होते।

उ. यदि सूक्ष्म होने से अग्नि के संपर्क में दाह नहीं होता तो पूर्व में आपके द्वारा बताए गए जलादि के दर्शन में अनुग्रह और सूर्यादि से उपघात का भी अभाव होगा।
और- उन किरणों का अस्तित्व युक्ति से स्वीकारना भी अशक्य है।

पू. व्यवधान वाले अर्थ की अनुपलब्धि से उन किरणों के अस्तित्व को जान सकते हैं क्योंकि व्यवधान में ही वह किरण अटक जाती है, अर्थ तक पहुँचती ही नहीं है।

उ. वहाँ भी व्यवहित अर्थ की उपलब्धि में क्षयोपशम के अभाव से व्यवहित अर्थ की अनुपलब्धि होती है अर्थात् व्यवहित अर्थ की अनुपलब्धि में क्षयोपशम का अभाव ही कारण है।

प्र. यहाँ क्षयोपशम के अभाव को स्वीकारने में मात्र आगम ही प्रमाण है, कोई युक्ति तो है नहीं?

उ. युक्ति भी है - क्षयोपशम के अभाव से व्यवधान सहित रहित ऐसे परमाणु आदि की उपलब्धि नहीं होती।

पू. उपरोक्त अनुमान में जो मन का दृष्टांत दिया है, वह साध्य से रहित है क्योंकि मन प्राप्त विषय का ही परिच्छेदक है, लोक में कहा जाता है कि मेरा मन अभी वहाँ गया है।

उ. यह भी अयुक्त है क्योंकि ज्ञेय और मन का संपर्क का अभाव है। यदि संपर्क मानो तो जल-कर्पूरादि के चिंतन से अनुग्रह और वह्नि-शस्त्रादि के चिंतन से उपघात होना चाहिए।

पू. मन के अनिष्ट चिंतन से शोक और इष्ट विषय के चिंतन से प्रमोद होता है। अतः वह प्राप्यकारी है।

उ. मनोवर्गणा के ग्रहण किए पुद्गलों का अनिष्ट रूप परिणमन होने से शोक और इष्ट रूप परिणमित होने से हर्ष होता है। अतः हर्ष और शोक भी मनोवर्गणा से होते हैं, विषय से नहीं। अतः विषय से अनुग्रह-उपघात न होने से मन अप्राप्यकारी है।
और- यदि ऐसा मानो कि मन भी विषय तक पहुँचता है तो क्या द्रव्यमन शरीर के बाहर निकलता है या भावमन? यदि द्रव्य मन का बाहर निकले तो निकला हुआ द्रव्यमन पुद्गलमात्र होने से पत्थर की तरह जड़ होगा और जड़ होने से वह

कुछ कार्य नहीं करेगा। क्योंकि भावमन तो बाहर निकलता नहीं है क्योंकि वह जीव रूप होने से शरीर में ही रहता है। यदि ऐसा न मानो कि 'शरीर में ही रहता है' तो जीवरूप भावमन को सर्वगत-सर्वव्यापी मानोगे तो वह नित्य होने से कर्मबंध-मोक्षादि नहीं घटेंगे।

पू. द्रव्यमन करण होने से दीप जैसे आत्मा को बोध कराता है अर्थात् जैसे दीपक करण होने से शरीर के बाहर ही पदार्थ को प्रकाशित करता है, आत्मा उस पदार्थ को ग्रहण करता है, वैसे ही द्रव्यमन भी करण होने से शरीर के बाहर निकलकर पदार्थ को प्रकाशित कर आत्मा को बोध कराता है।

उ. द्रव्यमन शरीर का अंतःकरण है। जो जो आत्मा का अन्तःकरण है, वह शरीर में रहा हुआ ही बोध कराता है, जैसे स्पर्शन। प्रदीप अंतःकरण नहीं है, अतः बाहर रहता है। द्रव्यमन अंतःकरण होने से अंदर ही रहता है। अतः यहाँ दृष्टांत और दार्ष्टान्तिक की विषमता है।

अतः ~~चक्षु~~ चक्षु और मन अप्राप्यकारी है।

टिप्पणक → ~~प्राप्तिनिबन्धनाख्यहेतुविशेषणार्थनिराकरणात्~~ → ~~प्राप्ति के निबंधन यानि~~ विषय इंद्रिय को प्राप्त होता है, इस प्रकार ~~का~~ ज्ञान कराने वाले ज्ञापक को प्राप्तिनिबंधन कहते हैं। यहाँ हेतु है - तत्कृत अनुग्रह-उपघात, 'प्राप्तिनिबंधन' पद उसका विशेषण है। ~~आपकी~~ आपत्ति देने का इस प्राप्तिनिबंधन नामक हेतु के विशेषण से ही निरस्त हो गया है क्योंकि चक्षु-मन में ~~प्राप्ति के~~ जो अनुग्रह-उपघात आपने दिखाए हैं वह वस्तुतः प्राप्त होने से नहीं होते किंतु जल-वनस्पति-सूर्यादि का स्वरूप ही ऐसा है कि विषय रूप में प्राप्त न होने पर भी तथाविध पुद्गलपरिणाम से चक्षु को अनुग्रह-उपघात ~~नहीं~~ करते हैं।

मलधारीय टीका अत. 'पुट्ठं सुणेइ सद्दं' कहा।

पू. कर्ण क्या शब्दपर्याय से उत्कृष्ट द्रव्य ही सुनता है या अन्य उससे वासित भी?

उ. केवल उत्कृष्ट शब्द द्रव्य नहीं सुनता क्योंकि वे शब्द द्रव्य वासक स्वभाव वाले हैं और पूरा लोक उनके योग्य द्रव्यों से व्याप्त है। इसी अर्थ को कहते हैं:-

गा. पू. भासासमसेढीतो सद्दं जं सुणइ मीसयं सुणइ।
वीसेढी पुण सद्दं सुणेइ नियमा पराघाए ॥61॥

स. भाषा की समश्रेणि में जो शब्द श्रोता सुनता है, वह मिश्र सुनता है। विश्रेणि में नियमा पराघात होने पर शब्द सुनता है।

★ भाषासमश्रेणीतः → भाषा की समश्रेणि में इतः यानि रहा हुआ।

→ 'सम' का ग्रहण विश्रेणि के व्यवच्छेद के लिए।

→ श्रेणि - आकाश प्रदेश की पंक्तियाँ।

→ समश्रेणि - भाषक की छहों दिशाओं में, जिसमें भाषा द्रव्य के पुद्गल छोड़ने पर प्रथम समय में लोकांत पर पहुँचते हैं।

* 'मीसयं' → मिश्रक
→ भाषक द्वारा छोड़े गए शब्द द्रव्य और उनके अपांतराल में रहे उनसे वासित द्रव्य। समश्रेणि में रहा श्रोता मिश्र शब्द सुनता है, मात्र शुद्ध वासक द्रव्य नहीं और मात्र वासित द्रव्य भी नहीं।

* 'वीसेढी' → आधेय में आधार के उपचार से विश्रेणि में रहा श्रोता भी 'विश्रेणि' कहा जाता है।

* 'पुनः' → पराघात से वासित द्रव्य भी शब्द ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ हैं, इस प्रकार बताने के लिए।

* 'नियमा पराघाए' → विश्रेणि में रहा श्रोता अवश्य पराघात होने पर वासित द्रव्यों को ही सुनता है।
→ भाषक से उत्सृष्ट शब्द अनुश्रेणि में ही जाते हैं, विदिशा में नहीं जाते। दीवात वि. का प्रतिघात भी उन्हें लगता नहीं है क्योंकि वे सूक्ष्म ही होते हैं और प्रतिघात बादर द्रव्यों को होता है।

हरिभद्रीय टीका [Pg. No. 32 का अनुसंधान]
→ पू. जो बद्ध होता है, वह स्पृष्ट तो होता ही है। अतः स्पृष्ट शब्द उच्चारण अनर्थक है?
उ. पंचेन्द्रिय जीवों के उपकार के लिए और विशेषण-विशेष्य समास होने से यहाँ दोष नहीं है। अर्थात् 'स्पृष्टं च तत् बद्धं च' यहाँ स्पृष्ट गंधादि द्रव्य विशेष्य हैं और बद्ध विशेषण है। जो गंधादि स्पृष्ट द्रव्य बद्ध होते हैं, वे ही ग्रहण किए जाते हैं।

पू. विशेषण-विशेष्य भाव उभयपद व्यभिचार में होता है जैसे 'नीलोत्पलं' जो जो नील है, वह उत्पल नहीं होता और जो जो उत्पल है, वह नील नहीं होता। इस प्रकार उभय-पद व्यभिचार में विशेषण-विशेष्य भाव घटता है। यहाँ तो स्पृष्ट बद्धत्व के साथ व्यभिचारी है अर्थात् जो जो स्पृष्ट हो, वह बद्ध नहीं होता। किंतु बद्ध तो स्पृष्टत्व के अव्यभिचारी है, जो जो बद्ध है, वह स्पृष्ट तो है ही। अतः उभयपद व्यभिचार न होने से विशेषण-विशेष्य भाव नहीं है।
उ. एकपद व्यभिचार में भी यह समास किया जाता है जैसे - 'पृथ्वीद्रव्य'। यहाँ पृथ्वी का

द्रव्यत्व से व्यभिचार नहीं है किंतु द्रव्य का पृथक्त्व से व्यभिचार होने पर भी विशेषण-विशेष्य भाव समास है।

मलयगिरीय टीका

भग. किस योग से भाषाद्रव्यों का ग्रहण और उत्सर्ग होता है?-

गा. गिण्हइ य काइएणं निसिरइ तह वाइएण जोगेणं।
एगंतरं च गिण्हइ निसिरइ एगंतरं चेव ॥७॥

उ. कायिक योग से भाषाद्रव्य का ग्रहण होता है और वाचिक योग से निसर्ग होता है। एकांतरे ग्रहण होता है और एकांतरे ही निसर्ग होता है।

★ कायिक योग → कायेन निर्वृत्तः कायिकः। योग = व्यापार, क्रिया।
★ च शब्द → अवधारण अर्थ में → कायिक योग से ही।
★ तथा शब्द → आनन्तर्य अर्थ में → ग्रहण के बाद।
★ एकांतर → एक के बाद वाला समय, अनंतर समय।
★ भावार्थ - सभी वक्ता कायिक योग अर्थात् काया के व्यापार से ही शब्दद्रव्यों को ग्रहण करते हैं और ग्रहण के बाद वाचिक योग से छोड़ते हैं।
एक समय ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में पहले के गृहीत छोड़ते हैं और नए ग्रहण करते हैं... इस प्रकार प्रत्येक ग्रहण-निसर्ग दोनों क्रिया चलती है, मात्र पहले समय केवल ग्रहण, अंतिम समय केवल निसर्ग।

समय →	1	2	3	4	5	6
ग्रहण →	✓	✓	✓	✓	✓	-
निसर्ग →	-	✓	✓	✓	✓	✓

★ काय योग में ही वचन-मनोयोग का व्यवहार →

पू. यह वाक् योग क्या है? क्या निसर्ग रूप व्यापारात्मक वचन ही वचन योग है? अथवा भाषा का निसर्ग कैसे होता है? क्या व्यापारात्मक भाषा ही निसर्ग का कारण है या कोई कायिक व्यापार है? यदि भाषा को ही निसर्ग हेतु रूप वाचिक योग मानो तो युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि वचन का योगत्व नहीं है। वस्तुतः केवल वाणी जीव का व्यापार नहीं है, वह तो पुद्गलपरिणाम है।
और दूसरा - इस वाणी से कुछ अन्य तो निकलता नहीं है किंतु वह स्वयं ही निकलती है, अतः वह योग कैसे बनेगी?
यदि भाषा का निसर्ग काया के व्यापार से होता है तो वह कायिक योग ही है, कुछ अन्य तो है नहीं?

उ. काय योग विशेष का ही यहाँ वचनयोग और मनोयोग के रूप में व्यवहार किया

* इस ग्रहण-निसर्ग की एक विशेषता चूर्णि में Pg.No.45

Page
Date 19

जाता है। इसलिए ही कायव्यापार से सर्वथा शून्य को उन दोनों योग का अभाव होता है, सिद्ध भगवंत की तरह।
अत: आत्मा का शरीरव्यापार होने पर जिस व्यापारविशेष से शब्दद्रव्य का ग्रहण होता है, वह कायिक योग। जिस कायव्यापार से वह द्रव्य आत्मा छोड़ती है, वह वाचिक योग। जिस कायव्यापार से आत्मा मनोवर्गणा को ग्रहण करती है, वह कायिक योग तथा जिस कायव्यापार से मनरूप में उनका व्यापार कर छोड़ती है, वह मानस योग।

* 'एकांतरे' शब्द का अन्य मत द्वारा अर्थ और उसका खंडन →
पू. प्रथम समय ग्रहण करते हैं, दूसरे समय छोड़ते हैं, तृतीय समय में ग्रहण, चतुर्थ में निसर्ग इस प्रकार अर्थ है।
उ. उनकी ध्वनि दूरी हुई रज्जु की माला समान होगी, बीच-बीच में नहीं सुनाने से।
तथा सूत्रविरोध होगा क्योंकि पन्नवणा में 'असंखसमयमविरहियं निरंतरं गेण्हइ' ऐसा पाठ होने से।
पू. सूत्र में कहा गया है 'संतरं निसिरइ नो निरंतरं' इत्यादि तो विरोध कैसे?
उ. वहाँ ग्रहण की अपेक्षा से निसर्ग को ~~और निसर्ग की अपेक्षा से ग्रहण का~~ अंतरसहित कहा है। प्रथम समय में गृहीत द्रव्य द्वितीय समय में छोड़े जाते हैं; द्वितीय समय में गृहीत तृतीय समय में ... इत्यादि। प्रथम समय में ग्रहण है, निसर्ग नहीं अत: निसर्ग ग्रहण के परतंत्र है।
पू. इस प्रकार तो ग्रहण भी निसर्ग की अपेक्षा से सांतर होगा?
उ. नहीं क्योंकि ग्रहण स्वतंत्र है। स्वतंत्र होने से प्रथम समय में ग्रहण है, निसर्ग नहीं।

* एक समय में ग्रहण किए हुए पुद्गल, दूसरे समय में सभी का निसर्ग ~~कर ही देते हैं~~ होता ही है। 'सर्व वाक्यं सावधारणं' न्याय से अवधारण अर्थ।

पू. ग्रहण-निसर्ग ~~भिन्न~~ परस्पर विरोधी है तो एक समय में कैसे दोनों योग्य हैं?
उ. एक समय में कर्म ग्रहण-निर्जरा, उत्पाद-व्यय, अंगुली का आकाश के साथ संयोग-विभाग, सभी एक ~~में~~ समय में क्रिया देखी जाती है। एक समय में जीव के 2 उपयोग नहीं होते किंतु काय-वचन-मन की क्रिया तो देखी जाती है।

अब कायिक योग से भाषा द्रव्य को जीव ग्रहण करता है। कायिकयोग 5 प्र.- औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस-कार्मण। इनमें से किस काया से ग्रहण होता है-
गा. तिविहंमि सरीरंमी जीवपएसा हवंति जीवस्स। जेहि उ गेण्हइ गहणं तो भासइ भासतो भासं ॥8॥
ह. 5 प्र. के शरीर में जीव के जीवप्रदेश होते हैं जिनके द्वारा वह ग्रहण करता है और भाषक भाषा को बोलता है।

★ उप. के शरीर → शीर्यते इति शरीरं । औदारिक-वैक्रिय-आहारक ।
★ 'जीव के जीवप्रदेश होते हैं' → इन 3 शरीर में जीव के प्रदेश होते हैं ।

पू. 'जीवप्रदेश' कहने में ही जीव आ जाता है तो 'जीवस्य' पद क्यों लिखा ?
उ. षष्ठी वि. भेद में ही होती है e.g. भिक्षोः पात्रम् । इस प्रकार षष्ठी समास से शिष्य प्रदेशों को आत्मा से भिन्न न समझे इसलिए 'जीवस्य' पद रखा । 'जीवस्य' यानि जीव के स्वरूप, आत्मभूत ऐसे प्रदेश ।

★ 'जीवप्रदेशा' पद से निष्प्रदेशजीववाद का निराकरण →
जीव निष्प्रदेश होने से हाथ-पैर वि. सभी अवयवों के एकत्व की आपत्ति आएगी । तथा उत्पन्न भी भिन्न आकाश देश में रहे हाथ-पैर वि. अवयवों से संबद्ध प्रदेश होने से जीव सप्रदेश है ।

★ 'जेहि ... गहणं' → ऐसे 3 शरीर हैं, जिनके द्वारा जीव 'ग्रहण' को ग्रहण करता है ।
★ ग्रहण ⇒ गृह्यते जीवेन इति ग्रहणम् , कर्म में अनट् प्रत्यय । शब्दद्रव्य का समूह ।
★ तु शब्द - विशेषणार्थ → हमेशा ग्रहण नहीं करता किंतु उसके परिणाम होने पर ही ग्रहण करता है ।
★ 'भासतो' = भाषकः → 'भाषण' रूप क्रिया से विशिष्ट ।
इस पद से निष्क्रियात्मवाद का व्यवच्छेद कहा । जीव निष्क्रिय होने पर च्यवन न होने से, उत्पन्न न होने से, स्थिर स्वभाव वाला होने से भाषण के अभाव की आपत्ति आएगी ।
★ 'भासं' → भाष्यते इति भाषा ।
पू. 'भाषक बोलता है' इसी से 'भाषा' अर्थ का ज्ञान होने से 'भाषा' पद ग्रहण निरर्थक है ?
उ. यहाँ वर्तमान में जो बोली जाती है, वही भाषा है ; पूर्व में बोली हुई भी नहीं, भविष्य में होने वाली भी नहीं । इस अर्थ को बताने के लिए 'भाषा' पद ग्रहण ।

★ भावार्थ - जीव औदारिक-वैक्रिय-आहारक , 3 शरीर के व्यापार से शब्दद्रव्य का समूह ग्रहण कर भाषा बोलता है ।

भव. कौन-से 3 शरीर से जीव भाषाद्रव्य ग्रहण करता है -
गा.9 औदारिक-वैक्रिय-आहारक शरीर वाला जीव सत्या, सत्यामृषा, मृषा और असत्यामृषा भाषा को ग्रहण करता है और छोड़ता है ।9
★ औदारिक-वैक्रिय-आहारक → शरीर और शरीर वाले जीव के अभेदोपचार से 'मतु' प्रत्यय का लोप । औदारिक = औदारिक शरीर वाला जीव ... इत्यादि ।

* सत्या भाषा के अर्थ और उदाहरण →

1. सन्तः - मुनयः तेषां एव मुक्तिमार्गप्रवृत्तत्तया तात्त्विकविशिष्टत्वात् तेभ्यो हिता- निरवद्यानुष्ठानरूप-मुक्तिमार्गानुकूलत्वादुपकारिणी सत्या। यहाँ जो जिसके लिए हितकर है, वह उसमें 'साधु' हुआ इसलिए 'तत्र साधौ' से य प्रत्यय।

⇒ मुक्ति मार्ग में प्रवृत्त पन से तात्त्विक और शिष्ट होने के कारण मुनियों के लिए हित रूप यानि निरवद्य अनुष्ठान रूप होने से मोक्ष के अनुकूल होने से उपकारी।

2. मुक्ति मार्ग रूप होने से अतिप्रशस्त होने के कारण मूलोत्तरगुण की आराधना से हित रूप।

3. यथावस्थित तत्त्वों के स्वरूप को ज्ञान कराने से जीवादि पदार्थों के हित रूप।

उ.ज. जीव, सत्-असत् रूप है, देह में व्याप्त है इत्यादि।

* असत्या भाषा → सत्य से विपरीत अर्थात् मुनि अथवा मूलोत्तरगुण अथवा जीवादि पदार्थों के लिए अहित रूप। उ.ज. जीव नहीं है या एकांत सत् है इत्यादि।

* सत्याम्रृषा भाषा → कुछ अंश में सत्य, कुछ अंश में असत्य किंतु व्यवहार से सत्य। उ.ज. जिस वन में बहुत अशोक वृक्ष होते हैं, उसे अशोक वन कहना।

* असत्याम्रृषा भाषा → जो सत्य भी नहीं है और असत्य भी नहीं है; जो मात्र स्वरूप के प्रतिपादन में तत्पर है। उ.ज. हे देवदत्त! घटं आनय, गां देहि इत्यादि।

प्र. वह भाषा छोड़े जाने पर कितने क्षेत्र में फैलती है? उ. समस्त लोक में।
यदि ऐसा है तो-

गा.10 कितने समय में लोक भाषा द्वारा निरंतर स्पृष्ट होता है? और लोक के किस भाग में भाषा का कौन-सा भाग होता है? 10

अ. इस प्रश्न का जवाब -

गा.11 चार समय में लोक भाषा द्वारा अंतर रहित स्पृष्ट होता है और लोक के चरमान्त में भाषा का चरमांत होता है। 11

* ~~कोई~~ महाप्रयत्न वाले वक्ता के शब्द द्रव्य 4 समय में ही लोक को पूर देते हैं अर्थात् पूरे लोक में फैल जाते हैं।

* कोई मंदप्रयत्न वाला वक्ता जिस रूप में शब्द द्रव्य होते हैं, उन्हें उस रूप में ग्रहण कर, उसी रूप में टुकड़े किए बिना अभिन्न ही छोड़ता है। अभिन्न होने से वे मंद शब्द परिणाम वाले, स्थूल और अन्य द्रव्यों को वासित करने की पटुता से रहित होते हैं। वे असंख्य योजन जाकर भेद को प्राप्त होते हैं अर्थात् टूटते हैं और वहाँ से

संख्येय योजन जाकर शब्द परिणाम को छोड़ देते हैं।

★ कोई महाप्रयत्न वाला वक्ता ग्रहण करते समय शब्द द्रव्यों के टुकड़े कर ही ग्रहण करता है, फिर उत्कट शब्द परिणाम उत्पन्न करता है, फिर से टुकड़े करके छोड़ता है। वे द्रव्य भेद किए हुए होने से सूक्ष्म होते हैं। सूक्ष्म होने के कारण, संख्या में भी बहुत अधिक होने से और उत्कट शब्द परिणाम वाले होने से बहुत सारे अन्य द्रव्यों को वासित करते हैं। अन्य द्रव्य को वासक करने से अनंतगुण वृद्धि से बढ़ते हुए लोकांत को प्राप्त करते हैं। ~~शेष~~ पराघात से वासित द्रव्य शेष लोक को पूर देते हैं।

★ चार समय के ग्रहण से दंडतुला न्याय से 3 और 5 समय का भी ग्रहण करना है अथवा सूत्र की गति विचित्र होने से इस प्रकार का अर्थ लेना है। अर्थात् महाप्रयत्न से बोले गए शब्दों द्वारा लोक 3, 4 या 5 समय में संपूर्ण भर जाता है।

★ 3 समय में शब्द की व्याप्ति →

→ वक्ता लोक के मध्य भाग में रहता है।

→ प्रथम समय में 6 दिशाओं में 6 दंड होते हैं-

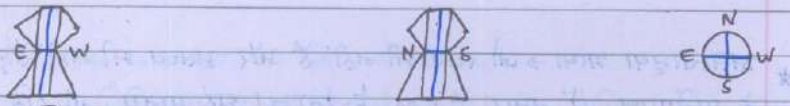

LS (दक्षिण दिशा का View) LS (पश्चिम दिशा View) HS (मध्य लोक)

→ द्वितीय समय में 6 मंथान होते हैं-

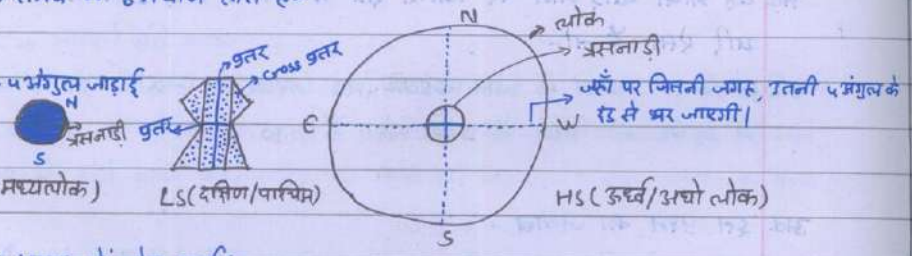

HS (मध्यलोक) LS (दक्षिण/पश्चिम) HS (ऊर्ध्व/अधो लोक)

→ तृतीय समय में लोक पूर्ण।

→ दंड में ही मूल शब्द, बाकी सब वासित द्रव्य हैं।

→ प्रथम और दूसरे समय में लोक का असंख्यातवां भाग, अंतिम समय में संपूर्ण लोक।

★ 4 समय में शब्द की व्याप्ति →

→ वक्ता लोक के अंत पर, मध्य लोक में स्वयंभूरमण समुद्र के पश्चिम तट पर रहता है।

→ प्रथम समय में शेष दिशाओं में भाषा द्रव्यों का स्खलन होने से मात्र 1 पूर्व-पश्चिम दंड-

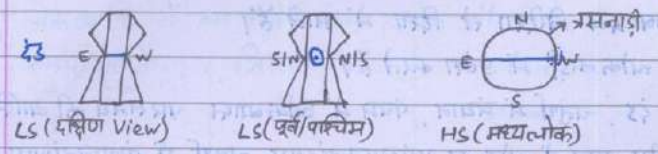

LS (दक्षिण View) LS (पूर्व/पश्चिम) HS (मध्यलोक)

→ द्वितीय समय में मध्यलोक में एक प्रतर तथा ऊर्ध्व-अधो दिशा में 1 रज्जु विस्तार वाली तथा 1 राजू लंबी प्रतर -

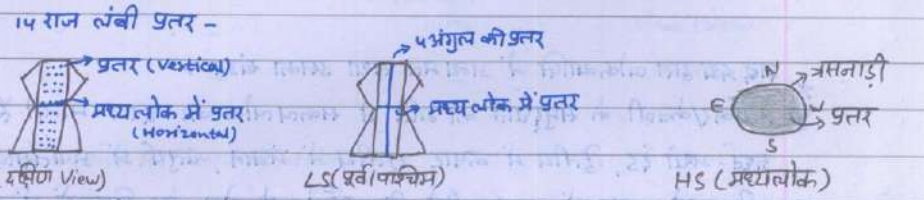

LS (दक्षिण View) LS (पूर्व/पश्चिम) HS (मध्यलोक)

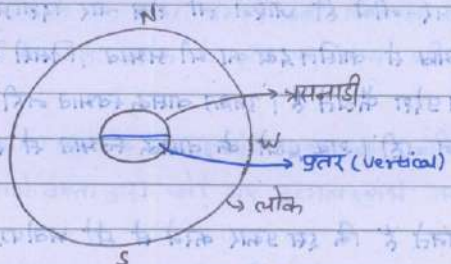

HS (ऊर्ध्व / अधो View)

→ तृतीय समय में Vertical प्रतर से पूरी त्रसनाड़ी और त्रसनाड़ी के बाहर का कुछ देश व्याप्त होगा -

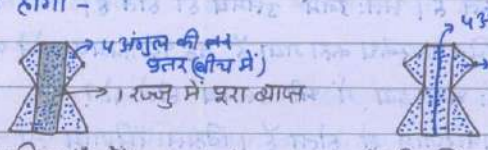

LS (दक्षिण View / North View) LS (पूर्व / पश्चिम View)

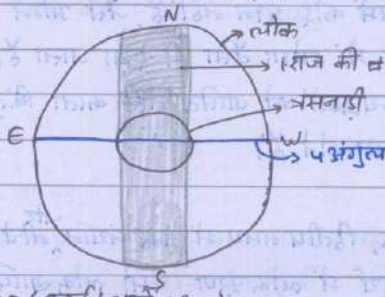

HS (ऊर्ध्व / अधो View)

→ चतुर्थ समय में लोक पूर्ण।

→ प्रथम-द्वितीय समय में लोक का असंख्यात-वां भाग, तृतीय समय में संख्यातवां भाग और चतुर्थ समय में संपूर्ण लोक।

★ 5 समय में राजू की व्याप्ति →

→ वक्ता त्रसनाड़ी के बाहर विदिशा में रहता है।

→ प्रथम समय में भाषा द्रव्य विदिशा से दिशा में आते हैं।
→ द्वितीय समय में लोक नाड़ी में प्रवेश करते हैं।
→ तृतीय समय में दंड, चतुर्थ में मंथान, पंचम में लोक व्याप्त चार समय की व्याप्ति की तरह।
→ प्रथम-द्वितीय-तृतीय समय में लोक का असंख्यातवां भाग, चतुर्थ में संख्यातवां भाग, पंचम में संपूर्ण लोक।

★ शब्द द्रव्य द्वारा लोकव्याप्ति में अन्य मत तथा उसका खंडन →

पू. तीर्थंकर/केवली के समुद्घात की गति से सकल लोक का पूरण मानते हैं - प्रथम समय में ऊर्ध्व-अधो दंड, द्वितीय में कपाट, तृतीय में मंथान, चतुर्थ में अंतरालपूरण।

उ. ① यदि पहले समय में ऊपर-नीचे ही जाएँगे तो शेष चार दिशाओं में उन पुद्गलों का अभाव होगा, उनके अभाव से वासित द्रव्य का भी अभाव, जिससे सुनने का अभाव होगा।

② केवलि समुद्घात में जीव प्रदेश फैलते हैं। उनका वासक स्वभाव नहीं होने से दूसरे समय में कपाट होता है, मंथान नहीं। शब्द द्रव्यों के वासक स्वभाव से सीधे मंथान होता है, कपाट नहीं।

③ केवली केवलज्ञान से जानते हैं कि इस प्रकार करने से मेरे भवोपग्राही कर्म नष्ट होंगे इसलिए इस क्रम से ही वे लोक में व्याप्त होते हैं।

④ जीव के तथास्वभाव से ही ५ समय होते हैं। शब्द पुद्गलों की अनुश्रेणि गति और वासक-स्वभाव लोकव्याप्ति में हेतु है। अतः इनमें ३ समय ही होते हैं।

पू. प्रज्ञापना सूत्र में जो अचित्तमहास्कंध कहा गया है, वह पुद्गलमय होने पर भी ५ समय में लोक को पूरता है अतः भाषा द्रव्य में भी ५ समय होने दो?

उ. ① अचित्त महास्कंध विस्रसापरिणाम से होता है। विस्रसा परिणाम तो विचित्र है। अतः स्वाभाविक होने से उसमें कोई प्रश्न नहीं है, जैसे अग्नि के उष्णत्व में कोई प्रश्न नहीं करता। वह केवलज्ञान में हमेशा वैसा ही देखा जाता है।

② वह भी पराघात से अन्य द्रव्यों को वासित नहीं करता किंतु स्वपुद्गलों से ही लोक को पूरता है। इसलिए ५ समय होते हैं।

पू. प्रथम समय में ऊर्ध्व दंड, द्वितीय समय में ऊपर मंथान और नीचे दंड, तृतीय में ऊपर अंतराल पूरण, अधो मंथान और, चतुर्थ में लोक पूरण। ऐसी लोक व्याप्ति होती है।

उ. यह अयुक्त है क्योंकि -

① आगम में कहीं भी नहीं सुना गया।

② युक्ति युक्त भी नहीं है।

③ पुद्गल प्रथम समय में मात्र ऊपर ही जाते हैं, नीचे नहीं इसका कारण क्या? ... इत्यादि।

* लोक व्याप्ति में एक प्रत्येक समय लोक और भाषा के भाग →

समय/व्याप्ति →	त्रिसामयिक	चतुः सामयिक	पंच सामयिक
1	असंख्य	असंख्य	असंख्य
2	"	"	"
3	लोक	संख्य (असनाड़ी) लोक	"
4	–		संख्य (त्रसनाड़ी)
5	–	–	लोक व्याप्त

* 'लोक के चरमांत पर भाषा का चरमांत' →
अर्थात् लोकांत के आगे धर्मादि द्रव्य होने से नहीं होने से भाषा द्रव्यों की गति नहीं होती। अतः लोक के अंत पर भाषा भी अटक जाती है।

टिप्पणक → मंद प्रयत्न वाला वक्ता → 'असंख्येयात्मकत्वात्' (हरिभद्रीय टीका) →
मंद प्रयत्न वाले वक्ता द्वारा छोड़े गए पुद्गल स्कंध असंख्य ही होते हैं।

→ 'क्षेत्रगणितप्रपेक्ष्य चरमान्ते असंख्येयभागे चरमान्तः असंख्येयभागो भवति भाषायाः समग्र-लोकव्यापिन्याः' (हरिभद्रीय टीका) →
प्र. षट्स्थान के लक्षण वाले गणित की अपेक्षा से अनंत भाग भी हो सकते हैं तो असंख्येय भाग क्यों कहा?
उ. 'क्षेत्रगणितं...' → क्षेत्र-आकाश असंख्य प्रदेशात्मक है। जिससे उसमें अनंतभाग और अनंत गुण का संभव नहीं है। अतः वहाँ ६स्थान वाला गणित ही लेना है। इसलिए यहाँ 'चरमान्त' यानि लोक का आखरी असंख्यातवा भाग अर्थात् अंतिम आकाश प्रदेश।

~~प्रत्यगिरीय~~
~~टीका~~ ~~अव.~~
चूर्णि [अनुसंधान Pg. No. 39 पर]
→ ग्रहण-निसर्ग का जघन्य समय काल - 2 समय (पहले में ग्रहण, दूसरे में निसर्ग)
उत्कृष्ट काल - अंतर्मुहूर्त

प्रत्यगिरीय
टीका अव. तत्त्व-भेद-पर्याय से व्याख्या करना चाहिए। इनमें तत्त्व से और भेद से मतिज्ञान कहा गया। अब भिन्न अलग-अलग देशों के शिष्य समूह के सुखपूर्वक ज्ञान के लिए पर्याय शब्दों को कहते हैं-
गा. 12 ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति, प्रज्ञा, सभी आभिनिबोधिक

ज्ञान है। 12

★ ईहा = अन्वय और व्यतिरेक वाले सत् अर्थों की पर्यालोचना।

★ अपोह = निश्चय।

★ विमर्श = अपाय के पहले और ईहा के बाद विषय के धर्मों का प्रत्यय।

★ मार्गणा = अन्वय धर्मों का अन्वेषण।

★ गवेषणा = व्यतिरेक धर्मों का आलोचन।

★ संज्ञा = व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह के बाद का प्रतिविशेष।

★ स्मृति = पूर्व में अनुभूत अर्थ के आलंबन से होने वाला प्रत्यय।

★ मति = अर्थ का ज्ञान कैसे भी होने पर भी सूक्ष्म धर्म की पर्यालोचना रूप बुद्धि।

★ प्रज्ञा = विशिष्ट क्षयोपशम से होने वाली, बहुत वस्तु में रहे यथावस्थित धर्मों के आलोचन रूप बुद्धि।

दीपिका → संज्ञा = प्रथम अवग्रह के बाद शब्द से अस्पृष्ट अर्थ के ज्ञान रूप।

मलयगिरीय टीका → अत. तत्त्व-भेद-पर्याय से मतिज्ञान के स्वरूप की व्याख्या कर नौ अनुयोग द्वारों द्वारा मतिज्ञान का निरूपण—

गा.13 संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य।
कालो य अंतर भागो भावे अप्पाबहुं चेव ॥12॥

गा.14-15 गति-इंद्रिय-काय-योग-वेद-कषाय-लेश्या-सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-संयत-उपयोग-आहार-भाषक-परीत-पर्याप्त-सूक्ष्म-संज्ञी-भव-चरम, आभिनिबोधिक ज्ञान इन 20 स्थानों में विचारा जाता है। 14-15

अ.13 सत्पदप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अंतर, भाग, भाव, अल्पबहुत्व, ये 9 अनुयोग द्वार हैं।

★ 9 अनुयोग द्वार के अर्थ →

A सत्पदप्ररूपणता— सत् ऐसे पद सत्पद। उस 9 सत्पद की प्ररूपणा अर्थात् गत्यादि द्वारों से उसे विचारना। यानि मतिज्ञान रूप सत्पद को गत्यादि द्वार से विचारना कि वह होता है या नहीं? अथवा
सत्पद यानि गत्यादि स्थान, उन द्वारों से मतिज्ञान का निरूपण।

Q. क्या असत् का भी प्ररूपण होता है जिसके कारण 'सत्' ग्रहण किया गया?

A. हाँ, खरविषाणादि असत् का भी प्ररूपण होता है। अतः यहाँ 'सत्' पद ग्रहण किया।

Q E. द्रव्य प्रमाण— जीवों का प्रमाण कहना अर्थात् 'एक साथ कितने जीव मतिज्ञान स्वीकारते हैं' अथवा कितने जीवों को मतिज्ञान है?' इस प्रकार कहना।

C. क्षेत्र - मतिज्ञान कितने क्षेत्र में होता है ?

D. स्पर्शना - मतिज्ञानी कितने क्षेत्र की स्पर्शना करता है ?

Q. क्षेत्र और स्पर्शना में क्या अंतर ?
A. जहाँ अवगाह होता है, वह क्षेत्र। स्पर्शना तो बाहर से भी होती है। eg. । पुद्गल परमाणु का क्षेत्र । आकाश प्रदेश होता है किंतु स्पर्शना 7 प्रदेश की होती है।

E. काल - मतिज्ञान की स्थिति।

F. अंतर - एक बार मतिज्ञान स्वीकार कर उससे वियुक्त हुआ जीव कितने काल में पुनः उसे प्राप्त करता है।

G. भाग - मतिज्ञानी शेष जीवों के किस भाग में होते हैं।

H. भाव - मतिज्ञानी किस भाव में होते हैं।

I. अल्पबहुत्व - मतिज्ञानी में ही पूर्वप्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान का परस्पर अल्पबहुत्व।

Q. अल्पबहुत्व तो भाग द्वार से ही खबर पड़ जाएगा तो ~~शेषज्ञान~~ अल्पबहुत्व द्वार से क्या ?
A. भागद्वार में शेषज्ञान की अपेक्षा से मतिज्ञान का भाग होगा। अल्पबहुत्व द्वार में प्रतिपन्न - प्रतिपद्यमान का ~~परस्प~~ परस्पर अल्पबहुत्व होगा।

★ A. ★ सत्पदप्ररूपणा →

S. No.	मार्गणा		प्रतिपन्न	प्रतिपद्यमान
1.	गति	4 गति	✓	भाज्य
2.	इंद्रिय	पंचेंद्रिय	✓	भा.
		विकलेंद्रिय	✓ (सास्वादन)	×
		एकेंद्रिय	×	×
3.	काया	त्रस	✓	भा.
		पृथ्वी से वनस्पतिकाय (सैद्धांतिक)	×	×
		(कार्मग्रंथिक)	✓	×
4.	योग	3 योग वाले जीवों में पंचेंद्रियवत्		
		2 योग वाले जीवों में विकलेंद्रियवत्		

* इसका विशेषतः हरिभद्राचार्य टीका और दीपिका में Pg.No. 56 पर।

		1 योग वाले में ऐकेंद्रियवत्		
5.	वेद	3 वेद	✓	भा.
6.	कषाय	अनं तानु बंधी	✓ (v) (सास्वादन)	x
		शेष 3 (प्रत्या./अप्रत्या./सं.)	✓	भा.
7.	लेश्या	कृष्ण - नील - कापोत	✓	x
		तेजस - पद्म - शुक्ल	✓	भा.
8.	सम्यक्त्व	(vi) व्यवहार नय से (vii) (सम्यग्दृष्टि को)	✓	x
		निश्चय नय से	✓	✓
9.	ज्ञान	व्यवहार नय से (viii) ⓐ मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यव पर्याप्त ज्ञानी	✓	x
		ⓑ केवली	x	x
		ⓒ मति-श्रुत अज्ञान - विभंग ज्ञान वाले	x	✓
		निश्चय नय - ⓐ 3 ज्ञानी	✓	✓
		ⓑ मनः पर्याय ज्ञानी	✓	x
		ⓒ केवली	x	x
		ⓓ 3 अज्ञान वाले	x	x
10.	दर्शन	1* चक्षु - अचक्षु - अवधि दर्शनी (लब्धि) (ix)	✓	भा.
		चक्षु - अचक्षु - अवधि दर्शनी (उपयोग)	✓	x
		केवल दर्शनी	x	x
11.	संयत	मुनि - संयत (x)	✓	भा.
12.	उपयोग	साकार	✓	भा.
		अनाकार (xi)	✓	x
13.	आहार	आहारक	✓	भा.
		अनाहारक (विग्रहगति में)	✓	x
14.	भाषक	भाषा-लब्धिप्राप्त	✓	भा.
		अभाषक (एकेंद्रिय)	x	x
15.	परीत	प्रत्येक शरीरी / अल्प संसारी (xii)	✓	भा.
		साधारण शरीरी / दीर्घ संसारी	x	x
16.	पर्याप्त	6 पर्याप्ति वाले	✓	भा.
		अपर्याप्त	✓	x
17.	सूक्ष्म	सूक्ष्म	x	x
		बादर	✓	भा.
18.	संज्ञी	दीर्घकालिक संज्ञी	✓	भा.
		असंज्ञी	✓	x

* इस मत में घट बनाने की क्रिया अंतिम समय की एक ही क्रिया है।
इस प्रकार इस मत से घट की क्रिया अनेक क्रियाओं के समूह रूप है।

19.	भव	भव्य (iii) (संज्ञी वत्)	✓	भा.
		अभव्य	×	×
20.	चरम	अंतिम भव्य जिनका भविष्य में होगा	✓	भा.
		अचरम	×	×

(i) पूर्वप्रतिपन्न = जिन्होंने पूर्व में प्रतिज्ञान स्वीकारा है और वर्तमान में भी है।
प्रतिपद्यमान = जो वर्तमान क्षण में सम्यक्त्व प्राप्ति से प्रतिज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

(ii) भाज्य = कभी होते हैं, कभी नहीं होते।

(iii) विकलेन्द्रियों को करण-अपर्याप्त अवस्था में पूर्वभव से आया हुआ सास्वादन सम्यक्त्व संभव होने से पूर्वप्रतिपन्न संभव है।

(iv) सैद्धान्तिक मत = आगमिक मत - पृथ्वी आदि में सास्वादन सम्यक्त्व नहीं स्वीकारते।
कार्मग्रंथिक मत - लब्धिपर्याप्त किंतु करण-अपर्याप्त बादर पृथ्वी-अप्-वनस्पतिकाय में सास्वादन सम्यक्त्व मानता है। अतः पूर्वप्रतिपन्न संभव है।

(v) अनंतानुबंधिकषायों के उदय में सास्वादन सम्यक्त्व होने से पूर्वप्रतिपन्न संभव है।

* (vi) व्यवहार नय - यह नय स्थूलता से क्रिया और क्रिया के काल को मानता है। अतः यहाँ क्रियाकाल और निष्ठाकाल (कार्योत्पत्ति) में भेद होता है अर्थात् जिस समय क्रिया पूरी होती है, उसके एक क्षण बाद कार्योत्पत्ति होती है। eg. घट बनाने की क्रिया तो बहुत लंबी होती है किंतु क्रिया पूरी होने के बाद कार्य घट उत्पन्न होता है।
~~अ~~ इस नय के मत से मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी ही सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

निश्चय नय - यह नय सूक्ष्मता से क्रिया और क्रिया के काल को मानता है। ~~अतः सर्व क्रिया~~ अर्थात् एक बड़ी क्रिया के यह समय अनुसार छोटे-छोटे टुकड़े कर देता है और ऐसा मानता है कि जिस समय में जो क्रिया की जाती है, उसका फल-कार्य उसी समय उत्पन्न होता है। eg. घट बनाने की क्रिया के यह क्षण के अनुसार अनेक टुकड़े कर देगा। फिर पहले समय में मिट्टी को चक्र पर चढ़ाने की क्रिया की तो उसका कार्य (चक्र पर मिट्टी आना) उसी समय हो गया। दूसरे समय में शिबक-स्थास-कुशूल वि. बनाने की क्रिया की, उस-उस समय में वे उत्पन्न हो गए। अंतिम समय में घट बनाने की क्रिया की, उसी समय में घट उत्पन्न हुआ। ~~इस प्रकार घट अनेक क्रियाओं से बनता है~~ अतः यहाँ क्रियाकाल और निष्ठाकाल में अभेद होता है अर्थात् जिस समय में क्रिया पूर्ण होती है, उसी समय कार्योत्पत्ति होती है।
इस नय के मत से सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी ही सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

→ ऊपरोक्त व्यवहार और निश्चय नय के मत short में -

समय →	①	②
व्यवहार नय	मति अज्ञान है मतिज्ञान की उत्पत्ति की क्रिया	मतिज्ञान है
निश्चय नय	मति अज्ञान है	मतिज्ञान की उत्पत्ति की क्रिया मतिज्ञान है।

निश्चयनय और व्यवहार नय की चर्चा →

★ व्य.- ~~यदि~~ सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी सम्यक्त्व-ज्ञान को स्वीकारता है, ऐसा यदि माने तो उत्पन्न हो चुके सम्यक्त्व-ज्ञान को यह पुनः उत्पन्न करता है और उत्पन्न हुई वस्तु पुनः तो उत्पन्न होती नहीं है जै. निष्पन्न घट। यहाँ प्रयोग-
यद् विद्यमानं तत्केनचिदपि कर्तुं न शक्यं, यथा घटः। और यहाँ सम्यग्दृष्टि को सम्यक्त्व-ज्ञान तो विद्यमान है, अतः पुनः उत्पन्न होते नहीं है।
विपक्ष में उदोष हैं-
(क) यदि किया हुआ भी पुनः किया जाता है तो कृतत्व सामान्य होने से पुनः पुनः करने की आपत्ति - अनवस्था (b)
(ख) पूर्व में निष्पन्न होने से क्रिया के फल का अभाव होने से-क्रिया की निष्फलता
(ग) प्रत्यक्षबाधा- साधी द्वारा घटादि कार्य पूर्व में नहीं किए हुए ही वर्तमान में होते हुए देखे जाते हैं, किंतु पूर्व में किए हुए पुनः करते हुए नहीं देखे जाते। (c)
(d) यदि ऐसा कहो कि 'क्रियाकाल-निष्ठा काल के अभेद से इस प्रकार कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि ही सम्यक्त्व-ज्ञान को प्राप्त करता है' वह भी अयुक्त है क्योंकि क्रियाकाल-निष्ठाकाल के अभेद का अभाव है। प्रत्यक्ष (a) ही है कि घटादि कार्य का काल बहुत बड़ा होता है और (b) सारंभ में ~~ही~~ घटादि कार्य नहीं देखे जाते किंतु (c) विवक्षित क्रियाकाल के अंत में ही देखे जाते हैं। इसी प्रकार यहाँ भी (d) श्रवण के आरंभ में ही ज्ञान नहीं होता किंतु अंत में होता है।

निश्चय- (a) ~~कोई भी उत्पन्न~~ न हुई हो ऐसी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती, असत्व होते से, खपुष्प की तरह-
न अजातं खलु जायते किञ्चिदपि, असत्वत्वात्, खपुष्पवत्।
यदि ऐसा मानो कि अजात वस्तु उत्पन्न होती है तो खरविषाणादि की उत्पत्ति की आपत्ति आएगी क्योंकि अजातत्व दोनों में सामान्य है।
(b) ऐसी अनवस्था तो विपक्ष में भी है- यदि असत् किया जाए तो असत्त्व का अभाव होने से नित्य करते रहो। यदि ऐसा कहो कि कार्योत्पत्ति होने पर क्रिया बंद होने से सदा क्रिया करने की आपत्ति नहीं आएगी, तो वह भी गलत है क्योंकि

कार्य की उत्पत्ति होगी ही नहीं। खरविषाणादि अत्यंत असत् है। उन्हें उत्पन्न करना अशक्य है। अतः कार्य करते रहो, कार्य की उत्पत्ति होगी नहीं – इस प्रकार क्रिया की विफलता का भी दोष (क्रिया) है।

(c) जो कहा था कि 'सभी घटादि कार्य पूर्व में नहीं हुए ही होते हुए देखे जाते हैं' वह भी अयुक्त है। यदि पूर्व नहीं हुए कार्य ही होते हैं तो पूर्व में असत् होने से खरविषाण वि. भी क्यों प्राप्त नहीं होते।

(d) जो कहा था कि क्रियाकाल-निष्ठाकाल के अभेद का अभाव है' वह भी अयुक्त है क्योंकि क्रियाकाल-निष्ठाकाल का अभेद ही व्यवस्थित है। यह अभेद यदि व्यवस्थित न हो तो कार्यकाल में क्रिया का भाव नहीं होगा। कार्यकाल में क्रिया का अभाव होने से पूर्व की तरह कार्य की अनुत्पत्ति का प्रसंग आएगा।

(e) जो कहा गया कि 'प्रत्यक्ष से ही सभी घटादि क्रिया काल दीर्घ होते हैं' वह भी अयुक्त है क्योंकि प्रत्येक समय अन्य-अन्य कार्य उत्पन्न होता है – शिबक, स्थास, कुशूल इत्यादि। इसलिए परस्पर विलक्षण ऐसे अन्य-अन्य कार्य का दीर्घ काल देखा जाता है, उसमें घर को क्या? शेषकार्यों का क्रियाकाल घर का क्रियाकाल नहीं है

(f) जो कहा गया कि 'आरंभ में ही अथवा शिबकादि के काल में ही घर कार्य नहीं' देखा जाता' वह स्थूलमति का सूचक है। प्रथम समय में घर कार्य का आरंभ नहीं किया था किंतु चक्र पर मिट्टी रखने की क्रिया थी। अतः प्रथम समय में वही कार्य (चक्र पर मिट्टी) दिखता है। जो घर आरंभ नहीं किया था, वह कैसे दिखेगा? अन्य कार्य के आरंभ में अन्य कार्य नहीं देखा जाता है। इसी प्रकार शिबकादि के काल में भी जानना।

(g) जो कहा था कि 'विवक्षित क्रियाकाल के अंत में, वह कार्य देखा जाता है' यह युक्त ही है क्योंकि विवक्षित कार्य के निमित्त रूप ऐसी कार्यकोटि (कार्य के अंश) के क्रियाकाल के अंत में वही कार्यकोटि देखी जाती है।

जो लोक अवहार करता है कि घर को करने में इतना काल लगा, वह लोक घर की अर्पिता से, घर के निमित्त ऐसे प्रतिसमय उत्पन्न होने वाले कार्य के क्रिया काल को घर में लगाता है परंतु स्थूल मति होने से विवेक (विवेचन) नहीं करता।

(h) इस प्रकार यहाँ भी प्रतिसमय होने वाले श्रवणादि कार्य परस्पर विलक्षण (भेद) हैं। अतः उनके काल में सम्यक्त्व या ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। जिस समय में सम्यक्त्व या ज्ञान के उत्पाद की क्रिया होती है, उस समय वे उत्पन्न हो ही जाते हैं।

(vii) व्यवहार नय के मत से प्रतिज्ञान के पूर्व प्रतिपन्न ही होते हैं, प्रतिपद्यमान नहीं क्योंकि जिस समय क्रिया होती है, उसके बाद वाले क्षण में ज्ञान होता है। अतः उस क्षण में क्रिया न होने से प्रतिपद्यमान-पन का अयोग है।

निश्चय नय के मत से दोनों होते हैं।

(viii) यहाँ भी व्यवहार-निश्चय के मत पूर्ववत् समझना। केवल विशेष -

→ 3 अज्ञान वाले जीवों में व्यवहार नय से प्रतिपद्यमान होंगे किंतु इसके पूर्व 8वें सम्यक्त्व द्वार में प्रतिपन्न ही पढ़ाए, प्रतिपद्यमान की निषेध किया। उसका कारण -

~~हमें इसमें~~ ~~मिथ्यात्व~~ ~~सम्यक्त्व~~ ~~सम्यक्त्व~~

~~मात्र सम्यग्दृष्टि जीव~~ ~~सम्यक्त्व है~~ ~~सम्यक्त्व है~~

→ 8वें सम्यक्त्व द्वार में — ① मिथ्यात्व है — ② सम्यक्त्व है — ③ सम्यक्त्व है

सम्यग्दृष्टि जीव — क्रियाकाल → निष्ठा — निष्ठा

9वें द्वार में अज्ञानी — मिथ्यात्व है — सम्यक्त्व है — सम्यक्त्व है

जीव को — मत्यज्ञान है — मतिज्ञान — प्रतिज्ञान

क्रियाकाल → निष्ठा — निष्ठा

8वें द्वार में सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा से विचारने पर दूसरे क्षण की स्थिति होगी। दूसरे क्षण अनुसार व्यवहार नय से हमेशा प्रतिपन्न ही होंगे, प्रतिपद्यमान नहीं।

9वें द्वार में अज्ञान वाले जीव की अपेक्षा से विचारने पर प्रथम क्षण अनुसार व्यवहार नय से हमेशा प्रतिपद्यमान ही होंगे, पूर्वप्रतिपन्न नहीं।

→ निश्चय नय के मत से ~~म~~ मनःपर्यवज्ञानी पूर्वप्रतिपन्न ही होंगे क्योंकि मनःपर्यव ज्ञान मुनि को ही होने से सम्यक्त्व और प्रतिज्ञान तो पहले ही हो चुके होंगे।

(ix) प्रथम तीन दर्शन में लब्धि के आश्रय से प्रतिपन्न हमेशा होते हैं, प्रतिपद्यमान आश्रय होते हैं। उपयोग के आश्रय से प्रतिपन्न ही होते हैं, प्रतिपद्यमान नहीं क्योंकि लब्धियों की उत्पत्ति हमेशा ज्ञानोपयोग में ही होती है, दर्शनोपयोग में नहीं। प्रतिज्ञान भी लब्धि है, वह ज्ञानोपयोग में ही प्राप्त होता है।

(x) प्र. प्रतिज्ञान तो सम्यक्त्व प्राप्ति में ही हो जाता है और साधु तो 6ठें गुणस्थान में होता है। तो संयत प्रतिपद्यमान कैसे?

उ. जो अतिविशुद्ध होने से सम्यक्त्व और चारित्र को एक साथ प्राप्त करता है, वह उस अवस्था में ~~संम~~ संयम प्रतिपद्यमान होने पर सम्यक्त्व-प्रतिज्ञान का प्रतिपद्यमानक होता है।

(xi) अनाकार उपयोग में लब्धि की उत्पत्ति न होने से प्रतिपद्यमान नहीं होते।

(xii) परीत यानि प्रत्येक अथवा जिनका संसार अर्धपुद्गलपरावर्त के अंदर हो

(xiii) 9. भव द्वार में भव्य और अभव्य जीवों का विचार। चरम द्वार में जिनका चरम भव होने वाला है और जिनका चरम भव नहीं होने वाला, ऐसे जीव। तो भव और चरम द्वार में क्या अंतर?

उ. भव्य जीवों में जातिभव्य जीव भी आते हैं जिनका कभी भी अंतिम भव नहीं आने वाला। उनसे इन दोनों द्वारों में भेद है।

★ B. द्रव्यप्रमाण → प्रतिपत्ति के आश्रय से विवक्षित काल में कभी जीव होते हैं, कभी नहीं। यदि होते हैं तो जघन्य से १, उत्कृष्ट से क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग के प्रदेशों की राशि प्रमाण।

→ पूर्वप्रतिपन्न जघन्य से क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग के प्रदेशों की राशि प्रमाण, उत्कृष्ट से कुछ विशेषअधिक।

★ C. क्षेत्र → अनेक जीवों के आश्रय से सभी मतिज्ञान वाले जीवों को एक जगह इकट्ठा करने पर लोक का असंख्य भाग ही व्याप्त होता है।

→ एक जीव के आश्रय से इलिकागति से ऊपर अनुत्तर विमान में जाते अथवा आते हुए जीव ७ राज प्रमाण होता है। नीचे ६ठी पृथ्वी तक जाते। आते हुए जीव १ राज प्रमाण होता है।

इससे नीचे क्षेत्र नहीं होता क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव सातवीं नरक में नहीं जाता। सैद्धांतिक मत के अभिप्राय से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाला जीव सम्यक्त्व की विराधना से नीचे ६ठीं नरक तक जा सकता है किंतु कार्मग्रंथिक मत में सम्यक्त्वी वैमानिक देव सिवाय अन्य जगह नहीं जा सकता। तिर्यंच अथवा मनुष्य में भी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व छोड़कर ही जाता है।

प्र. नीचे ७वीं नरक में भी सम्यक्त्व की प्राप्ति दिखाई है। तो वहाँ सम्यग्दर्शन प्राप्तकर पुनः ऊपर आते हुए जीव ६ राज प्रमाण होगा। तो १ राज प्रमाण ही क्यों कहा?

उ. सम्यग्दृष्टि देव और नारक मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं। ७वीं नरक के जीव तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि ७वीं नरक में जीव सम्यक्त्व पाकर पुनः वहीं छोड़कर ही तिर्यंच में जाता है।

★ D. स्पर्शना → क्षेत्र द्वार में ही आ गया।

★ E. काल → उपयोग के आश्रय से तो एक अथवा अनेक जीवों का जघन्य या उत्कृष्ट

से अंतर्मुहूर्त।

→ लब्धि के अभाव से अनेक जीवों का सर्वकाल। एक जीव का जघन्य से अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट से 66 सा. से कुछ अधिक।
कोई साधु मत्यादि ज्ञान से युक्त देशोन पूर्वकोटी तक दीक्षा पालकर विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित में से किसी एक में उत्कृष्ट 33 सा. वाला देव की आयु भोगकर पुनः देशोन पूर्वकोटी मनुष्य में दीक्षा पालकर पुनः विजयादि में 33 सा. पूर्णकर पुनः मनुष्य में आकर पूर्वकोटी जीकर सिद्ध हो। इस प्रकार 66 सा. + 3 पूर्वकोटी।
अथवा इसी प्रकार 22 सा. की उत्कृष्ट आयु वाले अच्युत कल्प में 3 बार जाकर, ~~4 पूर्व-कोटी से~~ सिद्ध हो तो 66 सा. + 4 पूर्वकोटी।
मनुष्य → देव → मनुष्य → देव → मनुष्य → सिद्ध
(1 पू.को.) (33 सा.) (1 पू.को.) (33 सा.) (1 पू.को.)
अथवा
मनु. → देव → मनु. → देव → मनु. → देव → मनु. → सिद्ध
(1 पू.को.) (22 सा.) (1 पू.को.) (22 सा.) (1 पू.को.) (22 सा.) (1 पू.को.)

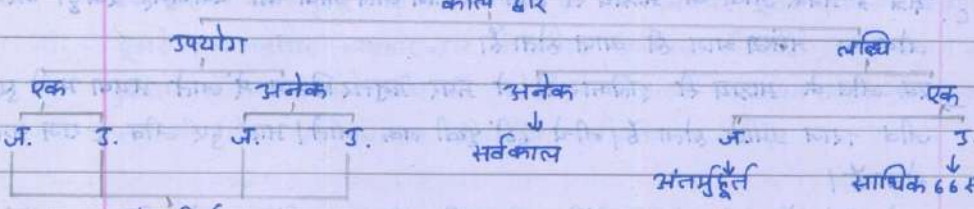

* F. अन्तर द्वार →

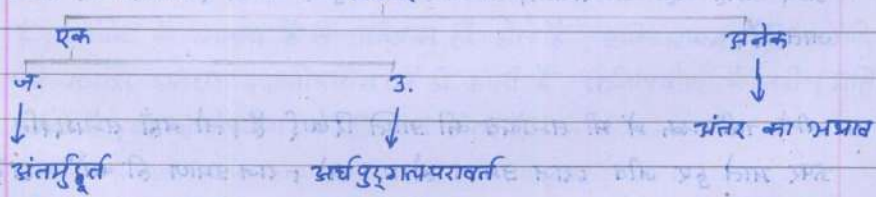

आशातनाप्रचुर जीव को यह अर्धपुद्गलपरावर्त का उत्कृष्ट काल होता है। आशातना-तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर, महर्द्धिक संबंधी।

* G. भाग → मतिज्ञानी शेषज्ञानी और अज्ञानियों के अनंतवें भाग में होते हैं। शेषज्ञानी सिद्ध सहित और अज्ञानी वनस्पति सहित अनंत होते हैं।

★H. भाव → मतिज्ञानी क्षायोपशमिक ~~क्षय~~ भाव में होते हैं क्योंकि मतिज्ञान क्षायोपशमिक है।

★I. अल्पबहुत्व → यदि विवक्षित काल में प्रतिपद्यमान हो तो वे सभी से अल्प, फिर जघन्यपद वाले पूर्वप्रतिपन्न असंख्यगुण, फिर उत्कृष्टपद वाले पूर्वप्रतिपन्न विशेषाधिक।

H. मतिज्ञान का उपसंहार और श्रुतज्ञान की भूमिका →

गा.16 आभिनिबोधिक ज्ञान में 28 प्रकृति होती हैं। (पूर्वार्ध)

★ 4व्यंजनावग्रह + 6 अर्थावग्रह + 6 ईहा + 6 अपाय + 6 धारणा = 28

★ मतिज्ञान 4 प्र. → (मतिज्ञान के विषय)

1. द्रव्यतः → सामान्य से सभी द्रव्यों को जानता है, विशेष से नहीं।
2. क्षेत्रतः → सर्व क्षेत्र सामान्य से।
3. कालतः → सर्व काल
4. भावतः → औदयिकादि 6 भाव। [सर्वभावों के अनंतवे भाग को जानते हैं - हरिभद्रीय टीका]

श्रुतज्ञान में प्रकृतियाँ विस्तार से कहूँगा। (उत्तरार्ध) 16

★ आपि → भवधि प्रकृति को भी कहूँगा।

गा.17 प्रत्येक अक्षर अनेक भेद वाले हैं। लोक में जितने अक्षरसंयोग हैं, उतनी श्रुतज्ञान की प्रकृतियाँ होती हैं। 17

★ प्रत्येक अक्षर अनेक भेद वाला है। eg. अकार के 2 प्र. सानुनासिक और निरनुनासिक, दोनों के 3-3 प्र. उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ऐसे अकार 6 प्र.। इसी प्रकार आकार 6 प्र., प्लुत अ के 6 प्र.। कुल अवर्ण 18 प्र.। इसी प्रकार इवर्णादि में भी जानना।
अक्षरों के द्वि वि. संयोग लोक में अनंत हैं।

प्र. अकारादि अक्षर भी संख्येय हैं, तो संयोग अनंत कैसे घटेंगे ?

उ. यहाँ पुद्गलास्तिकाय अभिधेय हैं। वह परस्पर विलक्षण अनंत हैं eg. परमाणु, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् अनंताणुक। अभिधेय के भेद होने पर अभिधान का भी भेद होता है क्योंकि अभिधेय का भेद अभिधान भेद का हेतु है।
तथा एक ही अभिधेय में भी अनेक अभिधान होते हैं eg. परमाणु निरंश निरवयव निर्भेद निष्प्रदेश, द्व्यणुक द्व्यंश द्विप्रदेश द्विभेद द्व्यवयव इत्यादि। ये सभी ध्वनि सर्वथा एक ही अभिधेय की वाचक नहीं हैं क्योंकि सभी शब्दों का प्रवृत्तिनिमित्त भिन्न है।
इस प्रकार सर्वद्रव्यों - सर्वपर्यायों में जानना। इसलिए अक्षरसंयोग अनंत होते हैं।

अक्षरसंयोग अनंत होने से ही श्रुतज्ञान में इतनी प्रकृतियाँ होती हैं।

चूर्णि → गा.16 के उत्तरार्द्ध में → अपि शब्द संभावना अर्थ में।
संभावना किसकी? व व्याख्या २प्र.- संक्षेप से और विस्तार से। उसमें विस्तार से श्रुतज्ञान की प्रकृतियाँ कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ, संक्षेप से मैं कहूँगा।

हरिभद्रीय टीका → [Pg.No. 48 का ~~अनुसंधान~~ अनुसंधान]
दर्शन द्वार → चक्षु-अचक्षुदर्शनी में लब्धि के आश्रय से प्रतिपन्न होते हैं, प्रतिपद्यमान भाज्य हैं। ~~उपयोग के आश्रय से~~
अवधि दर्शनी पूर्वप्रतिपन्न ही होते हैं, प्रतिपद्यमान नहीं।

टिप्पणक → प्र.- अवधिदर्शनी को जो प्रतिपद्यमान का निषेध किया है, वह विचारे बिना कहा गया है। क्योंकि अवधिदर्शनी तो प्रतिपद्यमान भी होते हैं। eg. देव या नारक विभंग ज्ञान वाले जब सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे तब उन्हें अवधिदर्शन तो होगा ही क्योंकि दर्शन का विपर्यय नहीं होता। अतः ~~उन्हें~~ अवधिदर्शन के सद्भाव में मतिज्ञान प्राप्त होने से प्रतिपद्यमान भी होंगे। यह आचार्य की भूल हो गई है।
उ. यहाँ उपयोग की अपेक्षा से आचार्य ने कहा है क्योंकि दर्शनोपयोग में कभी लब्धि अगर नहीं होती।
पू. विशेष नहीं कहा होने से यहाँ उपयोग की विवक्षा है, ऐसा कैसे लाए?
उ. यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो आचार्य का वचन गलत होगा। अतः हम कहते हैं कि उनके वचन को सही करने के लिए अपेक्षा माननी चाहिए। तत्त्व तो केवली जाने।

मलयगिरीय टीका अब श्रुतज्ञान के सभी भेदों का वर्णन करने के लिए असमर्थता-
गा.18 श्रुतज्ञान की सभी प्रकृतियों का वर्णन करने की शक्ति मुझे कहाँ से? 14प्र. के निक्षेप श्रुतज्ञान संबंधी मैं कहूँगा।
★ श्रुतज्ञान की सभी प्रकृतियों का वर्णन करने की शक्ति मुझे कहाँ से? अर्थात् मुझमें नहीं है।
★ प्र. शक्ति क्यों नहीं है?
उ. क्योंकि यहाँ जो मतिज्ञान ग्रंथानुसारी हो, वह भी श्रुतज्ञान कहा गया है। उन सभी अभिलाप्य भावों को कहने के लिए उत्कृष्ट श्रुतधर भी समर्थ नहीं है। क्योंकि वे भाव अनंत हैं, आयु परिमित है और वचन क्रम में वर्तता है।
★ श्रुतज्ञान विषयक 14 निक्षेप कहूँगा।

च शब्द - श्रुतज्ञान विषयक भी।
अपि शब्द - साक्षर-अनक्षर दोनों रूप में।

अव. सू. 1.4 पृ. के श्रुत निक्षेप →
गा. 19 अक्षर, संज्ञी, सम्यक्, सादि, सपर्यवसित, गमिक, अंगप्रविष्ट ये सातों प्रतिपक्ष सहित निक्षेप हैं।

☆ अक्षर श्रुत →
'अर सञ्चलने' न क्षरति इति अक्षरम् = जो चलित न हो। अर्थात् जो अनुपयोग में भी च्युत न हो, चलित न हो।
भाव श्रुत का कारण होने से अकारादि को भी उपचार से अक्षर कहा जाता है।

अक्षर 3 प्र. -
1. संज्ञाक्षर - अक्षर का आकार विशेष। यह ब्राह्मी लि. लिपी के भेद से अनेक प्रकार का है। eg. घरिका के आकार वाला घकार (घरिका = छोटे घड़े)
2. व्यंजनाक्षर - घट घटीप की तरह, अर्थ जिससे द्वारा प्रकाशित किया जाए वह अर्थात् बोला जाता हुआ अ से लेकर ह तक के सभी वर्ण।
3. लब्ध्यक्षर - इंद्रिय मन के निमित्त से श्रुतग्रंथानुसारी जो अक्षर की प्राप्ति।

संज्ञाक्षर और व्यंजनाक्षर भावाक्षर का कारण होने से द्रव्य श्रुत हैं।
लब्ध्यक्षर भावश्रुत है।

चूर्णि → व्यंजनाक्षर के अलग-अलग अपेक्षा से भेद →
1. यथार्थनियत - दहति इति दहनः, ऐसे यथार्थ नाम
अयथार्थनियत - मांस नहीं खाने वाले का 'पलाशी' नाम।
2. एकपर्याय - किसी द्रव्य का एक ही नाम होता है।
अनेकपर्याय - कोई द्रव्य के अनेक नाम।
3. एकाक्षर - eg. श्रीः ह्रीः धीः इत्यादि।
अनेकाक्षर - eg. सहस्राक्ष, ईशान आदि।
4. संस्कृत - eg. आत्मा, पुद्गल आदि।
प्राकृत - eg. आया, पोग्गल आदि।

→ लब्धि अक्षर 5 प्र. - श्रोत्रेंद्रिय, चक्षु इंद्रिय... स्पर्शेंद्रिय। eg. शंख का शब्द सुनने पर 'शंख है' इस प्रकार का लब्धि अक्षर।

→ यह अक्षर का उपलंभ प्रायः संज्ञी जीवों को होता है क्योंकि असंज्ञी जीव सूत्र को देखते हुए भी जानता नहीं है।

→ प्रत्येक अक्षर के 29 के पर्याय - स्वपर्याय और परपर्याय। स्वपर्याय = अस्तित्व, विपमानता। स्व-पर दोनों पर्याय 2-2 9 के - संबद्ध, असंबद्ध। eg. अकार के स्वपर्याय अस्तित्व से संबद्ध, नास्तित्व से असंबद्ध। उसी अकार के पर्याय अन्य के अस्तित्व से असंबद्ध, नास्तित्व से संबद्ध। अकार के परपर्याय ब नास्तित्व से संबद्ध, अस्तित्व से संबद्ध असंबद्ध।

→ ज्ञेय का परिमाण - सर्व आकाश के प्रदेशों की संख्या से अनंत गुणा अक्षर के पर्याय होते हैं। अर्थात् प्रत्येक आकाश प्रदेश के जितने अगुरुलघु पर्याय हैं, उनकी इकट्ठी संख्या समान अक्षर का परिमाण होता है। इसी प्रकार ज्ञेय के मान से ज्ञान का परिमाण जानना।
बाहर- गुरु द्रव्यों के जो गुरुत्वपु और अगुरुत्वपु पर्याय, उन्हें बुद्धि से एकत्र कर उसी राशि से अनंत बार गुणा करने पर भी एक अमूर्त द्रव्य के अगुरुलघु पर्यायों के समान नहीं होता।

→ सभी जीवों को श्रुतज्ञान का अनंतवा भाग नित्य खुल्ला रहता है - अनुत्तर देवों को सर्व से विशुद्ध श्रुतज्ञान। असंख्य गुण हीन ऊपरि ग्रैवेयकों को ... इस प्रकार असंख्य-असंख्यगुण हीन की श्रेणि पृथ्वीकाय तक। यदि जीव का प्रत्येक प्रदेश कर्म के अनंत अविभाग परिच्छेदों से ढँक जाए तो भी जीव को कुछ ज्ञान तो होता ही है।

मलयगिरीय
टीका भव. अनक्षर श्रुत का स्वरूप →
गा. 20 उच्छ्वास, निःश्वास, निष्ठ्यूत, खाँसी, छींक, निस्सिंघित, अनुस्वार, भारी आदि संज्ञा वि. अनक्षर श्रुत है।
* निष्ठ्यूत - थूँकना। निस्सिंघित - सूंघना।
अनुस्वार - अनुस्वार वाला स्वर (हुंकार, Humming वि)
भारी - सीत्कार, इतकार वि.। (छोलित = सीत्कार चूर्णि में)
* यहाँ उच्छ्वासादि ध्वनि रूप होने से द्रव्य श्रुत है। अथवा श्रुत में उपयोग वाले जीव की सभी व्यापार श्रुत है क्योंकि वह व्यापार श्रुतरूप में परिणत है।

प्र. हाथ-पैर की चेष्टा को भी श्रुत क्यों नहीं कहते?
उ. ① रूढ़ि से।
② श्रूयते इति श्रुतम्। उच्छ्वासादि सुने जाते हैं किंतु चेष्टा सुनी नहीं जाती।

★ संज्ञी द्वार →
संज्ञा अस्ति अस्य इति संज्ञी। संज्ञी जीव का श्रुत संज्ञिश्रुत।

प्र. यदि संज्ञा के संबंध मात्र से संज्ञी कहोगे तो एकेंद्रिय भी संज्ञी होंगे। क्योंकि उन्हें भी आहारादि संज्ञा होती है। (प्रज्ञापना सूत्र) - आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, ओघ, लोक - 10 प्र. की संज्ञा।

उ. इन संज्ञाओं में जो ओघ और लोक संज्ञा है, वह अति अल्प है इसलिए उनके संबंध से 'संज्ञी' नहीं कह सकते क्योंकि मात्र कार्षापण से किसी को धनी नहीं कहा जाता। जो आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञा है, वे भी विशिष्ट नहीं है इसलिए अविशिष्ट संज्ञा से किसी को संज्ञी नहीं कह सकते क्योंकि अविशिष्ट रूप से किसी को रूपवान् नहीं कहते।
जो बड़ी और सुंदर मनोज्ञान रूप संज्ञा है, उसी से संज्ञी कहते हैं। यह मनोज्ञान रूप संज्ञा 3 प्र. -

1. दीर्घकालिक - जिस संज्ञा से जीव भूतकाल को दीर्घकाल तक याद रखता है और भविष्य को सोचता है, कि मेरे द्वारा क्या कर्त्तव्य है इत्यादि। इस संज्ञा से मनोवर्गणा को ग्रहण कर मन ~~रूप~~ रूप में परिणमित कर विचारते हैं। यह गर्भज मनुष्य-तिर्यंच, देव-नारक को ही होती है।
2. हेतुवाद - हेतु = निमित्त। जो बुद्धिपूर्वक स्वदेह के पालन के लिए इष्ट आहारादि में प्रवृत्त होते हैं और अनिष्ट से निवृत्त होते हैं। यह मात्र वर्तमान काल विषयक ही सोचते हैं, भूत-भविष्य नहीं। यह द्वीन्द्रियादि को होती है क्योंकि वे भी मन के चिंतन पूर्वक अनिष्ट-इष्ट में अब प्रवृत्त होते हैं।
3. दृष्टिवाद - दृष्टि = दर्शन, सम्यक्त्व। ज्ञानावरण के क्षयोपशम से सम्यग्दृष्टि की संज्ञा होती है। मिथ्यादृष्टि यहाँ असंज्ञी है।

★ सम्यक् द्वार →
सम्यक् श्रुत - आचारांगादि अंगप्रविष्ट श्रुत और आवश्यकादि अनंगप्रविष्ट श्रुत।
मिथ्या श्रुत - पुराण, रामायणादि।
अथवा
सम्यक् श्रुत - सम्यग्दृष्टि में सभी श्रुत सम्यक् क्योंकि वह हेय-उपादेय को सम्यक् प्रकार से जानता है।
मिथ्याश्रुत - मिथ्यादृष्टि में सभी श्रुत मिथ्या।

★ सादि और सपर्यवसित द्वार →
द्रव्यास्तिक नय से श्रुत अनादि और अपर्यवसित। पर्यायास्तिक नय से श्रुत सादि-सांत है।

अथवा

द्रव्य से - एक जीव के आश्रय से सादि-सांत।
- अनेक जीव " अनादि - अनंत।

क्षेत्र से - ५ भरत ऐरावत के आश्रय से सादि-सांत।
- ५ महाविदेह " अनादि-अनंत।

काल से - अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के आश्रय से सादि-सांत।
- नोत्सर्पिण्यवसर्पिणी " अनादि-अनंत।

भाव से - प्रज्ञापक में रहे उपयोग-स्वर-प्रयत्न-स्थानादि, ज्ञेय में रहे गति-संस्थान-भेद-वर्णादि भावों के आश्रय से सादि-सांत।
- क्षायोपशमिक भाव के आश्रय से अनादि-अनंत।

* गमिक द्वार →
गमिक ⇒ गम = भांगे। भांगे वाले अथवा जो एक जैसे पाठ हैं वे गमिक श्रुत। ex. दृष्टिवाद
अगमिक ⇒ जो असदृश पाठ हैं वे अगमिक श्रुत। ex. कालिक।

* अंगप्रविष्ट और अनंगप्रविष्ट →
अंगप्रविष्ट - गणधरों द्वारा रचे गए १२ अंग।
अनंगप्रविष्ट - इत्वं स्थविरों द्वारा रचे गए शास्त्र।

प्र. पूर्व में गणधरों द्वारा रचे गए होने से पूर्व कहते हैं। उन पूर्वों में सकल वाङ्मय का अवतार है। ऐसी कुछ नहीं है, जो उसमें न कहा हो तो शेष अंग/ग्रंथ रचना से क्या?

उ. पूर्वों के अर्थ अतिगंभीर होने से और प्राणी अल्प बुद्धि वाले होने से वे पढ़ नहीं सकते। तथा ~~स्त्री~~ स्त्रियों को भी पूर्व पढ़ने का अधिकार नहीं है।
'तुच्छा गारवबहुला चलिंदिया दुब्बला धिईए।
इति अइसेसज्झयणा भूयावाओ न इत्थीणं॥
अर्थात् स्त्री तुच्छ, गारव से बहुल, चंचल इंद्रिय वाली और धृति से दुर्बल होती है अतः उन्हें अतिशेष अध्ययन और भूतवाद का अधिकार नहीं है।
अतिशेष अध्ययन - अतिशय वाले अध्ययन। ex. उत्थानश्रुत पढ़ने से गांव उजड़ जाता।
भूतवाद - दृष्टिवाद।
अतः अल्प मेधा वाले जीव और स्त्रियों के अनुग्रह के लिए शेष श्रुत रचा जाता है।

* श्रुतज्ञान की सत्पद प्ररूपणादि प्रतिज्ञानवत्।

* श्रुतज्ञान का विषय - ५१.
1. द्रव्य से - सभी द्रव्य को उपयोग से जानते हैं, देखते नहीं।
2. क्षेत्र से - सर्व क्षेत्र।
3. काल से - सर्व काल।
4. भाव से - सर्व भाव।

चूर्णि → श्रुतज्ञान का विषय - द्रव्य से - सभी द्रव्य को उपयोग से जानते हैं और देखते हैं।

अन्य आचार्य कहते हैं - (जानते हैं, देखते नहीं।
शिष्य - यह अन्य आचार्य का मत सही है क्योंकि श्रुतज्ञान में कहे हुए अर्थ प्रत्यक्ष नहीं होते।
गुरु - जो 'जानते हैं, देखते हैं' इस प्रकार कहते हैं, वे इस अपेक्षा से कहते हैं कि श्रुतज्ञानी हीपसमुद्र आदि को चित्र बनाकर देखते हैं।

मलयगिरीय टीका अव. अतिशय रत्न समान यह श्रुतज्ञान गुरु के अधीन है। इसलिए शिष्यों के अनुग्रह के लिए जैसे श्रुतलाभ होता है, वैसा कहते हैं -

गा. २१ जो आगम शास्त्र का ग्रहण बुद्धि गुणों से होता है, वह धीर ऐसे पूर्वविशारद उसे ही श्रुतज्ञान का लाभ कहते हैं।

* आगम → आ - सकलश्रुत के विषय में व्याप्ति रूप अभिविधि से अथवा यथावस्थित प्ररूपणा रूप मर्यादा से।
गम्यन्ते अर्था येन स आगमः। = उपरोक्त अभिविधि या मर्यादा से जिसके द्वारा अर्थ जाने जाते हैं, वह आगम।

* आगम की उपर्युक्त व्युत्पत्ति से अनधि-केवलज्ञान आदि की भी प्राप्ति होती है। अतः उनके व्यवच्छेद के लिए दूसरा विशेषण 'शास्त्र'।

* शास्त्र = शिष्यते अनेन इति शास्त्रं ⇒ जिसके द्वारा अनुशासन किया जाए।

* धीर = व्रतपालन में स्थिर।

* भावार्थ - जिन प्रणीत वचनों के अर्थ का जो परिज्ञान है, वही परमार्थ से श्रुतज्ञान है।

अव. बुद्धि के गुण -

गा. 22 शुश्रूषा, प्रतिपृच्छा, सुनना, ग्रहण करना, ईहा, अपोह, धारण करना, सम्यक् करना।

★ पहले शिष्य शुश्रूषा करे = विनय युक्त होकर गुरुवचन सुनने की इच्छा करे।

★ प्रतिपृच्छा करे = जहाँ शंका हो, वहाँ नम्रता से गुरु मन को आनंदित करते हुए पूछे।

★ श्रवण करे = पूछने पर जो गुरु कहे उसे विक्षेप बिना सावधान होकर सुने।

★ ग्रहण करे = सुनकर अर्थ रूप में ग्रहण करे।

★ ईहा करे = ग्रहणकर सूत्रार्थ के अविरोध से विचारे।

★ अपि – कुछ स्वबुद्धि से उत्प्रेक्षा करे।

★ अपोह करे = पर्यालोचन के निश्चय करे कि जो आचार्य ने कहा है, वह यथार्थ है।

★ धारण करे = निश्चित अर्थ को मन में अवधारे।

★ सम्यक् करे = श्रुतज्ञान की प्राप्ति के हेतु रूप अनुष्ठान सम्यक् विधि पूर्वक करे। अथवा गुरु जो आज्ञा करे, उसे अनुग्रह मानकर करे। और करते हुए पुनः प्रतिपृच्छा करे। पुनः शुश्रूषा आदि क्रम से करे।

अब श्रवण विधि –

गा. 23 मूक सुने, हुंकार करे, बाढ़कार करे, प्रतिपृच्छा करे, मीमांसा करे। उससे प्रसंग और पारगमन होता है और सातवें श्रवण में परिनिष्ठ होता है।

★ यहाँ 7 प्रकार के श्रवण बताते हैं –

1. मूक – प्रथम श्रवण में मौन पूर्वक सुने।
2. हुंकार – द्वितीय श्रवण में हुंकार करे यानि वंदन करे।
3. बाढ़कार – तृतीय श्रवण में बाढ़कार करे यानि 'यह ऐसा ही है; अन्यथा नहीं' ऐसी प्रशंसा करे।
4. प्रतिपृच्छा – चौथे श्रवण में सूत्रों की प्रतिपृच्छा करे।
5. मीमांसा – पाँचवें श्रवण में उक्त तत्त्वों के प्रमाण की जिज्ञासा करे।
6. प्रसंग और पारगमन – छठे श्रवण में उत्तरोत्तर गुणप्राप्ति का प्रसंग और पारगमन होगा।
7. परिनिष्ठ – 7वें श्रवण में वह परिनिष्ठ होगा यानि गुरु की तरह अनुभाषण करेगा।

अब व्याख्यान करने की विधि –

गा. 24 प्रथम सूत्र – अर्थ कहना, द्वितीय निर्युक्ति से मिश्र कहना, तीसरे में संपूर्ण अर्थ-रहस्य कहना – यह अनुयोग में विधि है।

★ प्रथम अनुयोग सूत्र और सूत्रार्थ के प्रतिपादन में तत्पर है।

खलु – अवधारण अर्थ में।

आद्यार्थ – गुरु द्वारा प्रथम अनुयोग सूत्रार्थ कहने रूप ही किया जाना चाहिए जिससे पाश्चात्य शिष्यों का भेद न हो।

★ द्वितीय अनुयोग सूत्र को स्पर्श करने वाली निर्युक्ति से मिश्र कहा गया है।

★ तृतीय अनुयोग संपूर्ण प्रसक्त - अनुप्रसक्त अर्थ के प्रतिपादन रूप है।

★ प्र. परिनिष्ठा सातवें श्रवण में कही गई तो अनुयोग तीन प्र. के ही क्यों?
उ. कोई मंदमति वाले शिष्य के आश्रय से नवबार श्रवण कहा है। किंतु यह श्रवण विधि का नियम सर्वत्र नहीं है। कुशाग्रबुद्धि शिष्यों को एक ही बार में संपूर्ण ग्रहण हो जाता है।

~~श्रुत~~

अव. श्रुतज्ञान का स्वरूप कहा गया। अवधिज्ञान →

गा. 25 अवधिज्ञान की सभी प्रकृतियाँ संख्यातीत हैं। कुछ भवप्रत्ययिक हैं, कुछ ~~क्षा~~ क्षायोपशमिक हैं।

★ संख्या से अतीत = संख्यातीत अर्थात् असंख्य / अनंत।
अवधिज्ञान की सभी प्रकृतियाँ असंख्य अथवा अनंत होती हैं।

★ खलु शब्द विशेषण अर्थ में → अवधिज्ञान की प्रकृतियाँ क्षेत्र-काल नामक प्रमेय की अपेक्षा से ~~क्ष~~ असंख्य, द्रव्य-भाव नामक प्रमेय की अपेक्षा से अनंत हैं।

★ भवप्रत्यय → नारक-देवों को भव ही प्रत्यय/निमित्त है जिसमें वह भवप्रत्यय।
क्षायोपशमिक → तिर्यंच-मनुष्यों को।

प्र. अवधिज्ञान तो क्षायोपशमिक भाव में कहा गया है। नारकादि भव तो औदयिक है। तो वह भव कैसे निमित्त बनता है?
उ. वह भवधि भी क्षायोपशमिक ही है किंतु वह क्षयोपशम नारकादि भव होने पर अवश्य होता है इसलिए भवप्रत्यय कहते हैं।

अव. अवधिज्ञान की सभी प्रकृति कहने में असमर्थता →

गा. 26 अवधिज्ञान की सभी प्रकृतियों का वर्णन करने की मेरी शक्ति कहाँ से? अतः 14 प्र. का निक्षेप और ऋद्धि प्राप्त मैं कहूँगा।

★ ऋद्धि प्राप्त - प्राप्त की है ऋद्धि जिन्होंने, उन्हें मैं कहूँगा।
[गाथा भंग के भय से खत्थय अथवा बहुव्रीहि में क्तान्त का पूर्वनिपात होने से ऋद्धिप्राप्ता: - हरिभद्रीय टीका]

अव. 14 प्र. के निक्षेप →

गा. 27-28 A अवधि B क्षेत्रपरिमाण C संस्थान D आनुगामिक - अनानुगामिक, E अवस्थित F चल (अनवस्थित)
G तीव्रमंद H प्रतिपात - उत्पाद I-J-K ज्ञान-दर्शन - विभंग L. देश M. क्षेत्र N. गत्यारी धार

और ऋद्धि प्राप्त का अनुयोग, इस प्रकार प्रतिपत्तियाँ हैं।

★ यहाँ अवधि आदि 14 द्वार हैं और च शब्द से समुच्चित ऋद्धि 15वां द्वार है।

★ 14 द्वारों के अर्थ →

A अवधि - नामादि निक्षेपों से अवधि ज्ञान का स्वरूप।

→ B. अन्य आचार्य भगवंत यहाँ अवधि को द्वार नहीं मानते और आनुगामिक का प्रतिपक्ष अनानुगामिक को द्वार मानकर 14 द्वार का वर्णन करते हैं। वे अवधि शब्द का षष्ठी संबंध अर्थ करते हैं 'अर्थवशात् विभक्तिपरिणामः'। यह मत भी सही है, विरोध नहीं है।
यहाँ अवधि शब्द 2 बार आवर्तन किया जाता है। [इस पंक्ति की स्पष्टता मलधारी हेमचंद्रसूरि कृत टिप्पणक में]

B ६. क्षेत्रपरिमाण - जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट भेद वाले अवधि का क्षेत्रपरिमाण कहना।

C ७. संस्थान - अवधि ज्ञान के आकार।

D ८. आनुगामिक - अनुगमनशील।

E ९. अवस्थित - कितने काल तक नहीं गिरते हुए उपयोग से और वहीं से रहता है।

F १०. अनवस्थित - वर्धमान या क्षीयमाण से भिन्न।

G ११. तीव्र - विशुद्ध, मंद - अविशुद्ध, मिश्र।

H १२. प्रतिपात-उत्पात - एककाल में द्रव्यादि की अपेक्षा से प्रतिपात-उत्पात।

I-J-K १३-१४-१५ ज्ञान-दर्शन-विभंग - तीनों का परस्पर अल्पबहुत्व विचारना।

L १६. देश - अवधि देशविषयक है या सर्वविषयक?

M १७. क्षेत्र - संबद्ध - असंबद्ध, संख्या - असंख्य अंतरात्व क्षेत्र।

N १८. गति इति - इति शब्द गण का सूचक है। गत्यादि द्वार।

टिप्पणक → 'अवधि शब्द 2 बार आवर्तन किया गया है' - इस प्रकार मेरे द्वारा पूर्व में ही व्याख्या की गई' [हरिभद्रीय टीका] →
यहाँ 2 प्रश्न हैं। अतः अवधि शब्द के को 2 बार अलग-अलग अर्थ में लेना। इस प्रकार व्याख्या की गई।

प्र. पहले कहाँ व्याख्यान किया?

उ. साक्षात् व्याख्या नहीं की किंतु 'नामादि भेद वाला अवधि कहना' और 'अवधि के क्षेत्र-परिणामादि द्वार कहने' इस प्रकार 2 अर्थ कहने से व्याख्यान हो गया।

मलयगिरीय टीका

अ. A. 'अवधि' द्वार → (1 नामादि 7 निक्षेप)

गा.29 नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव – यह अवधिज्ञान का 6 का निक्षेप है।

★ नाम अवधि- किसी जीव या अजीव का नाम अवधि रखना। अथवा अवधिज्ञान का ही जो 'अवधि' नाम, वह नाम अवधि।

★ स्थापना अवधि- अक्षादि अथवा अवधि के विषय क्षेत्र/द्रव्य का आकार विशेष, विषयविषयि के अभेदोपचार से अथवा अवधि के स्वामी का आकार विशेष।

★ द्रव्य अवधि- २ प्र. आगमतः - अवधि शब्द के अर्थ को जानने वाला और अनुपयुक्त।
नोआगमतः - ३ प्र. ज्ञशरीर, भव्यशरीर, तद्व्यतिरिक्त। ज्ञशरीर-भव्यशरीर तो सुगम है।
तद्व्यतिरिक्त - अवधि का कारण।

★ क्षेत्र अवधि- जिस क्षेत्र में अवधि उत्पन्न हो अथवा जिस क्षेत्र में गुरु अवधि का व्याख्यान करे अथवा जिस क्षेत्र में अवधि स्वयोग्य द्रव्यों को जाने।

★ काल अवधि- जिस काल में अवधि प्राप्त हो अथवा जिस काल में गुरु अवधि की व्याख्या करे अथवा जिस काल में अवधि स्वयोग्य द्रव्यों को जाने।

प्र. क्षेत्र-काल में रहे द्रव्यों को देखता है, ऐसा क्यों कहा? क्षेत्र-काल को नहीं देखता।
उ. क्षेत्र-काल को नहीं देखता क्योंकि वे अरूपी हैं।

★ भव अवधि - जिस भव में अवधि उत्पन्न हो।
भवन्ति तत्तत्कर्मवशवर्तिनः प्राणिनः अस्मिन्निति भवः।

★ भाव अवधि - क्षायोपशमिक भाव अथवा द्रव्य की पर्याय।

→ खलु शब्द - अवधारण अर्थ में।

द्वार 8. क्षेत्र परिमाण द्वार। क्षेत्रपरिमाण ३ प्र. जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट। → जघन्य क्षेत्रपरिमाण -
गा.30 त्रिसमय आहारक, सूक्ष्म ऐसे पनक जीव की जितनी ~~अवगाहना~~ जघन्य अवधि की जघन्य क्षेत्र परिमाण उतना जानना।

★ त्रिसमयाहारक - ३ समय तक आहार करने वाला ऐसी सूक्ष्म पनक का जीव। ऐसे पनक के जीव की सबसे जघन्य अवगाहना अवधि ज्ञान का जघन्य क्षेत्र है।

★ यहाँ यह संप्रदाय है-
कोई 1000 यो. का मत्स्य स्वशरीर के एक देश में ही सूक्ष्मपनक रूप में उत्पन्न होने वाला

हो। वह प्रथम समय में 1000 यो. की लंबाई से आत्मप्रदेशों को संकोच कर स्वशरीर के विष्कंभ प्रमाण एक प्रतर बनाता है। दूसरे समय में प्रतर की एक dimension को संकोच कर शरीर के विष्कंभ प्रमाण और अंगुल के असंख्यात वें भाग की एक सूची बनाता है। तीसरे समय में सूची को भी संकोच कर सभी ओर से अंगुल के असंख्यात वें भाग की अवगाहना कर स्वशरीर के ही देश में सूक्ष्म पनक रूप में उत्पन्न होता है।

इसके उत्पत्ति समय के ~~बाद~~ से तृ समय में जितना शरीर होता है, वह जघन्य क्षेत्र परिमाण जानना।

प्र. 1000 यो. के मत्स्य का ग्रहण क्यों किया?

उ. क्योंकि 1000 यो. का मत्स्य तृ समय में आत्मा का संकोच करता है। वह इसके लिए महाप्रयत्न करता है। और महाप्रयत्न में चढ़ा हुआ उत्पन्न होकर पुनः अवगाहना को शुरु करता हुआ वह अत्यंत सूक्ष्म आरंभ करता है।

प्र. सूक्ष्म पनक का ग्रहण क्यों किया?

उ. सूक्ष्म पनक अन्य जीवों की अपेक्षा से सूक्ष्म अवगाहना वाला होता है।

प्र. तीसरे समय का ग्रहण क्यों किया?

उ. क्योंकि उत्पत्ति के समय या दूसरे समय वह बहुत सूक्ष्म होता है और चौथे वि. समय में वह बहुत बड़ा हो जाता है। इसलिए तृ समय का आहारक योग्य है।

★ 'त्रिसमयाहारक' का अन्य मत और उसका खंडन →

प्र. ~~जब~~ 1000 यो. मत्स्य के लंबाई और चौड़ाई संकोचने का क्रमशः प्रथम और द्वितीय समय, दंड संकोचने-उत्पन्न होने का तृतीय समय। इन तीनों समय में जीव विग्रह गति न होने से आहारक होता है। अतः ऐसा तृतीय समय का अर्थ लेना है।

उ. यहाँ त्रिसमयाहारक पनक का विशेषण है, मत्स्य का नहीं और मत्स्य के लंबाई-चौड़ाई संकोचने के समय मत्स्य संबंधी हैं, पनक संबंधी नहीं। अतः यहाँ पनक का तीसरा समय लेना।

अत. अवगा की जघन्य क्षेत्र कहा। उत्कृष्ट क्षेत्र →

गा. 31 सर्वाधिक अग्निकाय के जीव, निरंतर ~~सब~~ जितना क्षेत्र भरें, उतना क्षेत्र सभी दिशाओं में परमावधि का क्षेत्र कहा गया। 31

★ सर्वबहु → ~~जिससे~~ जहाँ एक जीव भी जिससे ज्यादा कभी भी प्राप्त न हो, वह सर्वबहु (सर्वाधिक)।

ऐसे सर्वबहु अग्निजीव अर्थात् एक साथ लोक में सूक्ष्म-बादर अग्नि जीवों की जो उत्कृष्ट संख्या प्राप्त होती है, वह सर्वबहु अग्निजीव।

प्र. अग्निजीव की सर्वोत्कृष्ट संख्या कब होती है?

उ. जब सर्व कर्मभूमियों में अग्निकाय का समारंभ करने वाले मनुष्य सबसे अधिक होते हैं, तब अग्निजीव सबसे अधिक होते हैं।

प्र. सबसे अधिक मनुष्य कब होते हैं?

उ. सबसे अधिक मनुष्य प्रायः अजितनाथ तीर्थंकर के काल में होते हैं।
अतः अजितनाथ तीर्थंकर के काल में (जब 170 तीर्थंकर विचरते हो) सबसे अधिक अग्नि जीवों की संख्या होती है।

★ 'निरंतर क्षेत्र' → उन जीवों का एक विशिष्ट सूची/श्रेणि/line में जमाओ, ऐसे जमाने पर जितना क्षेत्र (लंबाई) भरा, उतना क्षेत्र सभी दिशाओं में परमावधि का क्षेत्र है।

प्र. यहाँ 'भरा-भूतवन्तः' ऐसा भूतकाल का निर्देश क्यों किया?

उ. क्योंकि सर्वाधिक अग्निजीव अजितनाथ प्रभु के काल में हो गए हैं, इस बात को बताने के लिए।

★ यहाँ यह संप्रदाय है-
सबसे अधिक अग्निजीव अजितनाथ भगवान् के काल में हुए। उन अग्नि जीवों को एक-एक आकाश प्रदेश में रखकर स्वबुद्धि से घन बनाओ। दूसरा- उन अग्नि जीवों को उनकी अवगाहना प्रमाण में रखकर घन बनाओ। इसी प्रकार 2 प्रतर और 2 श्रेणि बनाओ। इन 6 अवस्थानों में से पहले 5 अनादेश हैं क्योंकि वे बहुत थोड़े होते हैं। 'अग्निजीव के जीव स्वअवगाहनानुसार एक श्रेणि' इस श्रेणि के एक corner पर अवधिज्ञानी को रखो। इसी corner को centre मानकर सभी दिशाओं में घुमाओ। सभी दिशाओं में जितना क्षेत्र होगा, उतना क्षेत्र अवधि का उत्कृष्ट क्षेत्र है। वह लोक के प्रमाण वाले ~~अलोक~~ असंख्य खंड अलोक में भी cover करेगा।

★ भावार्थ- सर्वाधिक अग्निजीवों को उनकी अवगाहना सहित एक line में रखे। इस line के बराबर Radius के Sphere जितना क्षेत्र अवधि का उत्कृष्ट क्षेत्र है। वह लोकप्रमाण असंख्य खंडों को अलोक में भी cover करेगा।
अवधिज्ञानी अलोक को नहीं देख सकते क्योंकि वहाँ कोई रूपी द्रव्य नहीं है। यदि वहाँ रूपी द्रव्य होता तो देखते। जैसे-जैसे अलोक में अवधिज्ञान का प्रसार बढ़ता है, वैसे-वैसे वे लोक के सूक्ष्म स्कंधों को भी अधिक-अधिक स्पष्ट देखते हैं। यावत् परमावधि में तो परमाणु भी देखते हैं।

अत. उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र भी कहा। प्रथम क्षेत्र कहने की इच्छा वाले निर्युक्ति-कार 'इतने क्षेत्र में इतने काल का ज्ञान होता है' इस प्रकार कहते हैं -

गा. 32-35 अवधिज्ञानी अंगुल और के आवलिका के असंख्यात और संख्यात भाग को देखते हैं। जब अंगुल देखते हैं तब न्यून आवलिका। आवलिका को देखते हुए अंगुलपृथक्त्व। हस्त को देखते अंतर्मुहूर्त, न्यून दिवस - एक गाऊ, योजन - दिवस पृथक्त्व, न्यूनपक्ष - 25 यो। भरत क्षेत्र - 15 दिन, जंबूद्वीप - साधिकमास, मनुष्यलोक - 1 वर्ष, रुचक द्वीप - वर्ष पृथक्त्व। संख्य काल - संख्य द्वीपसमुद्र, असंख्य काल - असंख्य द्वीपसमुद्र की भजना।

★ यहाँ क्षेत्र का अधिकार होने से 'प्रमाणांगुल' का ग्रहण।

★ पृथक्त्व = 2 - 9

★ कितना काल देखने पर अवधिज्ञानी कितना क्षेत्र देखते हैं -

काल	क्षेत्र
आवलिका का असंख्यातवां भाग	अंगुल का असंख्यातवां भाग
आवलिका का संख्यातवां भाग	अंगुल का संख्यातवां भाग
आवलिका के अंदर	अंगुल
आवलिका	अंगुल पृथक्त्व
~~अंतर्मुहूर्त~~	हस्त
दिवस के अंदर	गाउ
दिवस पृथक्त्व	योजन
पक्ष के अंदर	25 यो.
15 दिन	भरत क्षेत्र
साधिक मास	जंबूद्वीप
1 वर्ष	$2\frac{1}{2}$ द्वीप
वर्ष पृथक्त्व [1000 वर्ष - चूर्णि]	रुचक द्वीप तक
संख्य वर्ष (i)	संख्य द्वीप समुद्र (संख्य योजन) (ii)
असंख्य वर्ष	असंख्य योजन (iii)

§

(i) संख्य वर्ष - 1000 साल से ऊपर जानना।

(ii) संख्य द्वीप समुद्र - यानि संख्य योजन का ज्ञान होता है। इसमें 3 विकल्प हैं -

1. यदि जंबूद्वीप में किसी को अवधिज्ञान हो तो वह संख्य द्वीप-समुद्र देख सकता है।
2. यदि बाह्य द्वीप में किसी को अवधिज्ञान हो तो वह उपरोक्त प्रमाण के एक या 2 द्वीप-समुद्र ही देखता है।
3. यदि असंख्य योजन प्रमाण स्वयंभूरमण समुद्र में किसी को अवधिज्ञान हो तो वह उपरोक्त संख्य योजन प्रमाण उस द्वीप/समुद्र का एक देश ही देखेगा।

(iii) संख्य योजन अनुसार यहाँ भी 3 विकल्प जानना।

* प्रत्येकबोधी टीका में यह गाथा निर्युक्ति के क्रम में नहीं ली है। किंतु चूर्णि- हरिभद्रीय टीका- दीपिका में इसी गाथा को 36वीं निर्युक्ति गाथा रूप में प्रस्तुत किया है।
अतः यहाँ क्रम में फेरफार है।

Page Date 69

क्षेत्र ★ इस प्रकार स्थूलचक्षुन्याय से यह प्राप्त हुआ कि जैसे-जैसे क्षेत्र बढ़ेगा, वैसे-वैसे काल भी बढ़ेगा।

अत. द्रव्यक्षेत्रकालभावों में से जिसकी वृद्धि होने पर जिसकी वृद्धि होती है और नहीं होती, वह कहते हैं-

गा. 36 ~~(प्रदीपप्रकाश)~~ - काल की वृद्धि में चारों की वृद्धि / क्षेत्रवृद्धि में काल की भजना / द्रव्य-पर्याय की वृद्धि में क्षेत्र-काल की भजना करना।

★ काल बढ़ने पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चारों बढ़ते हैं।

★ क्षेत्र की वृद्धि होने पर द्रव्य-पर्याय अवश्य बढ़ते हैं।
क्षेत्रवृद्धि होने पर काल भजनीय है अर्थात् कभी वृद्धि होती है, कभी नहीं क्योंकि क्षेत्र अत्यंत सूक्ष्म है, इसकी अपेक्षा काल स्थूल है। अतः यदि ~~बहुत~~ क्षेत्रवृद्धि बहुत होती है तो कालवृद्धि होती है।

★ द्रव्यपर्याय बढ़ने पर क्षेत्रकाल की भजना है अर्थात् कभी बढ़ते हैं, कभी नहीं क्योंकि द्रव्य क्षेत्र से सूक्ष्म है, एक ही आकाशप्रदेश में अनंत स्कंध रहने से।

★ द्रव्य बढ़ने पर पर्याय अवश्य बढ़ते हैं क्योंकि एक ही द्रव्य में अनंत पर्याय होने से पर्याय द्रव्य से भी सूक्ष्म है। अवधिज्ञान द्वारा प्रतिद्रव्य संख्या अथवा असंख्य पर्याय जाने जा सकते हैं।

★ पर्याय बढ़ने पर द्रव्य की वृद्धि विकल्प से होती है क्योंकि एक ही द्रव्य में पर्याय की वृद्धि और अवृद्धि का संभव है।

★ प्र. जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट भेद से भिन्न, और अंगुल-आवलिका के असंख्य भागादि रूप ऐसे अवधिज्ञान संबंधी क्षेत्र-काल परस्पर प्रदेश-समय की संख्या से तुल्य हैं या हीनाधिक हैं?
उ. हीनाधिक हैं। जघन्य अवधि विषयक आवलिका के असंख्यात वें भाग में जितने समय हैं, उनकी अपेक्षा जघन्य अवधि विषयक अंगुल के असंख्यात वें भाग में जो आकाशप्रदेश हैं, वे असंख्य गुना हैं।
इस प्रकार सर्वत्र अवधि विषयक काल की से अवधि विषयक क्षेत्र का असंख्य गुणत्व जानना।

प्र. काल से क्षेत्र की असंख्यगुणता कैसे माने?
उ. सूत्र की प्रमाणता से।

टिप्पणक → कालवृद्धि में द्रव्यादि चारों की वृद्धि होती है [हरिभद्रीय टीका] -
प्र. कालवृद्धि में तो पारिशेष न्याय से द्रव्य-क्षेत्र-भाव तीन की ही वृद्धि कहना चाहिए, चार की नहीं?
उ. सामान्याभिधानात् (हरिभद्रीय टीका) - पहले वर्द्धमानपन से काल का विशेष निर्धारण कर

वृद्धि का साम्य होने से चारों की वृद्धि कही है। जैसे 'एक रसनेंद्रिय जीतने पर चौनों जीती' इस प्रकार।

→ क्षेत्र की वृद्धि में काल की विकल्प से वृद्धि होती है (हरिभद्रीय टीका)- यदि क्षेत्र की प्रत्येकप्रदेशवृद्धि में काल बढ़े तो अंगुल का असंख्यातवा भाग मात्र क्षेत्र बढ़ने पर काल से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी बढ़ जाएगी। अतः भजना जानना।

→ प. वस्तुओं के नए-पुराने वि. पर्याय कालक्रम से ही होते हैं। अतः यदि वे उत्तर-उत्तर काल क्रम की वृद्धि अनुसार वर्तते हैं तो पर्यायवृद्धि में कालवृद्धि सिद्ध ही है। फिर पर्यायवृद्धि में काल की भजना कही, वह अयुक्त है।

उ. अक्रमवर्त्तिनामपि वृद्धिसम्भवात् (हरिभद्रीय टीका)- पर्याय 2 प्र.- ~~क्रमवर्त्ती~~

1. क्रमवर्ती- जो समय के क्रम से ही होते हैं। eg.

समय →	1	2	3	4
पुद्गलवर्ण	रक्त	रक्त	रक्त	रक्त

यहाँ एकमात्र वर्ण गुण की पर्यायें क्रमवर्ती हैं।

2. अक्रमवर्ती- जो समय के क्रम से न हो। eg. एक पुद्गल के स्पर्श-रस-गंध-वर्णादि अनंत पर्याय।

यदि पर्याय मात्र उत्तर-उत्तर कालक्रम की वृद्धि से ही होती अर्थात् क्रमवर्ती पर्याय ही होती तो आपका वचन सही होता। किंतु ऐसा नहीं है।

रूप-रस-गंध-स्पर्श आदि पर्याय मंद क्षयोपशम की अवस्था में उपलब्ध नहीं होते थे। ~~विशिष्ट~~ विशिष्ट क्षयोपशम होने पर कालक्रम वृद्धि के अभाव में भी एक साथ ही बहुत पर्यायों की वृद्धि होने से पर्यायवृद्धि में कालवृद्धि नहीं होगी।

	अतिनवीन	नवीन	पुराण	अतिपुराण
काल →	1	2	3	4
वर्ण →	रक्त	रक्त	रक्त	रक्त
गंध →				
रस →				
स्पर्श →				

मलयगिरीय टीका भ. क्षेत्र की काल से असंख्यगुणता का प्रामाणिक सूत्र-

गा. 38 काल सूक्ष्म होता है। क्षेत्र उससे भी सूक्ष्मतर होता है। अंगुल की श्रेणि मात्र में असंख्य अवसर्पिणियाँ होती हैं।

★ काल सूक्ष्म होता है।
-शब्द - वाक्य शेष के क्रम को दिखाने के लिए →
काल सूक्ष्म होता है क्योंकि ~~सभी~~ कमल की 100 पंखुड़ी के छेद में प्रतिपत्र असंख्य समय होते हैं।

★ क्षेत्र की सूक्ष्मता →
क्षेत्र उस काल से भी सूक्ष्मतर है। क्योंकि प्रमाणांगुल के एक मात्र श्रेणिरूप आकाश खंड में एक-एक प्रदेश पर एक-एक समय की गणना से असंख्य अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पसार हो जाती हैं अर्थात् असंख्य अवसर्पिणी में जितने समय हैं, उतने प्रदेश मात्र प्रमाणांगुल की एकश्रेणि में होते हैं।

★ इसलिए सभी जगह क्षेत्र काल से असंख्य गुण है, द्रव्य क्षेत्र से भी अनंतगुण है, अवधि विषयक पर्याप्त द्रव्य से भी संख्या असंख्य गुण हैं।

अत. 8. क्षेत्र परिमाण द्वारा कहा गया। अब अवधि के परिच्छेद योग्य द्रव्य कहना है। अवधिज्ञान 39 का है - जघन्य-अप्रयम-उत्कृष्ट। उसमें जघन्य अवधि के ज्ञान योग्य द्रव्य -
गा. 38 प्रस्थापक यानि प्रारंभक तैजस-भाषा द्रव्य के बीच में गुरुलघु और अगुरुलघु द्रव्यों को प्राप्त करता है तथा वह अवधिज्ञान उन्हीं द्रव्यों से नष्ट होता है।

★ प्रस्थापक → अवधिज्ञान का प्रारंभक

★ प्रारंभक तैजस-भाषा द्रव्य के बीच में रहे दोनों के अयोग्य द्रव्य समूह को देखता है। उनमें जो तैजस द्रव्य के पास है वह गुरुलघु है, जो भाषा द्रव्य के पास है वह अगुरुलघु है।

★ प्रतिपाती अवधिज्ञान नीचे गिरते हुए अंत में इन्हीं द्रव्यों को देखते हुए नष्ट होता है।

★ इपि शब्द - जो अवधि प्रतिपाति है, वह इसी क्रम से गिरता है किंतु अवधिज्ञान प्रतिपाती ही होता है, ऐसा नहीं।

★ च शब्द - अवधारण अर्थ में → अवधिज्ञान ही प्रतिपाती होता है, शेष ज्ञान नहीं।

अब. उन तैजस-भाषा द्रव्यों में कितने प्रदेश हैं, यह बताने के लिए वर्गणा का क्रम -
गा. 39-40 औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस-भाषा-श्वासोच्छ्वास-मन-कार्मण यह द्रव्य वर्गणा का क्रम है। क्षेत्र वर्गणा में यह क्रम विपर्यास से जानना (उल्टा जानना)।
कर्म के ऊपर ध्रुव, अध्रुव, शून्य, अशून्य ऐसी अनंत वर्गणा होती है। उसके बाद ध्रुवानंतर, ५तनुवर्गणा, मिश्र फिर अचित्त महास्कंध है।

★ कुचिकर्ण का दृष्टांत और वर्गणा के क्रम का प्रयोजन →

9. द्रव्य वर्गणा का क्रम क्यों कहते हैं?
3. शिष्यों को संमोह न हो इसलिए।

भरतक्षेत्र × प्रगाध देश × कुन्दिकुर्ण सेठ × बहुत गाएँ होने से उसने हजार-हजार गाएँ अलग-अलग गोपालों को दी × वे परस्पर मिलने पर स्वयं की गायों को नहीं जानते हुए झगड़ते हैं × वह रंग अनुसार गायों के वर्ग बना देता है।

उपनय - सेठ - तीर्थंकर / गोवाल - शिष्य / गाय समूह - पुद्गलास्तिकाय।

★ वर्गणा के सामान्य से 4 भेद →

1. द्रव्य से - एक परमाणु, द्विप्रदेश, त्रिप्रदेश ... यावत् अनंत परमाणु।
2. क्षेत्र से - एक प्रदेश अवगाढ, द्विप्रदेश अवगाढ ... यावत् असंख्य प्रदेश अवगाढ।
3. काल से - एक समय की स्थिति वाले परमाणु और स्कंधों की एक वर्गणा, दो समय स्थिति वाले परमाणु-स्कंधों की दूसरी वर्गणा ... संख्येय समय स्थिति वाले की संख्येय वर्गणा ... असंख्य समय स्थिति वाले की असंख्य वर्गणा।
4. भाव से - एक गुण कृष्ण परमाणु-स्कंधों की एक वर्गणा, 2 गुण कृष्ण परमाणु-स्कंधों की दूसरी वर्गणा इस प्रकार संख्येय-असंख्य-अनंत गुण कृष्ण परमाणु-स्कंधों की क्रमशः संख्येय-असंख्य-अनंत वर्गणा। ऐसे ही 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श यानि 20 स्थानों में प्रत्येक की अनंत वर्गणा।

लघुगुरुपर्याय वाले बादरपरिणाम से युक्त वस्तु की एक वर्गणा, अगुरुलघु पर्याय वाले सूक्ष्म परिणाम से युक्त वस्तु की एक वर्गणा।

★ द्रव्य वर्गणाएँ →

समस्त लोक में रहे एक प्रदेशों की एक वर्गणा, द्विप्रदेशिक स्कंधों की एक वर्गणा ... इस प्रकार यावत् अनंत प्रदेश वाले स्कंधों की अनंत वर्गणा। ये सभी अग्रहणयोग्य हैं। इनका उल्लंघन कर विशिष्ट परिणाम से युक्त औदारिक शरीर के ग्रहण प्रायोग्य अनंत वर्गणा होती हैं। इनके बाद एक एक प्रदेश की वृद्धि से बढ़ती औदारिक ग्रहण अयोग्य अनंत वर्गणा होती है। ~~प्रचुरद्रव्य होने से, सूक्ष्मतर परिणाम होने से और वे ग्रहण अयोग्य हैं।~~

प्रचुर द्रव्य होने से और सूक्ष्मतर परिणाम होने से ये औदारिक के अग्रहण योग्य हैं। अल्पपरमाणु वाली होने से और बादर परिणाम से युक्त होने से वैक्रिय के भी अग्रहण योग्य हैं। मात्र औदारिक वर्गणा के पास होने से औदारिक का आभास होने से द्वारा औदारिक अग्रहण योग्य व्यवहार किया जाता है।

इनके ऊपर वैक्रिय अग्रहण योग्य अनंत वर्गणा। इनके ऊपर वैक्रिय ग्रहण योग्य अनंत वर्गणा ... इस प्रकार एक-एक वृद्धि से क्रमशः आहारक, तैजस, भाषा, आनप्राण, मन, कर्म वर्गणा जानना। प्रत्येक में अनंत अयोग्य-योग्य-अयोग्य वर्गणा होती हैं।

प्र. औदारिकादि प्रत्येक के 3-3 भेद कैसे जाने?
उ. तैजस-भाषा द्रव्य के बीच में दोनों के अयोग्य द्रव्य अवधि का विषय है। अतः इस कथन से उभय अयोग्य वर्गणा जानना।

कार्मण वर्गणा के अग्रहण योग्य के ऊपर अनंत ध्रुव वर्गणा होती है। एकोत्तर परमाणु वृद्धि से वे लोक में शाश्वत होती है, नित्य होती है। यहाँ अन्तदीपक न्याय है- अंत वाले को भी ध्रुव कहा अर्थात् यहाँ तक की सभी वर्गणाएँ ध्रुव-नित्य होती है। ये ध्रुव वर्गणा अग्रहण योग्य होती हैं क्योंकि द्रव्य अधिक और सूक्ष्म परिणाम होता है।

इन ध्रुव वर्गणा के ऊपर अध्रुववर्गणा भी अनंत होती है क्योंकि ये लोक में कभी होती है और कभी नहीं होती।

इनके बाद शून्यान्तर वर्गणा होती है। ये भी अनंत है। परमाणुओं की एकोत्तर वृद्धि में यहाँ अंतर नहीं होता है, अतः शून्यान्तर कही जाती है। बीच-बीच में कोई-कोई अंतर पड़ जाता है।
इनके बाद अशून्यान्तर अनंत वर्गणा होती है। उनमें अंतर नहीं होता।

इनके बाद चार ध्रुवानन्तर वर्गणा हैं। ध्रुव-नित्य, अनन्तर-एकोत्तर वृद्धि में अंतर रहित। एकोत्तर वृद्धि से अनंत ध्रुव वर्गणा प्रथम, फिर एक Gap, फिर द्वितीय ध्रुवांत वर्गणा, फिर एक Gap, फिर तृतीय - Gap - चतुर्थ।

प्र. पहले ध्रुववर्गणा कही तो इन ध्रुवानन्तर का उनमें अन्तर्भाव क्यों नहीं?
उ. अतिसूक्ष्म परिणाम होने से और बहुत द्रव्य से उपचित होने से।

इनके बाद तनुवर्गणा होती है। जो भेद-भेद के परिणाम से औदारिकादि शरीरों (तनु) के योग्यत्व के अभिमुख वर्गणा - तनुवर्गणा। अथवा मिश्रस्कंध - अचित्त महास्कंध के तनु-देह के योग्यत्व के अभिमुख तनुवर्गणा। ये भी एक-एक Gap से 4 होती है, चारों अनंत-अनंत होती है।

इसके बाद मिश्रस्कंध होता है। यह सूक्ष्म ही होता है किंतु कुछ बादर परिणाम के अभिमुख होता है। ऐसे बादर-सूक्ष्म परिणाम के मिश्रण से मिश्र।

इसके बाद अचित्तमहास्कंध होता है। यह विस्रसा परिणाम से केवलि समुद्घात की तरह समय में लोक को पूरता है।

Q. अचित्त पुद्गलमय होने से अचित्त विशेषण क्यों लगाया?
उ. केवली समुद्घात में सचित्त कर्म पुद्गल लोक में फैलते हैं। उनके व्यवच्छेद के लिए अचित्त विशेषण।

प्र. यह अचित्त महास्कंध सर्वोत्कृष्ट प्रदेश वाला है।
उ. यह उत्सूत्र प्ररूपणा है। क्योंकि
① प्रज्ञापना में उत्कृष्ट प्रदेश वाले स्कंध अवगाहना और स्थिति से चतुःस्थान पतित कहे गए हैं जबकि यह अचित्त महास्कंध अन्य अचित्त महास्कंध के साथ अवगाहना और स्थिति से same होता है।
② प्रज्ञापना में उत्कृष्ट प्रादेशिक स्कंध 8 स्पर्श वाले कहे गए हैं, यह अचित्तमहास्कंध चतुःस्पर्शी है।

★ क्षेत्र वर्गणाएँ →
क्षेत्र वर्गणा में उपरोक्त द्रव्य वर्गणाओं का ही क्रम उल्टा जानना। तथाहि- परमाणु और द्व्यणुकादि से लेकर अनंत अणु तक एक आकाश प्रदेश अवगाहना वाले स्कंधों की एक वर्गणा, इस प्रकार दो आकाश प्रदेश अवगाहना वाली दूसरी वर्गणा ... संख्य आकाश प्रदेश अवगाहना वाली संख्य वर्गणा ... असंख्य आकाश प्रदेश में अवगाहना वाली असंख्य वर्गणा।

एक-एक आकाश प्रदेश की वृद्धि से बढ़ती असंख्य वर्गणाओं का उल्लंघन कर कर्म-वर्गणा असंख्य होती है। फिर असंख्य वर्गणा कर्म की अग्रहण योग्य। फिर असंख्य आकाश प्रदेश की वृद्धि से असंख्य मनोवर्गणा। ... इस प्रकार औदारिक वर्गणा तक सभी में असंख्य-असंख्य आकाश प्रदेश की वृद्धि से असंख्य ग्रहण अयोग्य-योग्य-अयोग्य वर्गणा समझना।

→ कर्म वर्गणा से भी ज्यादा द्रव्य वाली वर्गणाएँ क्रमशः सूक्ष्म-सूक्ष्म होती जाती हैं।

★ Summary →

1. द्रव्य वर्गणा → एक प्रदेश - दो प्रदेश - तीन प्रदेश ... संख्य प्रदेश की संख्य वर्गणा ... असंख्य प्रदेश की असंख्य वर्गणा ... अनंत प्रदेश की अनंत वर्गणा ... औदारिक - वैक्रिय - आहारक - कार्मण तैजस - भाषा - श्वासोश्वास - मन - कर्म (अग्रहण योग्य - ग्रहण योग्य - अग्रहण योग्य) ... ध्रुव वर्गणा ... अध्रुव वर्गणा ... शून्यान्तर वर्गणा (अंतर सहित) ... अशून्यान्तर वर्गणा (अंतर रहित) ... प्रथम ध्रुवानन्तर वर्गणा - 1 Gap - द्वितीय ध्रुवानन्तर - 1 Gap - तृतीय

ध्रुवानन्तर- 1 Gap- चतुर्थ ध्रुवानन्तर ... 4 तनुवर्गणा (1-1 Gap) ... मिश्रस्कंध ...
अचित्त महा स्कंध।

2. क्षेत्र वर्गणा → उपरोक्त क्रम उल्टा जानना।

★ जघन्य अवधि 2 प्र.-

1. गुरुलघु द्रव्यारब्ध - यह गुरुलघु द्रव्य को सबसे पहले देखता है। ये द्रव्य तैजसवर्गणा के पास होते हैं। ~~सम्~~
यदि यह प्रतिपाती अवधि होगा तो अंत में इन्हीं द्रव्यों को देखकर नष्ट होता है।
यदि यह विशुद्धि को प्राप्त कर आगे जाता है तो सर्वप्रथम गुरुलघु तैजस द्रव्य देखकर गुरुलघु औदारिकादि द्रव्य देखकर अधिक विशुद्ध होता हुआ क्रम से अगुरुलघु भाषा द्रव्य देखता है।

2. अगुरुलघुद्रव्यारब्ध - यह अगुरुलघु द्रव्य को सबसे पहले देखता है। ये द्रव्य भाषावर्गणा के पास होते हैं।
~~यदि यह प्रतिपाती होगा तो इन्हीं द्रव्यों को देखकर नष्ट होगा।~~
~~★ यदि यह विशुद्धि को प्राप्त कर बढ़ता है तो गुरुलघु औदारिकादि द्रव्य देखकर देखता है।~~

चूर्णि → परमाणु ज्यादा होने पर भी वर्गणा सूक्ष्मतर होने में दृष्टांत -
वज्र स्वकाय से अ के प्रमाण से दोगुना प्रमाण वाले पत्थरादि के तुलना किया जाता हुआ ~~घननिच~~ घननिचयत्व से स्कंधों में थोड़ा दिखता हुआ भी बहुत भारी होता है क्योंकि उसमें द्रव्योपचय ज्यादा होता है और पत्थरादि शिथिल स्कंध से बने होते हैं।

→ गुरुलघु द्रव्य - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस वर्गणा के ग्रहण-अग्रहण प्रायोग्य।
अगुरुलघु द्रव्य - भाषा, आनपान, मन, कर्मवर्गणा के ग्रहण-अग्रहण प्रायोग्य।

* यदि यह विशुद्ध होता हुआ अगुरुलघु भाषा द्रव्य को देखकर ऊपर ही बढ़ता है अर्थात् ऊपर के ही अगुरुलघु द्रव्यों को देखता है। अधिक विशुद्ध होता हुआ औदारिकादि गुरुलघु द्रव्यों को एक साथ देखता है।

मलयगिरीय टीका अव. गुरुलघु या अगुरुलघु क्या होता है? -
गा. 51 औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस गुरुलघु द्रव्य हैं। कर्म-मन भाषादि अगुरुलघु द्रव्य हैं।
★ गुरुलघु ~~द्रव्य~~। अगुरुलघु में 2 नय हैं - व्यवहार और निश्चय।

★ व्यवहार नय →

द्रव्य 4 प्र. —

1. गुरु – जो ऊपर अथवा तिर्च्छे फेंके हुए भी निसर्ग से नीचे गिरते हैं। ex. पत्थर।
2. लघु – जो निसर्ग से ऊर्ध्वगति स्वभाव वाले हैं ex. दीपक की शिखा।
3. गुरुलघु – जो ऊर्ध्वगति स्वभाव वाले भी नहीं हैं और अधोगति स्वभाव वाले भी नहीं हैं किन्तु तिर्यग्गति स्वभाव वाले हैं ex. वायु।
4. अगुरुलघु – जो ऊर्ध्व-अधो-तिर्यग्गति में से किसी भी स्वभाव वाले नहीं हैं। ex. आकाश अथवा जो सभी दिशाओं में जाता है ex. परमाणु।

★ निश्चय नय →

कोई भी वस्तु एकांत से गुरु नहीं है क्योंकि पत्थरादि भी प्रयोग से ऊर्ध्वगति करते हैं। कोई भी वस्तु एकांत से लघु भी नहीं है क्योंकि अतिलघु ऐसे वायु आदि भी तालीबजाने वि. से नीचे जाते हैं।

अतः वस्तु 2 प्र. की ही है –

1. गुरुलघु – जो बादर है, वह सभी गुरुलघु। ex. पृथ्वी, पर्वतादि।
2. अगुरुलघु – जो सूक्ष्म है। ex. भाषा-प्राणापान-मनो-कार्मवर्गणा, परमाणु-द्व्यणुकादि, आकाशादि।

★ यह गाथा निश्चय नय के मत से है।

अत. पहले (निर्युक्ति गा. 32-35 में) क्षेत्र और काल का उपनिबंध बताया। इन क्षेत्र-काल का द्रव्य के साथ उपनिबंध कहते हैं –

गा. 42-43 मनोद्रव्य को देखने वाला लोक और पल्योपम का असंख्यातवा भाग देखता है। कर्मद्रव्य को देखने वाला लोक और पल्योपम का संख्यातवा भाग, लोक को देखने वाला काल से कुछ न्यून पल्योपम को देखता है।

तैजस-कार्मण शरीर, तैजस और भाषा द्रव्यों को देखने वाला असंख्य द्वीप-समुद्र और काल देखता है।

★

द्रव्य	क्षेत्र	काल
मनोद्रव्य	लोक का संख्यात भाग	पल्योपम का असंख्यात भाग
कर्म द्रव्य	लोक का संख्यात भाग	पल्योपम का संख्यात भाग
ध्रुववर्गणादि(i)	संपूर्ण लोक	पल्योपम में कुछ न्यून
तैजस शरीर	असंख्य द्वीप समुद्र	पल्योपम का असंख्यात भाग
कार्मण शरीर(ii) (iii)	असंख्य द्वीप समुद्र	पल्योपम का असंख्यात भाग

तैजस द्रव्य(iv)	असंख्य द्वीप समुद्र	पल्योपम का असंख्यात भाग
भाषा द्रव्य	असंख्य द्वीप समुद्र	पल्योपम का असंख्यात भाग

(i) प्र. मूल में लोक को देखने वाला स्तोक न्यून पल्योपम देखता है, इतना ही कहा है, द्रव्य का उपनिबंध तो बताया नहीं।
उ. द्रव्य का उपनिबंध सामर्थ्य से जानना क्योंकि कालवृद्धि में चारों की वृद्धि पहले कही गई है (गा. 36 में)। यहाँ सामर्थ्य से कर्म वर्गणा के ऊपर की ध्रुवकणादि जानना।

(ii) यहाँ तैजस और कार्मण शरीर में सामान्य से असंख्य द्वीप-समुद्र और असंख्य काल कहा गया है किंतु कार्मण शरीर तैजसशरीर से सूक्ष्म होने से असंख्य कुछ अधिक समझना।
इसी प्रकार कार्मणशरीर से तैजस वर्गणा सूक्ष्म होने से असंख्य कुछ अधिक समझना।
तैजस द्रव्य से भाषा द्रव्य सूक्ष्म होने से असंख्य वहाँ भी अधिक समझना।

(iii) प्र. यहाँ ऊपर कर्मवर्गणा में लोक और पल्योपम का संख्यातवां भाग विषय कहा गया। तो कार्मण शरीर में असंख्यातवां भाग रूप अल्प विषय क्यों कहा?
उ. पूर्व में कर्मवर्गणा अबद्ध कही गई। कार्मण शरीर में द्रव्य बद्ध होता है। और बद्ध तो अबद्ध से बादर होता है जैसे सीए हुए धागे बिना सीए हुए धागों से स्थूल होते हैं।

(iv) प्र. यदि तैजस द्रव्य को देखते हुए असंख्य द्वीप-समुद्र और काल देखता है तो पहले तैजस-भाषा द्रव्य के बीच के द्रव्य को देखने वाला अंगुल और आवलिका का असंख्यवां भाग देखता है, ऐसा कहा गया। वह विरोध होता है।
उ. ① वस्तु की शक्तियाँ विचित्र होती है। अवधिज्ञान के प्रारंभक का ऐसा ही क्षयोपशम होता है किंतु विशुद्ध होता हुआ उसका क्षयोपशम बढ़ जाता है।
② अथवा वहाँ तैजस-भाषा द्रव्य के बीच में रहे बहुत अल्प द्रव्यों के आश्रय से अंगुल और आवलिका का असंख्यातवां भाग क्षेत्र-काल प्रमाण कहा गया किंतु यहाँ प्रचुर तैजस द्रव्य के आश्रय से असंख्य द्वीप-समुद्र और असंख्य काल कहा गया।

★ इसी प्रकार द्रव्य-क्षेत्र-काल का उपनिबंध परमावधि तक जानना।

अब. जघन्य अवधि गुरुलघु-अगुरुलघु द्रव्य विषयक कहा गया। मध्यम अवधि भी सर्वरूपी द्रव्य विषयक नहीं है। उत्कृष्ट अवधि सर्व द्रव्य विषयक है या नहीं, वह कहते हैं-

गा. 44 परमावधि एक प्रदेश में अवगाढ, कार्मणशरीर और अगुरुलघु द्रव्यों को देखता है। तैजस शरीर देखने पर भवपृथक्त्व देखता है।

★ एकप्रदेश अवगाढ → एक आकाश प्रदेश में रहे परमाणु-द्वयणुकादि द्रव्य।

प्र. परमाणु-द्वयणुकादि कहे बिना कैसे लें? 'एक प्रदेश में अवगाढ़ कार्मण शरीर' इस प्रकार क्यों नहीं जोड़ा?

उ. कार्मण शरीर जीवप्रदेशानुसार असंख्य प्रदेश में रहता है। अतः इसका ग्रहण नहीं होता।

★ कार्मण शरीर।

★ अगुरु अलघु → जाति में एक वचन।
→ गुरुलघु और अगुरुलघु दोनों द्रव्य देखते हैं।

★ ~~भावार्थ~~ परमावधि → ज्ञान-ज्ञानी के अभेदोपचार से परमावधि ज्ञान वाले।

★ भावार्थ - परमावधि ज्ञानी एक प्रदेश में रहे परमाणु-द्वयणुकादि, कार्मण शरीर, अगुरुलघु और गुरुलघु द्रव्य देखते हैं।

★ तैजस शरीर विषयक अवधि काल से भवपृथक्त्व को जानता है अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग को जानता है। पल्योपम के असंख्यातवें भाग से ज्यादा का भव पृथक्त्व भी नहीं देखता।

★ मूलगाथा में भिन्न-भिन्न पद ग्रहण की चर्चा →

प्र. एकप्रदेशअवगाढ़ परमाणु वि. सूक्ष्म देखने से बादर द्रव्य तो दिखते ही हैं इसलिए 'कार्मण शरीर' का ग्रहण व्यर्थ है।

उ. ऐसा कोई नियम नहीं है कि सूक्ष्म द्रव्य दिखने पर बादर दिखते ही हैं क्योंकि उत्कृष्ट अगुरुलघु भाषा द्रव्य को देखता हुआ भी चक्षु। गुरुलघु स्थूल द्रव्य नहीं देखता। मनः पर्यायज्ञानी भी सूक्ष्म मनोवर्गणा को देखता हुआ चक्षु। चिंतित अर्थ को नहीं देखा।

प्र. तो फिर 'एकप्रदेश अवगाढ़' नहीं कहना चाहिए। 'सर्व रूपी द्रव्य' इस प्रकार कहना चाहिए।

उ. हम परमाणु वि. को कहने के लिए ही तो इतना विस्तार कर रहे हैं अतः उस पद का ग्रहण योग्य है। अथवा
* एक प्रदेश अवगाढ़ देखता है तो सर्व रूपी द्रव्य देखता है, यही भावार्थ कहना चाहते हैं। अथवा 'एकप्रदेशावगाढ़' पद से परमाणु आदि का ग्रहण किया और कार्मण शरीर से

शेष सभी वर्गणाओं का उपलक्षण किया है।

चूर्णि → परमावधि ज्ञानी एक प्रदेश में अवगाढ ऐसे कार्मण शरीर को जानता है। उपलक्षण से परमाणु आदि सर्व द्रव्य लेना।

मलयगिरीय टीका

अव. द्रव्य के आश्रय से परमावधि का विषय कहा। अब क्षेत्र-काल -

गा. ५८ परमावधि लोक प्रमाण असंख्य खंड, असंख्य समय काल सर्व रूपगत को प्राप्त करता है। क्षेत्र की उपमा अग्निजीव से की गई।

★ परमावधि समस्त पुद्गलास्तिकाय को देखता है। प्रतिद्रव्य संख्या असंख्य पर्यायों को देखता है। काल से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी देखता है।

★ क्षेत्र से लोक प्रमाण असंख्य खंड अलोक में देखता है।

प्र. वह असंख्य कोई भी कम या ज्यादा कैसे समझे?

उ. नियत परिमाण के लिए ही कहा - अग्निजीवों से पहले क्षेत्र इसकी उपमा की गई।

प्र. 'सर्व द्रव्य' पूर्व की गाथा में कहा गया तो पुनः क्यों कहा?

उ. यह नियम करने के लिए पुनः कहा गया (असम्मा सिद्धे सति आरम्भो नियमाय भवति)।

अथवा

यहाँ सर्व द्रव्य क्षेत्र-काल की विवक्षा में है अर्थात् यदि अलोक में रूपी द्रव्य होते तो वहाँ रूपी द्रव्य देखते।

★ परमावधि ज्ञान के अंतर्मुहूर्त बाद अवश्य केवलज्ञान होता है।

अव. मनुष्य के आश्रय से यह अनेक प्रकार का अवधि कहा। अब तिर्यंच का -

गा. ५९ तिर्यग्योनि में उत्कृष्ट से आहारक और तैजस की प्राप्ति होती है। जघन्य अवधि नारक में। गाउ और उत्कृष्ट। यो।

★ तिर्यंच योनि में उत्कृष्ट से आहारक और तैजस द्रव्य का ज्ञान होता है। आहारक-तैजस के उपलक्षण से औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस द्रव्य और उनके बीच के द्रव्य लेना।

★ नरकों में उत्कृष्टों में जघन्य अवधि। गाऊ (७वीं नरक में)
उत्कृष्ट अवधि। यो. (७वीं नरक में)

अव. नारक का उत्कृष्ट-जघन्य अवधि कहा। अब पृथ्वी भेद से कहते हैं -

गा. 47 ५गा., $3\frac{1}{2}$, 3, $2\frac{1}{2}$, 2, $1\frac{1}{2}$, 1गा. नरक में अवधि होता है।

★	नरक	उत्कृष्ट	जघन्य
1.	रत्नप्रभा	1यो. = ५गा.	$3\frac{1}{2}$ गा.
2.	शर्करा प्रभा	$3\frac{1}{2}$ गा.	3 गा.
3.	वालुका प्रभा	3 गा.	$2\frac{1}{2}$ गा.
4.	पंक प्रभा	$2\frac{1}{2}$ गा.	2 गा.
5.	धूम प्रभा	2 गा.	$1\frac{1}{2}$ गा.
6.	तमः प्रभा	$1\frac{1}{2}$ गा.	1 गा.
7.	तमस्तमः प्रभा	1 गा.	$\frac{1}{2}$ गा.

दीपिका → रत्नप्रभा में ५गाऊ का उत्कृष्ट अवधि। 10000 वर्ष की जघन्य आयु वाले नारक को $3\frac{1}{2}$ गा., सागरोपम आयु वाले को ५गाऊ।
इस प्रकार प्रत्येक नरक में उत्कृष्ट आयु वाले का उत्कृष्ट अवधि, जघन्य आयु वाले का जघन्य अवधि।

→ सातवीं नरक में भी औपशमिक और क्षायोपशमिक (प्रतिपाती) सम्यक्त्व होता है।

मलयगिरीय टीका इस देव को अवधिज्ञान- (वैमानिक देवों का)
गा. 48-50 शक्र-ईशान प्रथम पृथ्वी तक, सनत्कुमार-माहेन्द्र दूसरी तक, ब्रह्मलोक-लांतक तीसरी तक, शुक्र-सहस्रार चौथी तक; आनत-प्राणत पाँचवी तक, आरण-अच्युत भी इसी तक; नीचे और मध्यम ग्रैवेयक छठी तक, ऊपरि ग्रैवेयक सातवीं तक, अनुत्तरदेव लोकनाड़ी को देखते हैं।

★ देव	अवधि का क्षेत्र
सौधर्म-ईशान	प्रथम पृथ्वी
सनत्कुमार-माहेन्द्र	द्वितीय पृथ्वी
ब्रह्मलोक-लांतक	तृतीय पृथ्वी
शुक्र-सहस्रार	चतुर्थ पृथ्वी
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत (i)	पंचम पृथ्वी
अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक	षष्ठी पृथ्वी
ऊपरीतन ग्रैवेयक-अनुत्तर	सप्तमी पृथ्वी
अनुत्तर	लोकनाड़ी

(i) आरण-अच्युत के देव इसी पृथ्वी को आनत-प्राणत से अधिक शुद्ध देखते हैं।

* क्षेत्र अनुसार द्रव्य, काल, भाव जानना।

अव. अधोदिशा में देवों का क्षेत्र परिमाण कहा। अब तिर्यग् और ऊर्ध्व दिशा में -
गा. 51 इन देवों का तिर्यग् क्षेत्र असंख्य द्वीप-समुद्र होता है, ऊपर-ऊपर के देवों में असंख्य बढ़ता जाता है और ऊर्ध्व स्वकल्प के स्तूपादि।

* सभी वैमानिक देव निश्चय असंख्य द्वीप समुद्र प्रमाण देखते हैं किंतु ऊपर-ऊपर विशुद्धतर अवधिज्ञान होने से असंख्य बढ़ता जाता है।

* ऊपर वैमानिक देव स्वयं के कल्प के स्तूपादि, ध्वजा तक देखते हैं; उससे आगे नहीं।

* सभी वैमानिक देव जघन्य से अंगुल का असंख्यात भाग प्रमाण क्षेत्र देखते हैं।

प्र. सर्व जघन्य अवधि तो तिर्यंच-मनुष्यों में ही होता है। फिर वैमानिक देवों में कैसे कहा?
उ. देवों में पूर्वभव का अवधि (विग्रहगति में) उपपातकाल में संभव है। पूर्वभव के अवधि की अपेक्षा जघन्य अवधि कहा। उपपात के बाद तो भवप्रत्यय अवधि आ जाता है।

अव. वैमानिक सिवाय के देवों का अवधिज्ञान -
गा. 52 ~~अब~~ अर्ध सागरोपम से न्यून आयु वाले देव असंख्य यो., इससे अधिक आयु वाले असंख्य यो., जघन्य अवधि क्षेत्र 25 यो. होता है।

*

देव आयु	उत्कृष्ट अवधिक्षेत्र
अर्ध सागरोपम से न्यून	संख्यात योजन
अर्ध सागरोपम या अधिक	असंख्यात योजन

* जघन्य अवधि क्षेत्र - 25 यो. दस हजार वर्ष की आयु वाले भवनपति-व्यंतर में होता है। ज्योतिष्क देवों में जघन्य से ~~असंख्य द्वीप योजन~~ संख्यात योजन अवधि होता है क्योंकि उनकी जघन्य आयु असंख्य वर्ष होती है। उत्कृष्ट भी संख्यात यो.।

दीपिका

देव	~~उत्कृष्ट~~ अवधि क्षेत्र	काल
भवनपति व्यंतर (10000 वर्ष)	25 यो.	1 पक्ष
ज्योतिष्क	संख्य यो.	10000 वर्ष से अधिक,
असुरकुमार	असंख्य यो.	असंख्य वर्ष।

मलयगिरीय

टीका अव. अवधिज्ञान सामान्य से जघन्य - उत्कृष्ट क्षेत्र बताते हैं -

गा. 53 उत्कृष्ट अवधि मनुष्य में, जघन्य मनुष्य तिर्यंच में। प्रतिपाती अवधि उत्कृष्ट लोकमात्र, उससे ज्यादा अप्रतिपाती।

★ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से उत्कृष्ट अवधि परमावधि मनुष्यों को ही होता है, देवादि में नहीं।

★ जघन्य अवधि मनुष्य-तिर्यंच में ही होता है, नारक-देव में नहीं।

★ ~~यदि~~ प्रतिपाती अवधि उत्कृष्ट से लोक प्रमाण क्षेत्र का होता है। लोक के बाहर, प्रदेश भी नहीं देखता।
अप्रतिपाती अवधि लोक के बाहर भी देख सकता है।

प्र. क्षेत्रपरिमाण द्वार में प्रतिपाती-अप्रतिपाती क्यों कहा? वह द्वार आगे आने वाला है।

उ. उसका प्रसंग होने से कहा। शिष्य जल्दी से समझ सके इसलिए कहा।

अव. B. क्षेत्र परिमाण द्वार पूर्ण हुआ। (गा. 27-28 में) C. संस्थान द्वार -

गा. 54 जघन्य अवधि स्तिबुक आकार वाला गोल होता है। उत्कृष्ट अवधि लंबा होता है और अजघन्योत्कृष्ट अनेक आकार का होता है।

★ स्तिबुक = पानी की बूंद। वह सभी ओर से गोल होती है (sphere)। तीनसमय का आहारक सूक्ष्म पनक का जीव भी ऐसा गोल होता है।
जघन्य अवधि भी ऐसे ही गोल क्षेत्र में होता है।

★ उत्कृष्ट अवधि कुछ लंबा (oval) आकार का होता। अग्निजीवों की श्रेणि को अवधिज्ञानी के शरीर के चारों ओर घूमाने से ऐसा ही आकार बनेगा।

★ अजघन्योत्कृष्ट यानि मध्यम अवधि अनेक आकार का होता है।

अव. ~~तप्राकार, पल्लक, पटह, झल्लरी~~ मध्यम अवधि के आकार -

गा. 55 तप्राकार, पल्लक, पटह, झल्लरी, मृदंग, मुरज, ~~कु~~ पुष्प (पुष्प-चंगेरी), यव (यवनालक)।
तिर्यंच-मनुष्यों में अनेक प्रकार के संस्थान वाला अवधि कहा गया है।

★ गाथा के उत्तरार्द्ध में तिर्यंच-मनुष्यों के अवधि का संस्थान अनेक प्रकार का कहा अतः पूर्वार्द्ध में बताए गए संस्थान नारक और देवों के ~~समझ~~ समझना।

★

~~न~~ जीव	अवधि का संस्थान
नारक	तप्राकार
भवनपति	पल्लक

व्यंतर	पटह
ज्योतिष्क	झल्लरि
कल्पोपपन्न देव	मृदंग
ग्रैवेयक	पुष्प चंगेरी
अनुत्तर देव	धवनात्यक

★ तप्र यानि काष्ठ का समुदाय विशेष जो नदी के प्रवाह से बहता हुआ दूर से लाया जाता है (नाव)। वह लंबा और त्रिकोण होता है। नारकों के अवधि ज्ञान का वैसा आकार होता है।

★ पल्यक - त्यार देश में धान्य का आधार विशेष जो ऊपर लंबा होता है और ऊपर से कुछ संकरे मुँह वाला होता है। भवनपति के अवधिज्ञान का वैसा आकार है।

★ पटह - आतोद्य विशेष जो लंबा होता है और ऊपर-नीचे से सम प्रमाण में होता है। व्यंतरों के अवधिज्ञान का वैसा आकार है।

★ झल्लरि - दोनों ओर से विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त। दोनों तरफ चमड़े से मुख बंद होता है। ऐसा आतोद्य विशेष, इसके आकार का ज्योतिष्क देवों का अवधिज्ञान होता है।

★ मृदंग - वाद्य विशेष जो नीचे से विस्तीर्ण और ऊपर से संक्षिप्त होता है। 12 देवलोक के देवों का ऐसा आकार होता है।

★ पुष्पचंगेरी - पद के एक देश में समुदाय के उपचार से पुष्प से पुष्पचंगेरी कहा। वह पुष्प से भरी हुई शिखा सहित जानना। वैसा आकार ग्रैवेयक के देवों के अवधि का होता है।

★ धवनात्यक - यह कन्या का वस्त्र है जो मरुदेश वि. में प्रसिद्ध है। यह ऊपर के वस्त्र के साथ सीया हुआ होता है जिससे खसे खिसके नहीं। कन्या यह मस्तक प्रदेश से ओढ़ती है। (यहाँ नीचे के वस्त्र का आकार लेना)। इसके जैसा आकार अनुत्तर देवों के अवधि का है।

(पायरा !)

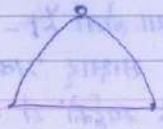

★ नारक-देवों के अवधिज्ञान का आकार सर्वकाल नियत होता है।

★ तिर्यंच-मनुष्य के अवधिज्ञान का आकार स्वयंभूरमण समुद्र में मछली के समान होता है। स्वयंभूरमण समुद्र में गोत्राकार सिवाय सभी आकार की मछलियाँ होती है। तिर्यंच मनुष्य के अवधि के ३ तो गोत्राकार सहित सभी आकार होते हैं।

★ संस्थान के प्रतिपादन का भावार्थ—
भवनपति-व्यंतरों का अवधिज्ञान ऊपर, वैमानिक का नीचे, ज्योतिष्क-नारकों का तिर्च्छा और मनुष्य-तिर्यंचों का विचित्र होता है।

चूर्णि → यवनाली - जिस नालिका से जौ जमीन में बोए जाते हैं।

मलयगिरीय टीका। उत्त. C संस्थान द्वार चूर्ण। D. प्रतिपक्ष सहित आनुगामिक द्वार—
गा. 56 नारक-देवों का अवधिज्ञान आनुगामिक होता है। मनुष्य-तिर्यंच का आनुगामिक, अनानुगामिक और मिश्र होता है।

★ आनुगामिक शब्द के अर्थ →
गच्छन्तं पुरुषं आ-समन्तात् अनुगच्छति इत्येवं शील: अनुगामी।
अनुगामी एव आनुगामिक: (स्वार्थ में इकण्) अथवा
अनुगम: प्रयोजनं यस्य आनुगामिक:। 'अनुशतिकादीनां' सूत्र पाठ से प्रथमपद वृद्धि।
⇒ पुरुष के साथ-साथ जाने वाला।

★ अवधिज्ञान के स्पर्द्धक →
यहाँ कोई भी अवधिज्ञान उत्पन्न होता हुआ स्पर्द्धक रूप में उत्पन्न होता है। स्पर्द्धक यानि गवाक्ष की जाली वि. द्वार से निकलते हुए प्रकाश की तरह प्रतिनियत अवधिज्ञान का विच्छेद (क्षयोपशम)। यह एक जीव को संख्य या असंख्य हो सकते हैं। ये विचित्ररूप वाले होते हैं - कोई आगे के आत्मप्रदेशों में, कोई पीछे के आत्मप्रदेशों में, कोई मध्यवर्ती आत्मप्रदेशों में, कोई पर्यन्त के आत्मप्रदेशों में।

★ आनुगामिक अवधिज्ञान के प्रकार—
अन्तगत - इसकी ३ प्र. से व्याख्या होती है -
1. ① पर्यन्तवर्ती आत्मप्रदेशों से जो साक्षात् अवबोध हो
② औदारिक शरीर के अंत में रहे स्पर्द्धकों से कोई एक ही दिशा का ज्ञान। अथवा

(2) सभी आत्मप्रदेशों के अंत में क्षयोपशम होने पर भी कोई एक ही दिशा में ज्ञान लेना।

प्र. यदि सभी आत्मप्रदेशों में क्षयोपशम हो तो सभी दिशा में क्यों नहीं देखते?
उ. देशादि की अपेक्षा से कर्मों का क्षयोपशम विचित्र होता है। सभी आत्मप्रदेशों में स्वसामग्री के वश से इस प्रकार का ही क्षयोपशम होता कि एक दिशा का ज्ञान हो।

(3) एक दिशा में होने वाले अवधिज्ञान से जो प्रकाशित क्षेत्र है, उसके अंत पर स्थ अवधिज्ञानी रहा हो।

→ अंतगत अवधि 3 प्रः -
(क) पुरतः - कोई पुरुष हाथ में रहे दीपक से आगे ही देखता है, वैसे ही क्षयोपशम विशेष से आगे की दिशा में दिखे।
(ख) पृष्ठतः - पीछे की दिशा में दिखे।
(ग) पार्श्वतः - एक या दो दिशा में संख्य। असंख्य योजन दिखे।

2. मध्यगत - यहाँ भी उदाहरण -
(1) मध्यवर्ती आत्मप्रदेशों में ज्ञान।
(2) सभी आत्मप्रदेशों में क्षयोपशम होने पर भी औदारिक शरीर के मध्य भाग में उपलब्ध हो।
(3) अवधि द्वारा प्रकाशित क्षेत्र के बीच में अवधिज्ञानी रहा हो।

★ नारक-देव शब्द की व्युत्पत्ति →
नरान् स्वयोग्यान् कायन्ति माह्वयन्ति इति नरकाः। तेषु भवाः नारकाः
दीव्यन्ति यथेच्छया क्रीडन्ति इति देवाः।

★ देव-नारक का अवधिज्ञान आनुगामिक और मध्यगत ही होता है। सर्व आत्मप्रदेश में
★ क्षयोपशम से होता है।
★ मनुष्य-तिर्यंच का अवधिज्ञान आनुगामिक भी होता है, अनानुगामिक भी, मिश्र भी।
मिश्र में काणे पुरुष का दृष्टांत है। उसे एक देश अनुगामी होती है, दूसरा देश वहीं पर रहने से दिखता है।

चूर्णि → मिश्र - पूर्व में देखे हुए अर्थ को अन्यत्र जाकर कुछ प्राप्त करे, कुछ प्राप्त न करे।
(दीपिका में भी)

प्रत्यगिरीय
टीका अव. 0. आनुगामिक द्वार पूर्ण। ९. अवस्थित द्वार - (क्षेत्र से और उपयोग से)
गा. 57 काल से क्षेत्र का अवस्थान 33 सा. है। द्रव्य में अवधि का अवस्थान भिन्नमुहूर्त और पर्याय प्राप्ति में 7-8 समय।

★ अनुत्तर विमान के देव जिस क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, मृत्यु तक वहीं रहते हैं। उनके आश्रय से अवधि का उत्कृष्ट अवस्था काल से 33 सा.।

★ द्रव्य की अपेक्षा से अवधि का उपयोग एक ही द्रव्य में भिन्नमुहूर्त यानि अंतर्मुहूर्त।

★ पर्याय की अपेक्षा से उपयोग उत्कृष्ट से 7-8 समय तक।

★ अन्य मत - पर्याय २9 - गुण और पर्याय। गुणों में 8 समय उपयोग, पर्याय में 7 समय।

अव. लब्धि से अवधि का अवस्थान - (काल से)
गा. 58 लब्धि से काल की अपेक्षा 66 सा. अवस्थान उत्कृष्ट, जघन्य से 1 समय।

★ काल से लब्धि की आश्रय से अवधिज्ञान के क्षयोपशम रूप लब्धि से अवधिज्ञान का 66 सा. - 2 बार विजयादि में या 1 बार अच्युत में।

★ जघन्य से उपयोग और लब्धि के आश्रय से एक समय का अवस्थान। मनुष्य-तिर्यंच को एक समय से ज्यादा अवधि के प्रतिपात से या अनुपयोग से एक समय की स्थिति जानना। देव-नारकों का भव के चरम समय में सम्यक्त्व होने से 1 समय की अवस्थिति।

अव. ९. अवस्थित द्वार पूर्ण। F. चल द्वार -
गा. 59 क्षेत्र-काल की वृद्धि-हानि चार प्र. की है। द्रव्यों में २9. की, पर्याय में 6 प्र की है।

★ आगम में वृद्धि सामान्य से 6 प्र. की कही गई है -
1. अनंतभाग वृद्धि 2. असंख्यातभाग वृद्धि 3. संख्यात भाग वृद्धि
4. संख्यातगुण वृद्धि 5. असंख्यातगुण वृद्धि 6. अनंतगुण वृद्धि

★ इसी प्रकार हानि 6 प्र. -
1. अनंतभाग हानि 2. असंख्यात भाग हानि 3. संख्यात भाग हानि
4. संख्यातगुण हानि 5. असंख्यात गुण हानि 6. अनंत गुण हानि

★ चल द्वार में अवधिज्ञान द्रव्यादि विषय के आश्रय से वर्द्धमान है या हीयमान, वह कहा जाएगा।

★ क्षेत्र-काल की अपेक्षा से अवधिज्ञान की अनंत भाग और अनंत गुण वृद्धि-हानि संभव

नहीं है क्योंकि अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र-काल अनंत नहीं हैं, असंख्य ही हैं। अतः क्षेत्र-काल में असंख्यात भाग, असंख्यात गुण, संख्यात भाग, संख्यात गुण - ये 4 प्र. की ही हानि-वृद्धि होती है।
पहले वर्द्धमान अवधिज्ञान ने जितना क्षेत्र देखा, प्रत्येक समय बढ़ता हुआ वह किसी में असंख्यातभाग बढ़ा हुआ क्षेत्र देखता है, कभी संख्यात भाग। इत्यादि चारों प्रकार की हानि-वृद्धि में तथा काल में भी समझना।

★ अवधि के विषयभूत द्रव्यों में अनंतभाग और अनंतगुण - दो प्र. की ही हानि-वृद्धि होती है, शेष 4 प्र. नहीं।

★ अवधि के विषयभूत पर्यायों में 6 प्र. की वृद्धि-हानि होती है।

4. क्षेत्र की असंख्यभागादि वृद्धि होने पर उसके आधेय द्रव्यों की भी असंख्यभागादि वृद्धि हो सकती है तथा द्रव्य की अनंतभाग-गुण वृद्धि में पर्यायों की भी अनंत भाग-गुण वृद्धि ही होना चाहिए, 6 प्र. की नहीं। ऐसा क्यों?

उ. ① तथास्वभावात् - उस प्रकार के स्वभाव से।
② यद्यपि स्वरूप से पुद्गल क्षेत्र के अनुवर्ती हैं, पर्याय पुद्गल के अनुवर्ती हैं। अतः इन्हें भी उस-उस प्रकार की वृद्धि-हानि की प्राप्ति है। किंतु अवधिज्ञान क्षयोपशम के अधीन है और क्षयोपशम उस-उस द्रव्यादि की सामग्री के वश से विचित्र परिणाम वाला है।
③ भगवान् के द्वारा केवलज्ञान में इस स्वरूप वाला ही अवधिज्ञान देखा गया है। अतः ऐसा स्वरूप ही स्वीकारना चाहिए।

★ इन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावों का परस्पर संयोग विचारने पर एक की वृद्धि में ही अन्य की वृद्धि होती है, एक की हानि में अन्य की वृद्धि नहीं होती। तथा एक की हानि में ही अन्य की हानि होती है, एक की वृद्धि में अन्य की हानि नहीं होती।

चतुर्भंगी

एक की	अन्य की	
वृद्धि	वृद्धि	✓ दो भांगे ही सही हैं।
वृद्धि	हानि	×
हानि	हानि	✓
हानि	वृद्धि	×

द्रव्यादि में से एक की भाग से वृद्धि, हानि होने पर अन्य की भी प्रायः भाग से ही

वृद्धि-हानि होती है, गुणकार से नहीं। एक की गुणकार से वृद्धि-हानि होने पर अन्य की भी प्रायः गुणकार से ही वृद्धि-हानि होती है, ~~भाग~~ भाग से नहीं।

एक की	अन्य की
भाग से	भाग से ✓ दो ही भांगे सही है।
भाग से	गुण से
गुण से	भाग से
गुण से	गुण से ✓

हरिभद्रीय टीका → द्रव्य की अपेक्षा अनंतभाग-अनंतगुण वृद्धि-हानि ही होती क्योंकि द्रव्य अनंत हैं।

निष्कर्ष → १. क्षेत्र की असंख्यभागादि वृद्धि में उसके आधेय द्रव्यों की भी असंख्यभागादि वृद्धि होना चाहिए तथा द्रव्य की अनंतभागादि वृद्धि में पर्यायों की भी अनंतभागादि वृद्धि ही होना चाहिए, षट्स्थान नहीं।

२. सामान्य न्याय की अपेक्षा से यह इस प्रकार ही है। क्षेत्र के पुद्गल पुद्गलास्तिकाय की अनुवृत्ति से होती है। [हरिभद्रीय टीका]

सामान्य न्याय की अपेक्षा से यह इस प्रकार ही है — क्षेत्र के अनुवर्ती पुद्गल समस्त लोक में अनंत पुद्गल हैं। प्रत्येक आकाश प्रदेश में अनंत पुद्गल हैं। आकाश प्रदेश असंख्य हैं। ~~एक~~ तो एक आकाश प्रदेश के पुद्गल समस्त पुद्गलास्तिकाय के अनंतवें भाग ~~के~~ प्रमाण हैं। किंतु यदि क्षेत्र की अपेक्षा से देखें तो एक आकाश प्रदेश में समस्त पुद्गलास्तिकाय का असंख्यातवां भाग है क्योंकि आकाश प्रदेश असंख्य हैं। इसी अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में पुद्गल द्रव्य का असंख्यातवां भाग और लोक के संख्यातवें भाग में पुद्गल द्रव्य का संख्यातवां भाग है। इसलिए क्षेत्र की असंख्यातभाग वृद्धि में द्रव्य की भी क्षेत्र अपेक्षा से असंख्यात भाग वृद्धि होगी और संख्यातभाग वृद्धि में संख्यात भाग वृद्धि होगी। अतः पुद्गल क्षेत्र का अनुवर्ती है।

किंतु जब अवधि के विषय रूप में द्रव्य को स्वतंत्र विचारेंगे तब पुद्गल की वृद्धि २९. की ही होगी क्योंकि अवधि वृद्धि के पुद्गल अनंतभाग या अनंत गुण रूप ही होंगे।

३. पर्यायों की तरह द्रव्य की भी ~~अन~~ छहों प्रकार की वृद्धि क्यों नहीं होती क्योंकि अनंतता तो दोनों में समान है?

★ ३. अवस्थित क्षेत्र में यदि द्रव्य की वृद्धि होगी तो अनंतभाग ही होगी क्योंकि उतने ही क्षेत्र का द्रव्य (वर्गित) समस्त पुद्गलों का अनंतवां भाग होगा। जब अवधिज्ञान अधिक शुद्ध होगा तब क्षेत्र भी बढ़ेगा, क्षेत्र बढ़ने पर वह शेष वृद्धि स्थानों को लांघकर सीधा अनंतगुण

पर पहुँच जाएगा। इस प्रकार की संभावना लगती है। तत्त्वं केवलिगम्यं। किंतु पर्याय में जब अवस्थित क्षेत्र में ही वृद्धि होगी तब वह असंख्य भागादि हो सकती है।

'पर्याय पुद्गल की अनुवृत्ति से होती है'– द्रव्य की अनंतभागादि वृद्धि में पर्यायों की भी उतनी ही वृद्धि होना चाहिए क्योंकि दोनों अनंत है।
किंतु जब पर्यायों को स्वतंत्र विषय रूप में विचारें तब उसकी वृद्धि द्रव्यवृद्धि की अपेक्षा से नहीं किंतु ~~अस~~ क्षयोपशम की अपेक्षा से है। इसलिए उसकी वृद्धि ६ गु. से हो सकती है।

मलयगिरीय टीका अव. ६. चत्व द्वार पूर्ण। ८. तीव्र मंद द्वार–

गा. 60-61 एक जीव को असंख्य या संख्यात स्पर्द्धक होते हैं। एक स्पर्द्धक के उपयोग में अवश्य सभी स्पर्द्धकों में उपयुक्त होता है। स्पर्द्धक मनुष्य-तिर्यंच में अनानुगामिक और मिश्र होते हैं, प्रतिपाती, अप्रतिपाती और मिश्र होते हैं।

★ एक जीव को स्पर्द्धक असंख्य या संख्य हो सकते हैं तथा एक स्पर्द्धक में उपयोग होने पर ~~सभी~~ जीव सभी स्पर्द्धकों में अवश्य उपयुक्त होता है क्योंकि जीव एक उपयोग वाला ही होता है। जै. एक आँख के उपयोग में दूसरी आँख भी उपयुक्त होती है।

★ ये स्पर्द्धक ३ गु. के होते हैं– आनुगामिक, अनानुगामिक और मिश्र। ये इतीनों फिर से ३ गु. के होते हैं– प्रतिपाती, अप्रतिपाती, मिश्र।

★ ये स्पर्द्धक मनुष्य तिर्यंच में ही होते हैं, देव-नारक में नहीं।

★ प्र. तीव्र मंद द्वार में स्पर्द्धक क्यों कहे?
उ. आनुगामिक- अप्रतिपाती स्पर्द्धक तीव्रविशुद्धि से युक्त होने से तीव्र कहे जाते हैं। अनानुगामिक-प्रतिपाती अविशुद्ध होने से मंद हैं। मिश्र मध्यम होते हैं।

★ प्र. आनुगामिक-अप्रतिपाती स्पर्द्धकों में क्या अंतर है अथवा अनानुगामिक-प्रतिपाती में क्या अंतर है।
उ. अप्रतिपाती स्पर्द्धक आनुगामिक ही होता है किंतु आनुगामिक प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों हो सकता है। अर्थात् प्रतिपाती स्पर्द्धक गिरा हुआ भी देशांतर में गए हुए किसी को कभी होता है।
अनानुगामिक ऐसा नहीं है। ~~वह प्रतिपाती ही होता है~~। वह देशांतर में जाने पर नष्ट होता है, मूल स्थान में आने पर पुनः होता है।

टिप्पणक → एक स्पर्द्धक में उपयोग होने पर सभी स्पर्द्धकों में अवश्य उपयोग होता है, दोनों लोचन के उपयोग की तरह अथवा प्रकाशमय होने से दीपक के उपयोग की तरह।
[हरिभद्रीय टीका]

'दोनों लोचन के उपयोग की तरह'- दोनों आँख का उपयोग व्यापार होने पर भी जीव का एक बार में एक ही उपयोग होता है वैसे अनेक स्पर्द्धक के व्यापार में भी एक ही उपयोग होता है।

'प्रकाशमय होने से दीपक के उपयोग की तरह'- जो प्रकाशमय है, वह एक अर्थ को प्रकाशित करने का व्यापार करता हुआ सर्वात्मना व्यापार करता है, एक देश से नहीं। eg. दीपक कोई किसी अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वात्मना व्यापार करता है, देश से नहीं। वैसे ही जीव-आत्मा भी ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशमय है, इसलिए वह भी सर्व स्पर्द्धकों से एक उपयोग रूप सर्वात्मना व्यापार करता है।

मलयगिरीय टीका अव. द्वा. तीव्र-मंद द्वार पूर्ण। प. प्रतिपात-उत्पात द्वार -
गा. 62-63 बाह्य लाभ में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में उत्पात-प्रतिपात भाज्य है और दोनों एक समय में भी होते हैं।
अभ्यंतर अवधि में उत्पात-प्रतिपात दोनों एक समय में नहीं होते, दोनों में से एक ही एक समय में होता है।

★ बाह्य अवधि → 3 व्याख्या -
① जो अवधिज्ञान अवधिज्ञानी के आस-पास का न हो किंतु कोई एक दिशा में दूर का हो।
② जो अवधिज्ञान के स्पर्द्धक अनेक दिशाओं में अलग-अलग थोड़ा-थोड़ा क्षेत्र देखते हो, जिस बीच-बीच का न दिखता हो।
③ जो अवधिज्ञान पूरा गोलाकार हो किंतु अवधिज्ञानी से बीच में असंबद्ध हो।

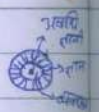

★ उत्पाद = अवधिज्ञान का फैलना, द्रव्यादि की वृद्धि।
प्रतिपात = अवधिज्ञान का गिरना, हानि। (विशेषावश्यक भाष्य)

★ ऐसे बाह्य अवधि की प्राप्ति में उत्पाद-प्रतिपात भाज्य होते हैं। कभी एक समय में उत्पाद होता है, कभी सिर्फ प्रतिपात, कभी एक ही समय में दोनों होते हैं।

प्र. उत्पाद और प्रतिपात, 2 विरुद्ध क्रिया एक साथ कैसे?

दोनों विभाग से होने से साथ में संभव है। जैसे दावानल एक ही क्षण में एक ओर जलता है, पीछे-पीछे बुझता है वैसे अवधि भी एक ही समय में एक ओर से बढ़ता, पीछे से कम होता है।

★ अभ्यंतर अवधि = जो द्रव्य के सभी ओर से दीपक की प्रभा की तरह संबद्ध हो। ऐसे अभ्यंतर अवधि की प्राप्ति में एक समय में उत्पाद या प्रतिपात ही होता है, दोनों एक साथ नहीं होते क्योंकि यह देश अवधि नहीं है। एक द्रव्य की एक ही पर्याय का उत्पाद-नाश एक साथ संभव नहीं है, वैसे ही यह भी।

अब द्रव्य-क्षेत्र-काल का उपनिबंध पहले कह चुके हैं (गा. 42-43 में)। यहाँ द्रव्य-पर्याय का उपनिबंध कहते हैं-

गा. 64 अवधिज्ञानी द्रव्य से असंख्यात/संख्यात पर्याय प्राप्त करते हैं। एक द्रव्य से 2 पर्याय द्विगुणित देखते हैं।

★ अवधिज्ञानी उत्कृष्ट से एक द्रव्य की असंख्य पर्याय देखते हैं।
मध्यम से एक द्रव्य की संख्यात पर्याय देखते हैं।
जघन्य से एक द्रव्य की 4 पर्याय (2×2) देखते हैं।

★ जघन्य में एक द्रव्य की स्पर्श-गंध-रस-वर्ण, ये 4 पर्याय देखते हैं किंतु एक गुण श्वेतादि नहीं।

★ एक द्रव्य की अनंत पर्याय नहीं देखते किंतु अनंत द्रव्यों की अनंत पर्याय देखते हैं।

अब H. प्रतिपात-उत्पात द्वार पूर्ण। I. J. K. ज्ञान-दर्शन-विभंग, ये तीन द्वार-

गा. 65 ~~अवधि~~ साकार-अनाकार अवधि और विभंग ऊपरि ग्रैवेयक तक जघन्य से तुल्य होते हैं। उसके आगे अवधि असंख्य होता है

★ सम्यग्दृष्टि का विशेषग्राही साकार अवधिज्ञान। वही मिथ्यादृष्टि का विभंग ज्ञान। सामान्यग्राही अनाकार अवधिदर्शन।

★ साकार-अनाकार अवधि-विभंग ज्ञान जघन्य से लेकर ऊपरि ग्रैवेयक तक तुल्य है।
तु शब्द - विशेषण अर्थ में → तिर्यंच मनुष्य का अवधि-विभंग छोड़कर नारक-भवनपति से शुरू करना।

★ भावार्थ → नारक - भवनपति से लेकर उपरि ग्रैवेयक तक जो देव जघन्य स्थिति वाले, प्रथम

स्थिति वाले और उत्कृष्ट स्थिति वाले तुल्य हैं, उन-उनका अवधिज्ञान-विभंग ज्ञान-अवधिदर्शन क्षेत्र-काल रूप विषय के अध्याय से तुल्य है, द्रव्य-भाव विषयक नहीं अर्थात् कोई दो देव या दो नारक समान आयुष्य वाले हैं तो उनका अवधिज्ञान या विभंगज्ञान भी समान क्षेत्र और काल विषयक होगा किंतु द्रव्य और भाव में दोनों में फर्क रहेगा।

★ ग्रैवेयक विमानों से ऊपर अवधिज्ञान ही होता है क्योंकि वहाँ मिथ्यादृष्टि का भी उपपात नहीं होता। वह क्षेत्र और काल से असंख्य विषयक होता है।

★ तिर्यंच मनुष्यों में क्षयोपशम की तीव्र-मंदता के कारण से समान आयुष्य में बहुत विचित्रता है, तुल्यता है ही नहीं।

★ नारक-देवों की समान आयु होने पर भी पूर्वभव के तप वि. कारण से द्रव्य-भाव में फर्क रहेगा।

अव. I.J.K. ज्ञान-दर्शन-विभंग, 3 द्वार पूर्ण। L. देश द्वार -
गा. 66 नारक-देव-तीर्थंकर अवधि के बाहर नहीं होते और सभी ओर देखते हैं। शेष जीव देश से देखते हैं।

★ नारक-देव-तीर्थंकर अवधिज्ञान के क्षेत्र के मध्य में ही होते हैं तथा सभी दिशा-विदिशाओं में देखते हैं।

प्र. 'अवधि के बाहर नहीं होते' इससे ही इस अर्थ की प्राप्ति होने से 'सर्वतः' ग्रहण निरर्थक है।
उ. अभ्यंतर अवधि होने पर भी सभी सब दिशाओं में नहीं देखते किंतु कुछ दिशा में या अंतराल में नहीं भी दिखता है।

★ 'शेष तिर्यंच-मनुष्य देश से देखते हैं' - 'सर्ववाक्यं सावधारणमिष्टितश्चावधारणविधिः' इस न्याय से शेष जीव ही देश से देखते हैं, किंतु शेष जीव देश से ही देखे ऐसा नहीं। अर्थात् तिर्यंच-मनुष्य देश से और सर्व से देखते हैं।

अव. L. देश द्वार पूर्ण। M. क्षेत्रद्वार -
गा. 67 संबद्ध अवधि और असंबद्ध अवधि पुरुष की अपेक्षा से संख्य-असंख्य योजन होता है। लोक में अवधि संबद्ध और असंबद्ध दोनों होता है, जब अलोक में संबद्ध ही होता है।

★ अवधिज्ञान के 25 -

1. संबद्ध अवधि- जिस अवधिज्ञान का क्षेत्र पुरुष के साथ जुड़ा हुआ हो।
2. असंबद्ध अवधि- जिस अवधिज्ञान का क्षेत्र पुरुष से दूर हो। पुरुष और अवधि के क्षेत्र के बीच के अंतराल को अबाधा कहते हैं।

★ दोनों प्रकार के अवधि का क्षेत्र संख्य अथवा असंख्य योजन होता है। अबाधा मात्र असंबद्ध अवधि में ही संभव है। वह भी संख्य/असंख्य योजन की होती है।

अबाधा और असंबद्ध अवधि की चतुर्भंगी-

	अबाधा	अवधि		अबाधा	अवधि
1.	संख्य	संख्य	2.	संख्य	असंख्य
3.	असंख्य	संख्य	4.	असंख्य	असंख्य

★ यह अवधिज्ञान लोक और अलोक में भी हो सकता। कोई अवधि लोकांत से भी संबद्ध होता है। उसमें चतुर्भंगी

	पुरुष में	लोकांत में		पुरुष में	लोकांत में
1.	संबद्ध	संबद्ध	2.	संबद्ध	असंबद्ध
3.	असंबद्ध	संबद्ध	4.	असंबद्ध	असंबद्ध

→ दूसरे भांगे में देश से अभ्यंतर अवधिज्ञान होता है।
→ तीसरे भांगे में एक दिशावर्ती बाह्य अवधि होता है।
→ आवश्यक सूत्र की मूल टीका में टीकाकार ने यह तीसरा भांग शून्य बताया है किंतु चूर्णि और भाष्य में प्रतिषेध नहीं होने से और असंभव हेतु का अभाव होने से यह भांगा संभव है।
→ चौथे भांगे में स्तोक देशवर्ती बाह्य अवधि है।

★ जो अवधि अलोक में संबद्ध होता है, वह अवश्य पुरुष से संबद्ध होता है।

★ हरिभद्रीय टीका और दीपिका में तीसरा भांगा शून्य।

अब M. क्षेत्र द्वार पूर्ण। N. गति द्वार-
गा. 68 नरकादि गति पूर्व में जैसे कही गई वैसे यहाँ जानना। यह अवधिज्ञान ऋद्धि है अतः शेष ऋद्धियों का भी वर्णन किया जाता है

★ ~~इ~~ यहाँ सत्पदप्ररूपणादि कहना है।

★ सत्पदप्ररूपणा में मतिज्ञान की तरह ही गत्यादि द्वार जानना। विशेष यहाँ कहते हैं-

S.No.	मार्गणा		अप्रतिपन्न	प्रतिपद्यमान
2.	इंद्रिय	विकलेंद्रिय[i]	×	×
3.	काय	पृथ्वीकाय से वनस्पति[ii]	×	×
5.	वेद	अवेद[ii] ★	✓	✓
6.	कषाय	अकषायी[iii]	✓	✓
8.	सम्यक्त्व	व्यवहारनय से सम्यक्त्वी	✓	✓
		मिथ्यात्वी	×	✓
		निश्चय नय से सम्यक्त्वी	✓	✓
		मिथ्यात्वी	×	×
9.	ज्ञान	व्यवहारनय-मति-श्रुत-मन:पर्यायज्ञानी[iii]	✓	✓
		मति-श्रुत अज्ञानी-विभंगज्ञानी	×	✓
		अवधिज्ञानी	✓	×
		निश्चयनय-मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्याय ज्ञानी	✓	✓
		तु अज्ञानी	×	×
		केवलज्ञानी (दोनों नय से)	×	×
11.	संयत	संयत/असंयत/संयतासंयत	✓	भा.
13.	आहारक	अनाहारक (विग्रहगति)[iv]	✓	भा.
16.	पर्याप्त	करण अपर्याप्त/लब्धि अपर्याप्त[iv]	✓	✓

★ शेष मार्गणा और द्रव्य प्रमाणादि मतिज्ञान की तरह। (Pg.No. 45 पर)

★ अवधिज्ञान के विषय-

1. द्रव्य से - जघन्य से अनंत रूपी द्रव्य।
   उत्कृष्ट से सर्व रूपी द्रव्य।
2. क्षेत्र - जघन्य से अंगुल का असंख्य भाग।
   उत्कृष्ट से लोकप्रमाण असंख्य खंड अलोक में।
3. काल - जघन्य से आवलिका का असंख्यातवां भाग।
   उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी।
4. भाव से - सभी भावों के अनंतवें भाग प्रमाण अनंत भाव।

(i) यहाँ सास्वादन सम्यक्त्व में भी अवधिज्ञान नहीं होता।
(ii) यहाँ क्षपक या उपशम श्रेणि की अपेक्षा जानना।
(iii) कोई चारित्री जीव पहले मन:पर्याय ज्ञान प्राप्त कर फिर अवधिज्ञान प्राप्त करता है।
(iv) कोई सम्यक्त्वी जीव को विग्रह गति में तिर्यंच/मनुष्य से देव/नारक में जाते हुए

प्रतिपद्यमानत्व संभव है।

अब. ऋद्धियाँ कहते हैं -

गा. 69-70 आमर्षौषधि, विप्रुड्औषधि, खेलौषधि, जल्लौषधि, संभिन्नश्रोता, ऋजुमति, सर्वौषधि, चारण, आशीविष, केवली, मन:पर्ययज्ञानी, दशधर, अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव जानना।

★ आमर्षौषधि → जिसका
आमर्ष यानि स्पर्श। स्पर्श ही औषधि है वह आमर्षौषधि।
हाथ वि. के स्पर्श से ही व्याधि दूर करने में समर्थ मुनि। (लब्धि-लब्धिमान् का अभेदोपचार)

★ विप्रुडौषधि →
मूत्र अथवा पुरीष का अवयव विट्।
अन्य मत - विट् = विष्ठा, प्रु = मात्रु। उसके स्पर्श से रोग दूर करने में समर्थ।

★ खेलौषधि → खेल = कफ। कफ के स्पर्श से रोग दूर करने में समर्थ।
→ लब्धि वाले के मूत्र-पुरीष-कफ वि. सुगंधि होते हैं।
→ आमर्ष औषधि वि. किसी को पूरे शरीर में प्रगट होती है, किसी को शरीर के कुछ देश में। वह लब्धिमान् जब स्वयं को या पर को रोग दूर करने की बुद्धि से स्पर्श करता है, तब रोग दूर होते हैं।

★ संभिन्नश्रोता → कोई भी एक इंद्रिय से अन्य सभी इंद्रिय के विषयों को जानने में समर्थ। अथवा
१२ यो. दूर से आते हुए अलग-अलग बहुत सारे शब्दों के समूह को लक्षण और भेद ~~से अलग~~ से एक साथ सुनना।

★ ऋजुमति → परादि मात्र को ग्रहण करने वाला मन:पर्यय ज्ञान।

★ सर्वौषधि → विष्ठा-मूत्र-केश-रोम वि. सभी अवयव सुंदर सुगंध वाले और रोग दूर करने में समर्थ हों।

★ चारण → चरणं = गमनं विद्यते येषां ते चारणा: 'ज्योत्स्नादिभ्योऽण्' से प्रत्यय अर्थ में अण् प्रत्यय। सामान्य गमन तो सभी को होता है अत: विशिष्ट गमन यहाँ जानना।
इस लब्धि के २ भेद -
1. जंघाचारण - जिन्हें चारित्र-तप के प्रभाव से लब्धि उत्पन्न हुई हो। ये रुचक द्वीप तक

जा सकते हैं। एक ही उत्पात से रुचक द्वीप जाते हैं, आते हुए पहले नंदीश्वर द्वीप फिर स्वस्थान पर आते हैं। यदि मेरुपर्वत पर जाने की इच्छा हो तो एक ही उत्पात में पंडक वन पहुँच जाते हैं। आते हुए पहले नंदन वन, फिर स्वस्थान में आते हैं।
ये सूर्य की किरणों को भी पकड़कर जाते हैं।

2. विद्याचारण- जिन्हें विद्या से लब्धि उत्पन्न हुई हो। ये नंदीश्वर द्वीप तक जा सकते हैं। ये पहले उत्पात में मानुषोत्तर पर्वत, दूसरे में नंदीश्वर द्वीप जाते हैं, आते हुए एक ही उत्पात में स्वस्थान आते हैं। मेरु पर जाते हुए पहले उत्पात में नंदन वन, दूसरे में पंडक वन जाते हैं, आते हुए एक ही उत्पात से स्वस्थान आते हैं। विद्या पुनः पुनः परिशीलन करने पर स्पष्टतर होती है, अतः आते हुए एक ही उत्पात से स्वस्थान आते हैं।

जंघाचारण चारित्र के प्रभाव से होते हैं। अतः लब्धि के उपजीवन से प्रमाद का संभव होने से, यह लब्धि नष्ट हो जाती है।

★ आशीविष → आस्य यानि दाढ़। दाढ़ में विष है जिनके वे आशीविष। ये 2 प्र.-
1. जाति से → वृश्चिक - मेंढक - साँप - मनुष्य क्रमशः अधिकतर विष वाले हैं।
वृश्चिक का विष उत्कृष्ट से अर्द्ध भरत क्षेत्र प्रमाण शरीर में फैलता है।
मेंढक का विष भरतक्षेत्र प्रमाण, सर्प विष जंबूद्वीप प्रमाण, मनुष्य का विष 2½ द्वीप प्रमाण शरीर में फैलता है।
2. कर्म से → पंचेंद्रिय तिर्यंच, मनुष्य और सहस्रार कल्प (8वें) तक के देव। ये चारित्र-तप अधिक अन्य गुण से आशीविष वृश्चिक-सर्प आदि की क्रिया को करते हैं अर्थात् शाप देना आदि से दूसरे को मारते हैं। देव तो अपर्याप्त अवस्था में ही शक्तिमान् होते हैं। पूर्वभव में उग्र की हुई आशीविष लब्धि से नए देव भी अपर्याप्त अवस्था में लब्धि वाले कहे जाते हैं। उसके बाद पर्याप्त अवस्था में लब्धि का व्यपदेश नहीं किया जाता। यद्यपि वे शाप से दूसरे को मार सकते हैं। ये शक्ति भव प्रत्ययिक है और लब्धि तो गुण प्रत्ययिक होती है।

★ केवली - केवलज्ञानी।

★ मनःपर्यायज्ञानी → यहाँ विपुलमति का ग्रहण करना। बहुत विशेषों से युक्त वस्तु को जाने, वह विपुल।

★ पूर्वधर → पूर्वाणि धारयन्ति इति। 10 या 14 पूर्वी।

★ अर्हन्तः → अशोकादि 8 प्रातिहार्य रूप पूजा के योग्य। तीर्थंकर।

अब. वासुदेव अर्द्धभरत का राजा। उसका बल –

गा. 71-72 16000 राजा सभी सेना के साथ सांकल में बंधे हुए, कुएँ की पाल पर बैठे वासुदेव को खींचते हैं। वह वासुदेव वाम हाथ से सांकल को पकड़ कर आहार से जीमता है या लेपन करता है किंतु वे वासुदेव को खींचने में समर्थ नहीं हैं।

अब. चक्रवर्ती 14 रत्न का स्वामी, 6 खंड का राजा। उसका बल –

गा. 73-74 शृंखला में बद्ध और कूप के तट पर रहे चक्री को सर्वसेना से युक्त 32000 राजा खींचे। वह उल्टे हाथ से सांकल को ग्रहण कर भोजन या विलेपन करे किंतु वे राजा चक्री को खींचने में समर्थ नहीं हैं।

अब. बलदेव और तीर्थंकर का बल –

गा. 75- चक्रवर्ती का बल ~~छ~~ वासुदेव से 2 गुना है। बलदेव का बल वासुदेव से आधा है। जिनवरेंद्र अपरिमित बल वाले होते हैं।

★ बल वीर्यान्तराय के क्षय से होता है।

★ अन्य भी लब्धियों का उपलक्षण जानना →

1. क्षीराश्रव → पुंड्र-ईक्षु चरने वाली 1 लाख गाय का दूध 50000 ~~गाय~~ गाय को दे। इस प्रकार आधे-आधे क्रम से अंत में एक गाय को दूध पिलाए। उस एक गाय का दूध आगम में 'चातुरक्य' कहा जाता है। वह पीते हुए जैसे किसी को ~~अस्त~~ मन और शरीर का आनंद होता है वैसे ही जिसके वचन सुनकर मन-शरीर के सुख को ~~अ~~ उत्पन्न करे वे क्षीराश्रव।

2. मध्वाश्रव → शर्करादि मधुर द्रव्य वाले मधु की तरह सुख हो जिसके वचन सुनकर। घृत वि. भी इसी तरह जानना – सर्पिराश्रव।

पदानुसारी

3. ~~कोष्ठ~~बुद्धि → जिसकी बुद्धि एक सूत्र को सुनकर शेष पूरे सूत्र को जान ले।

4. कोष्ठबुद्धि → जिनकी बुद्धि आचार्य के मुख से निकले हुए सूत्र-अर्थ को उसी प्रकार धार ले, कालांतर में भी थोड़ा भी भूले नहीं।

5. बीजबुद्धि → जिनकी बुद्धि एक अर्थ को सुनकर बहुत ऐसे अर्थ को यथावस्थित जान लेती है।

6. अक्षीणमहानस → जिनकी भिक्षा अन्य बहुतों द्वारा भोजन की जाती हुई भी खत्म नहीं होती।

आदि से गणधरत्व-पुलाकत्व-तैजस समुद्घात-आहारक शरीर वि. लब्धियाँ जानना।

★ इन लब्धियों में से 1. अर्हत्त्व 2. वासुदेव 3. चक्रवर्ती 4. संभिन्नश्रोता 5. जंघाचारण 6. पूर्वधर 7. गणधर
ये लब्धियाँ अभव्य स्त्रियों को नहीं होती।

★ अभव्य पुरुषों को उपरोक्त लब्धियों के साथ मनःपर्यायज्ञान भी नहीं होता।

★ अभव्य स्त्रियों को मधुआस्रव, क्षीरास्रव, सर्पिरास्रव लब्धि भी नहीं होती।

अ. मनः पर्याय ज्ञान कहते हैं –

गा. 76 मनःपर्याय ज्ञान लोगों के मन में चिंतित अर्थ को प्रकट करने वाला, मनुष्य क्षेत्र में बद्ध, गुणप्रत्ययिक, चारित्रवान् को होता है।

★ पुनः शब्द विशेषण अर्थ में – अवधिज्ञान से भेद दिखाने के लिए।

	अवधिज्ञान	मनःपर्यायज्ञान
1. स्वामी	अविरतसम्यग्दृष्टि आदि	अप्रमत्तसंयत, आमर्षौषधि आदि ऋद्धि में से कोई एक ऋद्धि प्राप्त।
2. क्षेत्र	लोक-अलोक	मनुष्यक्षेत्र
3. काल	असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी	पल्योपम का असंख्यातवा भाग
4. द्रव्य	सर्व रूपी द्रव्य	मनो द्रव्य

★ जन → जायन्ते इति जनाः।

★ गुणप्रत्ययिक → ज्ञानादि गुणों से युक्त रूप कारण है।

★ मनः पर्यायज्ञान के विषय →

1. द्रव्य से – ऋजुमति मनोभाव में परिणत पुद्गलस्कंधों को जानता है।
– विपुलमति इन्हीं पुद्गलों को विशुद्धतर जानता है।

2. क्षेत्र से – ऋजुमति अधोलोक के ग्रामों में सबसे नीचे के प्रतर तक, ऊर्ध्वलोक में ज्योतिष चक्र के सबसे ऊपर के प्रतर तक, तिर्च्छा $2\frac{1}{2}$ अंगुल कम $2\frac{1}{2}$ द्वीप।
– विपुलमति में अधो-ऊर्ध्व समान, तिर्च्छा $2\frac{1}{2}$ अंगुल अधिक।

3. काल से – ऋजुमति अतीत-अनागत पल्योपम के असंख्यवे भाग।
– विपुलमति थोड़ा अधिक काल और विशुद्ध।

4. भाव से – अनंत भाव। वे मन रूप में परिणत पुद्गलों को देखते हैं। चिंतित बाह्य अर्थ को वे अनुमान से जानते हैं क्योंकि सोचनेवाला तो अमूर्त द्रव्य को भी सोचता है।

★ मनःपर्यायज्ञान पर्यायों को देखता है। पर्याय तो विशेष होती है। विशेषग्राही होने से ज्ञान ही होता है, मनःपर्याय दर्शन नहीं।

★ सत्पद प्ररूपणा आदि अवधिज्ञान की तरह जानना।
विशेष मात्र अनाहारक और अपर्याप्त (विग्रहगति में) प्रतिपद्यमान और प्रतिपन्न नहीं होते।

चूर्णि → क्षेत्र से - ऋजुमति $2\frac{1}{2}$ द्वीप जानता है।
विपुलमति $2\frac{1}{2}$ अंगुल अधिक $2\frac{1}{2}$ द्वीप।

मलयगिरीय

टीका अव. केवलज्ञान का स्वरूप -

गा. 77 सर्व द्रव्यों के परिणामभाव को जानने का कारण रूप, अनंत, शाश्वत, अप्रतिपाती, एक प्रकार का केवलज्ञान है।

★ सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारण → जीवादि सभी द्रव्यों के उत्पादादि प्रयोग-विस्रसा से जन्य सभी परिणाम-पर्याय के भाव यानि सत्ता, स्वरूप के ज्ञान का कारण- हेतु।

★ अनंत → ज्ञेयों का अनंतपन होने से ज्ञान भी अनंत।

★ ~~शाश्वत~~ शाश्वत → शश्वद् भवं शाश्वतं। सदा उपयोग वाला।

★ अप्रतिपाती → सदा अवस्थायी।

प्र. जो शाश्वत होता है, वह अप्रतिपाती ही होता है, तो विशेषण क्यों कहा?

उ. 2 कारण -

① शाश्वत यानि जितने काल होता है, उतना निरंतर होता है।
अप्रतिपाती यानि सर्व काल होता है। अथवा

② एक पद व्यभिचार में भी विशेषण-विशेष्य भाव बना ज्ञान करने के लिए -
शाश्वत अप्रतिपाती ही होता है किंतु अप्रतिपाती तो अशाश्वत भी होता है, जैसे- अप्रतिपाती अवधिज्ञान।

अव. तीर्थंकर केवलज्ञान के बाद तीर्थंकर नामकर्म के उदय से जीवों के अनुग्रह के लिए देशना देते हैं। भगवान् को भी ध्वनि रूप द्रव्यश्रुत है। द्रव्यश्रुत हमेशा भावश्रुत पूर्वक होता है। तो भगवान् भी श्रुतज्ञानी हैं? इस शंका का उत्तर -

गा. 78 केवलज्ञान से अर्थों को जानकर जो उनमें से प्रज्ञापन के योग्य हैं, उन्हें तीर्थंकर बोलते हैं। वह वाग्योग शेषश्रुत (द्रव्य श्रुत) होता है

★ केवलज्ञान से तीर्थंकर सभी अर्थों को जानते हैं। उनमें से जो अभिलाप्य यानि कहने के योग्य जो भाव हैं वे अनंत हैं। अतः वे सर्व अभिलाप्य भावों को भी नहीं

बोलते। उनमें से अनंतवा भाग ही बोलते हैं।
केवलज्ञान से प्राप्त अर्थ को बोलते भगवान् का वह वाग्योग ही होता है, श्रुत नहीं। क्योंकि वह भाषा पर्याप्ति आदि नामकर्म के उदय वाला है। वह वाग्योग श्रोताओं में भावश्रुत का कारण होने से द्रव्यश्रुत रूप में व्यवहृत किया जाता है।

★ केवली के भेद →

केवली

1. भवस्थ
   - 1a. सयोगी
     - प्रथम समय $1a_{11}$
     - अप्रथम समय $1a_{21}$
     - चरम समय $1a_{12}$
     - अचरम समय $1a_{22}$
   - 1b. अयोगी
     - प्रथम/अप्रथम/चरम/अचरम समय
2. सिद्ध
   - 2a. अनंतर सिद्ध
     - 15 भेद
       - (क) तीर्थ - अतीर्थ
       - (ख) तीर्थंकर - अतीर्थंकर
       - (ग) स्वयंबुद्ध - प्रत्येकबुद्ध - बुद्धबोधित
       - (घ) स्त्री - पु. - नपुं. लिंग
       - (ङ) स्वलिंग - अन्यलिंग - गृही लिंग
       - (च) एक - अनेक
   - 2b. परंपर सिद्ध
     - अनेक प्रकार

1. भवस्थ केवलज्ञान - चार घाति कर्म क्षीण होने पर मनुष्य भव में रहे केवली का ज्ञान।
2. सिद्ध केवलज्ञान - सभी कर्म क्षीण होने पर सिद्ध अवस्था में रहे केवली।

1a. सयोगी भवस्थ केवली - केवलज्ञान उत्पत्ति के बाद जिन्होंने शैलेशी अवस्था को प्राप्त नहीं की।
1b. अयोगी भवस्थ केवली - जिन्होंने शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर लिया।

$1a_{11}$ प्रथम समय सयोगी भवस्थ केवली - जिस समय में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ हो, उस समय में।
$1a_{21}$ अप्रथम समय सयोगी भवस्थ केवली - केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय को छोड़कर शैलेशी अवस्था के पहले की के शेष समयों में।
$1a_{12}$ चरम समय सयोगी भवस्थ केवली - शैलेशी सयोगी अवस्था के last समय में वर्तते केवली।
$1a_{22}$ अचरम समय सयोगी भवस्थ केवली - सयोगी अवस्था के last समय के पहले के समयों में वर्तते केवली।

1b. अयोगी भवस्थ केवली के भेद भी उपरोक्त प्रमाणे जानना।

2a. अनंतर सिद्ध - जिस समय में सिद्ध हो, उस समय में वर्तते केवली।
2b. परंपर सिद्ध - जिस-से सिद्ध के दूसरे वि. समय से असंख्य/अनंत समय में वर्तते केवली।

(क) तीर्थसिद्ध - जो तीर्थंकर के तीर्थ वर्तते होने पर सिद्ध हुए।
अतीर्थसिद्ध - जो तीर्थंकर का तीर्थ उत्पन्न न होने पर या विच्छेद होने पर सिद्ध हुए।

(ख) तीर्थंकरसिद्ध - जो तीर्थंकर रूप में सिद्ध हुए।
अतीर्थंकरसिद्ध - जो तीर्थंकर सिवाय अन्य रूप में सिद्ध हुए।

(ग) स्वयंबुद्धसिद्ध - जो स्वयंबुद्ध रूप में सिद्ध हो।
प्रत्येकबुद्धसिद्ध - जो प्रत्येकबुद्ध रूप में सिद्ध हो।
बुद्धबोधितसिद्ध - किसी बोध प्राप्त व्यक्ति द्वारा बोध कराने पर सिद्ध हो।

★ स्वयंबुद्ध-प्रत्येकबुद्ध में भेद →
1. बोधकृत→ बाह्य निमित्त बिना स्वयं ही जातिस्मरणादि से बोध प्राप्त करने वाले स्वयंबुद्ध। स्वयंबुद्ध 2 प्र.- तीर्थंकर और तद्व्यतिरिक्त।
बाह्य निमित्त से बोध प्राप्त कर एकाकी ही विहार करने वाले प्रत्येकबुद्ध। eg. बैल को देखकर करकंडु को बोध।

2. उपधिकृत→ स्वयंबुद्ध की उपधि 12 प्र. की ही।
प्रत्येकबुद्ध की उपधि जघन्य से 2 प्र., उत्कृष्ट की 9 प्र. प्रावरण सिवाय।

3. श्रुतकृत→ यदि स्वयंबुद्ध को पहले पढ़े हुए का ज्ञान हो तो लिंग देवता दे या गुरु के पास जाए। गुरु के पास जाए तो दीक्षा लेकर एकाकी विचरे या गच्छ में रहे। यदि श्रुतज्ञान न हो तो अवश्य गुरु के पास जाकर लिंग लेते हैं और गच्छ में ही रहते हैं।
प्रत्येकबुद्ध को जघन्य से 11 अंग, उत्कृष्ट से 10पूर्व में कुछ न्यून अवश्य ज्ञान होता है। उन्हें लिंग देवता देते हैं अथवा कभी लिंग रहित भी रहते हैं।

(घ) लिंग → 3 प्र.
1. वेद - वेद मोहनीय के उदय से।
2. शरीर निर्वृत्ति - शरीर का आकार।
3. नेपथ्य - शणगार (eg. पुरुष हो मगर स्त्री का वेश पहना हो)
यहाँ शरीर की निर्वृत्ति लेना।
स्त्रीलिंग - में सिद्ध हो। पुरुषलिंग में सिद्ध हो। नपुं. लिंग में सिद्ध हो।

(च) स्वलिंगसिद्ध - रजोहरणादि लिंग में सिद्ध हो।
~~गृही~~
~~अन्य~~लिंगसिद्ध - अन्य लिंग में सिद्ध हो। यदि केवलज्ञान की उत्पत्ति के बाद आयु क्षीण न हो
~~गृही~~
~~गृहीलिंगसिद्ध~~ - तो साधु लिंग ही ग्रहण करते हैं।
~~गृहीलिंगसिद्ध~~ अन्यलिंगसिद्ध - अन्य लिंग में वर्तते को सम्यक्त्व प्राप्तकर उसी समय केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हो।

(छ) एकसिद्ध - विवक्षित समय में एक ही सिद्ध हो।
अनेकसिद्ध - एक समय में अनेक सिद्ध हो।
अनेक सिद्ध उत्कृष्ट से १०८ हो सकते हैं।

S.No.	समय	सिद्ध
1.	8	1-32
2.	7	33-48
3.	6	49-60
4.	5	61-72
5.	4	73-84
6.	3	85-96
7.	2	97-102
8.	1	103-108

प्रथम समय में जघन्य से एक उत्कृष्ट से 32 सिद्ध हो। दूसरे समय में भी 1, 2 ... 32 सिद्ध हो। इस प्रकार लगातार 8 समय तक सिद्ध होते हैं, फिर अवश्य अंतर होता है।
प्रथम समय में 33 से 48 के बीच में सिद्ध हो, ऐसे ही द्वितीयादि समय में। तो लगातार 7 समय तक सिद्ध होते हैं, फिर अवश्य अंतर पड़ता है।
⋮
इस प्रकार एक समय में यदि 103 से 108 तक सिद्ध होते हैं तो दूसरे समय अवश्य अंतर पड़ता है।

2b. परंपर सिद्ध - सिद्ध होने के द्वितीयादि समय के भेद से परंपर सिद्ध अनेक प्रकार के होते हैं।

★ केवलज्ञान की सत्पदप्ररूपणादि द्वार →

A. सत्पदप्ररूपणा -

	मार्गणा	द्वार प्रतिपत्ति	प्रतिपद्यमान
1.	गति	सिद्ध गति	मनुष्य
2.	इंद्रिय	अतींद्रिय	नोइंद्रिय
3.	काय	अकाय/त्रस	त्रस

4.	योग	सयोग/अयोग	सयोग
5.	वेद	अवेद	अवेद
6.	कषाय	अकषाय	अकषाय
7.	लेश्या	शुक्ल/अलेश्य	शुक्ल
8.	सम्यक्त्व	सम्यग्दृष्टि	सम्यग्दृष्टि
9.	ज्ञान	केवलज्ञान	केवलज्ञान (नि.) / अन्य (व्यव.)
10.	दर्शन	केवलदर्शन	केवलदर्शन (नि.) / अन्य (व्यव.)
11.	संयत	संयत/नोसंयतनोअसंयतनोसंयतासंयत	संयत
12.	उपयोग	साकार/अनाकार	साकार
13.	आहारक	आहारक/अनाहारक	आहारक
14.	भाषक	भाषक/अभाषक	भाषक/अभाषक
15.	परीत्त	परीत्त/नोपरीत्तापरीत्त	परीत्त
16.	पर्याप्त	पर्याप्त/नोपर्याप्तापर्याप्त	पर्याप्त
17.	सूक्ष्म	बादर/नोसूक्ष्मबादर	बादर
18.	संज्ञी	संज्ञी/नोसंज्ञासंज्ञी	संज्ञी
19.	भव्य	भव्य/नोभव्याभव्य	भव्य
20.	चरम	चरम/अचरम	चरम

→ पूर्वप्रतिपन्न/प्रतिपद्यमान की भावना स्वबुद्धि से करें।

B. द्रव्यप्रमाण – प्रतिपद्यमान की अपेक्षा उत्कृष्ट 108।
– प्रतिपन्न – जघन्य और उत्कृष्ट से कोटीपृथक्त्व भवस्थ केवली। सिद्ध अनंत।

C.D. क्षेत्र-स्पर्शना – जघन्य से लोक के असंख्यातवें भाग में।
उत्कृष्ट से लोक (केवली समुद्घात)।

E. काल – सर्व केवली सादि-अनंत।

F. अंतर – केवलज्ञान में अंतर नहीं होता क्योंकि प्रतिपात का अभाव है।

G. भाग – मतिज्ञानवत् शेष ज्ञानी की अपेक्षा अनंतवें भाग।

H. भाव – क्षायिक भाव में।

I. अल्पबहुत्व – मतिज्ञानवत् – विवक्षित काल में प्रतिपद्यमान सबसे अल्प, जघन्यपद वाले

पूर्व प्रतिपन्न असंख्य गुण, उत्कृष्ट विशेषाधिक। (Pg.No. 55)

★ केवलज्ञान के विषय → द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से सर्व द्रव्यादि।

अत: केवलज्ञान कहा गया। उसे कहने से नंदी भी कहा गया। नंदी कहने से मंगल हुआ। यहाँ तो श्रुतज्ञान से अधिकार है –

गा. 79 यहाँ श्रुतज्ञान से अधिकार है क्योंकि श्रुतज्ञान से शेष ज्ञान और स्वयं श्रुत ज्ञान का अनुयोग होता है। यहाँ दीप का दृष्टांत है।

★ श्रुतज्ञान से स्व-पर प्रकाशक होने से शेष ज्ञान और श्रुतज्ञान का भी व्याख्यान होता है। जैसे दीपक स्व और पर का प्रकाशक है, वैसे ही श्रुत भी।

पीठिका समाप्त ॥

5 ज्ञान के स्वरूप की Summary –

A. मतिज्ञान/आभिनिबोधिक ज्ञान →

→ आ- अभिमुख, नि- नियत, बोध → इंद्रिय-मन के निमित्त वाला, योग्य देश में रही वस्तु विषयक बोध।

→ 4 भेद →

1. अवग्रह – अनिर्देश्य सामान्य मात्र ग्रहण, 2 प्र. व्यंजनावग्रह (अंतर्मुहूर्त) अर्थावग्रह (1 समय)
2. ईहा – सद्भूत अर्थ विशेष अभिमुख और असद्भूत अर्थ विशेष त्याग पूर्वक पर्यालोचन स्वरूप/ अंतर्मुहूर्त अक्षरात्मक
3. अवाय – अर्थ निर्णय, अंतर्मुहूर्त।
4. धारणा – 3 प्र. अविच्युति (उपयोग), वासना (संस्कार), स्मृति (स्मरण)। अविच्युति- अंतर्मुहूर्त, वासना- संख्यवर्ष आयु वाले को संख्यवर्ष, असंख्यवर्ष आयु वाले को असंख्यवर्ष तक।

→ व्यंजनावग्रह 4 + अर्थावग्रह- ईहा-अवाय-धारणा 6 = 28 भेद

→ ~~चक्षु मन अप्राप्यकारी चर्चा Pg.No. 24~~

→	इंद्रिय	विषय ग्रहण शक्ति	विषय मान (उत्कृष्ट)	(जघन्य)
1.	श्रोत्र	स्पृष्ट	12 यो.	अंगुल असंख्य भाग
2.	चक्षु	अस्पृष्ट	साधिक लाख यो.	अंगुल संख्य भाग
3-5.	स्पर्श-घ्राण-रसन	बद्ध-स्पृष्ट	9 यो.	अंगुल असंख्य भाग

→ भाषा – समश्रेणि में मिश्र, विश्रेणि में वासित शब्द।

3, 4, 5 समय में व्याप्त महाप्रयत्न वाले शब्द। मंद प्रयत्न वाले असंख्य यो.।

→ चर्चात्मक विषय –

	Pg. No.
व्यंजनावग्रह में अव्यक्त ज्ञान	24
चक्षु मन अप्राप्यकारित्व	24/34

श्रोत्र प्राप्यकारित्व	30
शब्द - आकाश गुण	31
एकांतर भाषा द्रव्य का ग्रहण निसर्ग	39
शब्द व्याप्ति में अन्य मत	44
क्रियाकाल-निष्ठा में दो नय	49

B. श्रुतज्ञान →

→ इंद्रिय-मन निमित्तक, शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी, वाच्य-वाचक भाव पूर्वक, शब्द से संसृष्ट अर्थ ग्रहण का हेतु रूप ज्ञान।

→ अभिधेय के भेद से अभिधान में भेद होने से श्रुतज्ञान की अनंत प्रकृतियाँ हैं। उनका वर्णन करने की शक्ति न होने से 14 भेद के निक्षेप।

→ 1. अक्षर 3 प्र. 1. संज्ञाक्षर (आकार) 2. व्यंजनाक्षर (बोले जाते) 3. लब्ध्यक्षर (अक्षर का बोध)। इन तीनों अक्षरों का ज्ञान अक्षर श्रुत।

2. अनक्षर - श्वास, थूँकना, खाँसी वि.।

3. संज्ञी - संज्ञी जीव का श्रुत। 4. असंज्ञी

5. सम्यक् - सम्यग्दृष्टि का अथवा 12 अंग वि.। 6. मिथ्या।

7,8. सादि-सपर्यवसित → पर्यायास्तिक नय से। 9,10. अनादि-अनंत द्रव्यास्तिक नय से।

11. गमिक - सदृश पाठ। 12. अगमिक - असदृश पाठ।

13,14. अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य।

→ बुद्धि के 8 गुण और श्रवण विधि तथा अनुयोग विधि Pg. No. 62।

→ मति-श्रुतज्ञान इंद्रिय-मननिमित्तक होने से परोक्ष।

→ चर्चात्मक विषय -

	Pg. No.
परोक्षत्व चर्चा	13
मति-श्रुत में भेद	17
केवलज्ञान में शेष ज्ञान का अभाव	16

C. अवधिज्ञान →

→ रूपी द्रव्य की मर्यादा से ज्ञान कराने वाला ज्ञान।

→ मनुष्य-~~तिर्यंच~~ का अवधि -

	जघन्य	उत्कृष्ट
क्षेत्र	त्रिसमय आहारक सूक्ष्म पनक	उत्कृष्ट अग्नि जीवों की श्रेणि की sphere वि
काल	आवलिका का असंख्यातभाग	असंख्य उत्सर्पिणी- अवसर्पिणी
द्रव्य	तैजस- भाषा द्रव्य के बीच में	सर्व रूपी द्रव्य
भाव	4 (प्रति द्रव्य)	असंख्य (प्रति द्रव्य)

→ तिर्यंच का अवधि - उत्कृष्ट से औदारिक - वैक्रिय - तैजस - आहारक द्रव्य ही देखते हैं
→ देव का अवधि - आनुगामिक, अप्रतिपाती, अभ्यंतर - संबद्ध अवधि
क्षेत्र - काल - आकार के Pg. No. 80, 81, 82, 83 | सर्वकाल नियताकार।
→ नारक का अवधि - देववत् | क्षेत्र में Pg. No. 80।
→ अवांतर विषय -

	Pg. No.
क्षेत्र-काल से सूक्ष्म	70
वर्गणा	71
गुरुलघु गुण	75
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव वृद्धि	69, 87
षट्स्थानपतित	86
स्पर्द्धक	89
वृद्धि	95

D.E. मनः पर्यवज्ञान/केवलज्ञान का स्वरूप @ Pg. No. 99-100

—x—

आवश्यक का अनुयोग

मंगल से साध्य ऐसा अनुयोग दिखाते हैं। वह अनुयोग स्व-पर प्रकाशक होने से श्रुतज्ञान का अनुयोग है।

पू. आवश्यक का अनुयोग प्रकृत है, तो श्रुतज्ञान का क्यों कहा?
उ. यह आवश्यक श्रुत के अंतर्गत है इसलिए ऐसा कहा।

पू. यदि आवश्यक का अनुयोग है तो वह आवश्यक एक अंग है या अनेक अंग, एक श्रुतस्कंध है या बहुत, एक अध्ययन है या बहुत, एक उद्देशक है या बहुत?
उ. आवश्यक श्रुतस्कंध है और बहुत अध्ययन है।

पू. आवश्यक के व्याख्यान के आरंभ में अन्य शास्त्र (नंदी) का व्याख्यान करना युक्त नहीं है क्योंकि वह अन्य श्रुतस्कंध है और अप्रस्तुत है। तो यहाँ अनुयोग आरंभ में नंदी का अनुयोग क्यों किया?
उ. शिष्य अनुग्रह के लिए या ऐसा नियम नहीं है कि अन्य का अनुयोग नहीं कर सकते, यह बताने के लिए अथवा किसी प्रज्ञावान् पुरुष के लिए अपवाद से अन्य आरंभ में अन्य भी कहा जाता है।

★ 'आवश्यक' के अर्थ-

1. अवश्यं कर्तव्यं आवश्यकम् (कर्म में ड प्रत्यय, वृषोदरादयः से निपात)
श्रमणादि द्वारा दोनों समय अवश्य किया जाने वाला।

2. ज्ञानादिगुणानां आ-समन्तात् वश्या इन्द्रियकषायादिभावरात्रवः यस्मात् तदावश्यकम्।
ज्ञानादि गुणों के भावशत्रु संपूर्णतया जिससे वश हो।

3. ज्ञानादिगुणकदम्बकं मोक्षो वा आ-समन्तात् वश्यं क्रियते ऽनेन इति
ज्ञानादि गुणों का समूह अथवा मोक्ष जिससे संपूर्णतया वश में हो।

4. 'आवस्सयं' इस प्रकार प्राकृत होने से 'आवासक'- गुणशून्यं आत्मानं गुणैः आवासयति
गुण रहित आत्मा को गुणों द्वारा वासित करे।

★ आवश्यक के निक्षेप -
नाम-स्थापना सुगम।
द्रव्य आवश्यक २ प्र.

1. आगम से- जिसको 'आवश्यक' ऐसा पद शिक्षित, स्थित, जित, मित, परिजित, नामसम, घोषसम, अहीनाक्षर, अव्याविद्ध अक्षर, अस्खलित, अमिलित, अव्यत्याम्रेडित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष, कंठ-ओष्ठमुक्त, वाचनोपगत है, वह पुरुष १ आगम से द्रव्यावश्यक।
शिक्षित= पढ़ने से अंदर लाया हुआ हुआ। और चित्त में वैसा ही स्थिर रहे।
जित= परावर्तन करते हुए या पूछने पर जल्दी याद आ जाए।
मित= अक्षर या पद संख्या से जाना हुआ।
परिजित= (परि-समंतात्) परावर्तन में क्रम-उत्क्रम से जल्दी याद आ जाए।
नामसम= स्वयं के नाम की तरह शिक्षित, मित, जित, परिजित हो।
घोषसम= गुरु के द्वारा कहे हुए घोष के समान ही शिष्य उच्चारे।
अहीनाक्षर= एक भी अक्षर हीन न हो।
अव्याविद्ध अक्षर= उल्टे/आगे-पीछे अक्षर न हो।
अस्खलित= पत्थरादि से व्याप्त भूमि में बंदर की तरह स्खलित न हो।
अमिलित= जिसमें एक जैसे सूत्रपाठ से दूसरे सूत्र में न पहुँचे।
अव्यत्याम्रेडित= अस्थान में अटकने से रहित।
प्रतिपूर्ण= हीन-अधिक अक्षर रहित।
प्रतिपूर्ण घोष= गुरु की तरह सम्यक् उदात्तादि घोष वाला।
वाचनोपगत= वाचना, पृच्छा, परावर्तना, धर्मकथा से उपगत-प्राप्त, अनुप्रेक्षा से नहीं।

2. नोआगम से → ज्ञशरीर-भव्यशरीर सुगम।
तद्व्यतिरिक्त द्रव्य आवश्यक ३ प्र.-
① लौकिक- जो राजा वि. सुबह उठकर मुँह धोना, दाँत धोना, शारीरिक चिंता वि. अवश्य

करते हैं।

(b) कुप्रावचनिक – चरकादि परिव्राजक सुबह उठकर घर साफ करना, धूप – लेपन करना वि.

(c) लोकोत्तर – ~~जो~~ श्रमणगुण से रहित ~~योगी~~, अनुकंपा रहित, जिनाज्ञा विरुद्ध चलने वाले स्वच्छंद योगी जो दोनों काल आवश्यक क्रिया करे वह लोकोत्तर द्रव्य आवश्यक है क्योंकि भाव शून्य होने से वह इष्ट फल नहीं देती।

इसका उदा.– वसंतपुर × कोई अगीतार्थ गच्छ × एक साधु रोज आधाकर्मादि गोचरी वापरकर आलोचना लेता है × अगीतार्थ आचार्य भी उसकी प्रशंसा करते हैं – याद करना सरल है किंतु आलोचना कठिन; यह साधु रोज आलोचना करने से अशठपन से शुद्ध है × यह देख अन्य श्रमण भी प्रशंसा करते हैं × एकदा कोई गीतार्थ ~~साधु~~ आया × अगीतार्थता देखकर उन्होंने कहा – एक रत्नवणिक् रोज ~~नया~~ घर रत्न से भरकर जलाता है × लोग प्रशंसा करते हैं कि यह अग्नि को रत्न चढ़ाता है × एकदा वायु प्रबल होने से अन्य घर भी जल गए × राजा ने उसका सर्वस्व छीनकर नगरबाहर किया, इस प्रकार तुम भी अगीतार्थ को छोड़ो × साधुओं ने अगीतार्थ आचार्य को समझाया, न मानने पर छोड़ा।

भाव आवश्यक – २ प्र.

1. आगम से – आवश्यक का ज्ञाता और उपयुक्त।
2. नोआगम से – ३ प्र.

(a) लौकिक – श्रवण में भारतआख्यान, अपराह्ण में रामायणव्याख्यान।

(b) कुप्रावचनिक – चरकादि जो स्व-स्व देव का स्मरणादि करते हैं।

(c) लोकोत्तर – साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका जो विशुद्ध चित्त से दोनों काल प्रतिक्रमण करे।

→ इस लोकोत्तर भाव आवश्यक का यहाँ अधिकार है।

★ श्रुत शब्द के निक्षेप –

नाम-स्थापना सुगम।

द्रव्य श्रुत – २ प्र.

1. आगम से – ज्ञाता + अनुपयुक्त।
2. नोआगम से – ज्ञ-भव्यशरीर सुगम।

तद्व्यतिरिक्त → पुस्तक-पत्र पर लिखा हुआ।

अथवा

श्रुत → सूत्र भी कहते हैं। वह सूत्र ३ प्र. – अंडज, पोंडज, कीटज, वालज, वल्कज।

भावश्रुत – २ प्र.

1. आगम से – ज्ञाता + उपयुक्त।
2. नोआगम से – २ प्र. लौकिक – रामायणादि। लोकोत्तर – द्वादशांगी।

★ 59. के सूत्र

1. अंडज- चटकसूत्र, silk (पंचेंद्रिय हंस के गर्भ में होने वाला, इस प्रकार अन्य मत)
2. पोंडज- कपास से होने वाला cotton
3. कीट कीटज - 59.

④ पट्टसूत्र - जंगल में मांस-सुगंधी पदार्थ रूप मांस के पुंज करते हैं। उन पुंजों के आसपास ऊँचे-नीचे और अंतर सहित बहुत कीले भूमि में लगाते हैं। उन वनों में घूमते हुए पतंग कीट मांस में लुब्ध होने से वहाँ आते हैं और कीलों के बीच में घूमते हुए तार छोड़ते हैं। वह तार कीलों पर लगी हुई ग्रहण की जाती है।

इसी प्रकार ⑥ मलय देश में उत्पन्न मलय, चीन के बाहर उत्पन्न ⓒ अंशुक, चीन में उत्पन्न चीनांशुक वि. कहे जाते हैं। क्षेत्र में भेद से कीट भी विशेष होते हैं।

⑤ कृमिराग - मनुष्यादि के खून को कोई योग से मिश्रित कर भाजन में रखा जाता है। खून में बहुत कृमि उत्पन्न किए जाते हैं। वे कृमि हवा के लिए भाजन के छिद्र से निकलकर भाजन के आसपास घूमते हुए तार छोड़ते हैं। वह कृमिराग। वह खून से उत्पन्न होने से लाल होती है।
अन्य मत- उस खून को कृमि सहित पीसा जाता है। पीसकर रस ग्रहण करते हैं, किट्टिस (कच्चास) छोड़ देते हैं। उसमें कोई योग डालकर कपड़े पर रंगते हैं। वह कृमिराग। (कूचो)
यह धोने पर भी थोड़ा भी रंग नहीं छोड़ता।

वालज - 59.

4. ⓐ और्णिक - ऊनी
ⓑ औष्ट्रिक - ऊँट के रोम से निष्पन्न।
ⓒ मृगलोमिक - मृग के आकार वाले, लंबी पूँछ वाले, जंगली जीव विशेष के लोम से निष्पन्न।
ⓓ कौतव - पेट के रोम से निष्पन्न।
ⓔ किट्टिस - ऊन वि. का जो मुही सूखरित किट्टिस है, उससे निष्पन्न सूत्र किट्टिस।

5. वल्वज - सण वि.

→ आवश्यक नोआगम से भावश्रुत है।

★ स्कंध के निक्षेप -
नाम - स्थापना सुगम।
द्रव्य - 29.
1. आगम से - ज्ञाता + अनुपयुक्त।
2. नोआगम से - ज्ञ-भव्यशरीर सुगम सुगम।

तद्व्यतिरिक्त - 29.
ⓐ सचित्त - द्विपदादि।
ⓑ अचित्त - द्विप्रदेशिकादि।
ⓒ मिश्र - सेना वि. के देशादि।

भाव स्कंध - 29.
1. आगम से - ज्ञाता + उपयुक्त।
2. नोआगम से - यह आवश्यक नोआगम से भाव स्कंध है (नो= एक देश) क्योंकि सकल श्रुतस्कंध की अपेक्षा यह आवश्यक एक देश है।

*9. आवश्यक 6 अध्ययनात्मक क्यों है?
3. क्योंकि 6 अर्थ के अधिकार हैं -
1. सामायिक - सावद्य योग विरति।
2. चतुर्विंशतिस्तव - तीर्थंकरों के गुणोत्कीर्तन। गुणोत्कीर्तन के कारण - कर्मक्षय का प्रधान कारण होने से, प्राप्त बोध की विशुद्धि का हेतु होने से, पुनः बोधि रूप फल होने से, सर्वसावद्ययोग विरति के उपदेशक होने से उपकारी।
3. वंदन - मूल-उत्तरगुण वाले गुणवान् की प्रतिपत्ति।
च शब्द - पुरस्कृत में अगुणवान् की भी प्रतिपत्ति।
4. प्रतिक्रमण - स्खलित की निंदा।
5. कायोत्सर्ग - व्रणचिकित्सा। चारित्र रूप पुरुष के अतिचार रूप आवरण की प्रायश्चित्त रूप औषध से चिकित्सा।
6. प्रत्याख्यान - गुणधारणा। मूल-उत्तरगुण की प्रतिपत्ति का निरतिचार संधारण।

इस प्रकार आवश्यक श्रुत स्कंधों का स्थापन कहा गया।
यह आवश्यक का समुदायार्थ हुआ। अब अवयवार्थ बताने के लिए एक-एक अध्ययन कहते हैं।
उनमें पहला अध्ययन सामायिक है। समभाव के लक्षण वाला होने से वह प्रथम है।

☆ सामायिक अध्ययन का अनुयोग →
बिना द्वार का कोई नगर नहीं होता। एक द्वार हो तो भी हाथी-घोड़े-रथ वि. के कारण संचार दुःखपूर्वक होता है। 4 द्वार करने नगर संचार सुखपूर्वक होता है। इसी प्रकार सामायिक अध्ययन के 4 अनुयोग द्वार (प्रवेश मुख) हैं।
उसके 4 अनुयोग द्वार -
1. उपक्रम - जिसके द्वारा शास्त्र निक्षेप के समीप लाया जाए अर्थात् निक्षेप की योग्यता को प्राप्त हो।

2. निक्षेप - नामादि भेदों से शास्त्र का स्थापन।
3. अनुगम - जिसके द्वारा शास्त्र जाना जाए अर्थात् सूत्र के अनुकूल ज्ञान।
4. नय - जिसके द्वारा वस्तु ले जाय अर्थात् वाच्य वस्तु की पर्यायों का संज्ञिक अधिगम।

Q. इन द्वारों का ऐसा ही क्रम क्यों?
A. उपक्रम बिना वस्तु समीप न होने से निक्षेप नहीं किया जाता। गुरुपरंपरा से पास आई हुई वस्तु का निक्षेप होता है।
नामादि भेदों से निक्षिप्त नहीं की गई वस्तु यथावत् अर्थ से नहीं जानी जाती। अर्थ से यथावत् नहीं जानी हुई वस्तु की नय से विचारणा शक्य नहीं है।

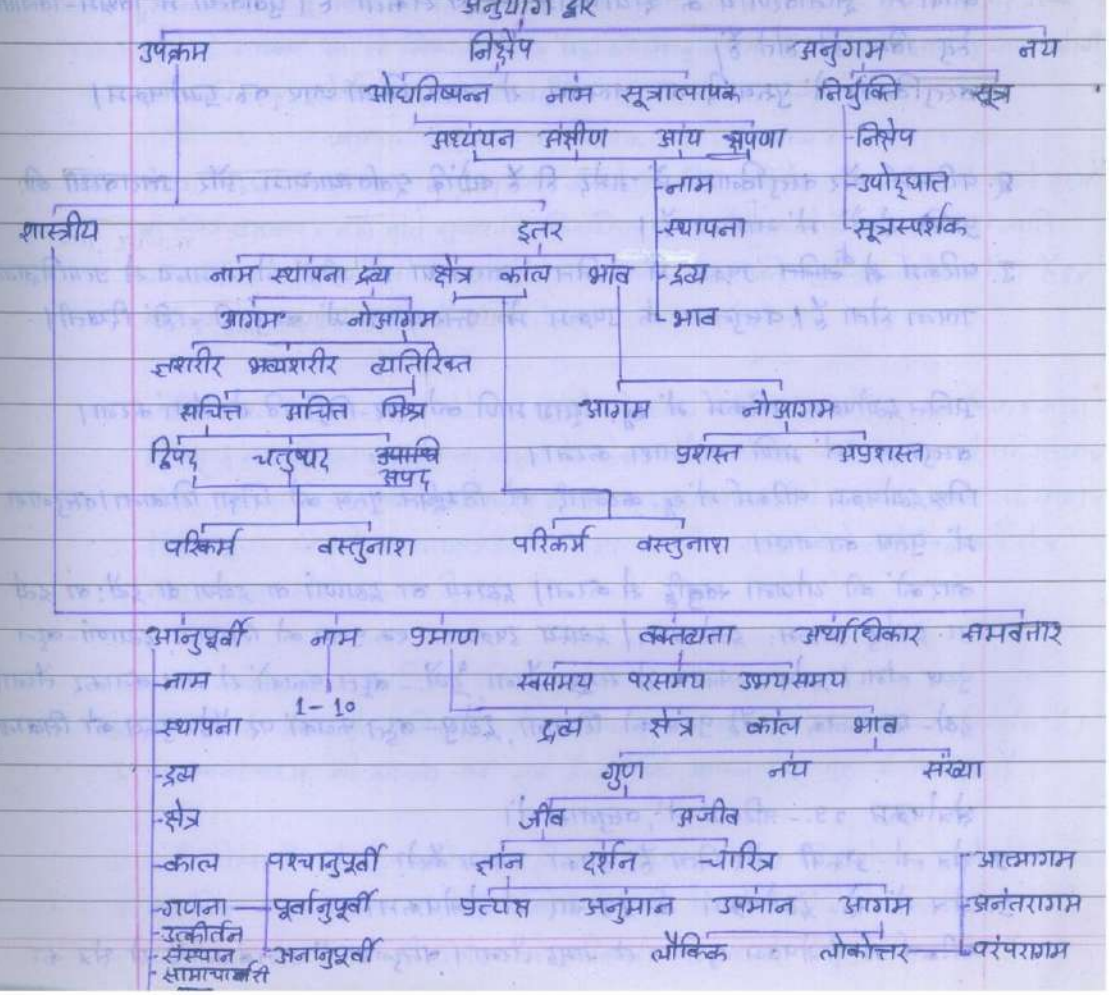

उपक्रम = कालांतर में होने वाली वस्तु को हेतुजात से पहले संपादन करना।
उपक्रम - २ प्र. शास्त्रीय और इतर। इतर ७ प्र. - नाम-स्थापना सुगम। द्रव्योपक्रम में भव्यशरीर तक सुगम। व्यतिरिक्त ३ प्र. - सचित्त, अचित्त, मिश्र द्रव्योपक्रम। सचित्त द्रव्योपक्रम ३ प्र. - द्विपद, चतुष्पद, अपद। प्रत्येक २ प्र. परिकर्म में और वस्तुनाश में।
परिकर्म यानि द्रव्य के गुणविशेष के परिणाम का करण। वस्तुनाश = वस्तु का अभाव करना द्विपदोपक्रम परिकर्म में - पुरुष का वर्णादि करण या कान-कंधा बढ़ाना वि.। तोता-मैना वि. को शिक्षा देकर देना। हाथी वि. को शिक्षा देना चतुष्पदोपक्रम। वृक्षादि का आयुर्वेद से वार्द्धकी वि. (वृक्ष को जल्दी बढ़ाना) अपदोपक्रम है।

१. वृक्ष का बढ़ना वि. कालांतर भावी हैं, परिकर्म में उनकी द्रव्योपक्रमता सिद्ध है। किंतु पुरुष को रंग करना, कला सिखाना कालांतर में भी हेतु बिना नहीं होते तो वे द्रव्योपक्रम कैसे?
२. वे भी हेतु बिना ही कालांतर में होते हैं। रंग नामकर्म के उदय से हो सकता है। कला भी ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से हो सकती है। युवावस्था में विभ्रम-विलासादि हेतु बिना ही होते हैं।
वस्तुविनाश में पुरुषादि का तलवार से नाश किया जाए वह द्रव्योपक्रम।

१. परिकर्म और वस्तुविनाश में अभेद ही है क्योंकि पूर्वावस्थात्याग और उत्तरावस्था की प्राप्ति दोनों में सामान्य है।
२. परिकर्म में कृत्रिम उपक्रम में जनित उत्तरावस्था में जीवों को सामान्य से प्रत्यभिज्ञानी उत्पन्न होता है। वस्तुनाश के उपक्रम में उत्तरावस्था में वस्तु ही नहीं दिखती।

सचित्त द्रव्योपक्रम परिकर्म में eg. पद्मराग मणि को क्षार-मिट्टी वि. से मैला करना। वस्तुनाश में मणि का नाश करना।
मिश्र द्रव्योपक्रम परिकर्म में eg. कटकादि से विभूषित पुरुष को शिक्षा सिखाना। वस्तुनाश में पुरुष का नाश।
वारकों की योजना स्वबुद्धि से करना। द्रव्यस्य वा द्रव्याणां वा द्रवेण वा द्रवैः वा द्रव्ये वा द्रव्येषु उपक्रमः द्रव्योपक्रमः। द्रव्यस्य उपक्रमः - एक पुरुष को सिखाना, द्रव्याणां - बहुत पुरुष तैरना। द्रवेण - फलक से समुद्र तैरना, द्रवैः - बहुत फलकों से नाव बनाकर तैरना। द्रवे - एक फलक पर बैठे पुरुष को सिखाना, द्रवेषु - बहुत फलकों पर बैठे पुरुष को सिखाना।

क्षेत्रोपक्रम २ प्र. - परिकर्म में, वस्तुनाश में।
१. क्षेत्र तो अरूपी और नित्य है। इसका उपक्रम कैसे?
२. क्षेत्र में रहे द्रव्योपक्रम के उपचार से क्षेत्रोपक्रम।
परिकर्म में क्षेत्रोपक्रम eg. नाव से समुद्र तैरना। वस्तुनाश में गजबंधनादि से क्षेत्र का

विरूपीकरण करना।
कालोपक्रम भी क्षेत्र की तरह उपचरित है। शंकु वि की छाया से या नाड़ी से ग्रहादि का यथार्थ ज्ञान परिकर्म में कालोपक्रम है। ग्रहादि से विरूप होना वस्तु नाश में कालोपक्रम है।

भावोपक्रम = दूसरे के हृदय में रहे रहस्य को यथावत् जानना। भावोपक्रम २७. आगम से, नोआगम से। आगम से ज्ञाता + उपयुक्त। नोआगम से भावोपक्रम २७. प्रशस्त, अप्रशस्त। अप्रशस्त में ३ दृष्टांत।
ब्राह्मणी - ब्राह्मणी x सोचा - कैसे पुत्रियाँ सुखी हो x बड़ी पुत्री को सिखाया - पति को लात सिर पर मारना x उसके मारने पर पति पैर दबाने लगा - लगी तो नहीं। x उसके भाई को कहने पर माता ने कहा - तू तेरी इच्छानुसार कर, यह तुझे अवरोध नहीं करेगा x दूसरी पुत्री ने भी सिखाने पर ऐसा किया x उसका पति थोड़ा गुस्सा होकर शांत हुआ x माता बोली - तू विश्वस्त रह, बस यह थोड़ा गुस्सा होगा x तीसरी के ऐसा करने पर उसके पति ने आकर घर से निकाल दिया x 'यह हमारा कुलधर्म है' ऐसा समझाया x माता बोली देवता की तरह इसे मानना, अन्यथा नहीं।

वेश्या - ६५ कलाकुशल x उसने परभाव जानने के लिए रतिघर में सभी धंधे करते पुरुषों के चित्र बनवाए x वहाँ आते सुथार वि. निजशिल्प की प्रशंसा करते हैं x वेश्या उसकी जाति जानकर उसे खुश करती है क्योंकि भाव जानी हुआ व्यक्ति सुखानुवर्तनीय होता है x वह खुश हो बहुत द्रव्य देता है।

मंत्री - राजा मंत्री के साथ घोड़े पर घूमने निकला x कोई जगह घोड़े ने मूत्र किया x गड्ढा भराया हुआ ही रहा x राजा ने बहुत देर देखा और सोचा - यहाँ तालाब हो तो अच्छा x मंत्री ने राजा के विचार जानकर तालाब बनवाया, आसपास बगीचे बनवाए x पुनः राजा आया x देखकर पूछा - किसने बनवाया x मंत्री - राजा आपने x राजा - कैसे x मंत्री - देखने से x राजा ने खुश होकर इनाम दिया।

प्रशस्त भावोपक्रम - श्रुतादि के लिए गुरु के भाव जानना।
१. व्याख्या के अंग के प्रतिपादन के अधिकार में गुरुभावोपक्रम कहना निरर्थक है।
२. गुरुभावोपक्रम भी व्याख्या का अंग है क्योंकि शास्त्रारंभ गुरु के अधीन है।

१. यदि ऐसा है तो गुरुभावोपक्रम ही कहो, अन्य उपक्रम निष्प्रयोजन होने से मत कहो
२. गुरुचित्त को प्रसन्न करने के लिए वे भी उपयोगी हैं जैसे - पानी - गोरसादि द्रव्यों का देश-काल की अपेक्षा से परिकर्म-नाश करने से गुरु खुश होते हैं।

अथवा निरुपयोगी होने पर भी उपक्रम के अधिकार में कहे गए उपक्रम अन्य जगह उपयोगी होते हैं।

गुरुभावोपक्रम का दृष्टांत- कन्यकुब्ज नगर x गोष्ठी - राजा और आचार्य x राजा - राजपुत्र विनीत हैं x सूरि - साधु विनीत हैं x विवाद में सूरि ने कहा - आपके सर्वोत्कृष्ट विनय वाले राजपुत्र की परीक्षा करो और मेरा जो शिष्य आपको अविनीत लगे उसकी परीक्षा करें x राजा ने स्वीकारा x विनीत राजपुत्र को राजा ने आदेश किया - गंगा किस बहती है वह ढूंढ x उसने कहा - इसमें क्या ढूंढना, गंगा पूर्वमुखी बहती है x राजा - यहाँ वितंडावाद क्यों करता है, जा और देख x मन में गुस्सा होकर वह निकला x राजद्वार पर मित्र ने पूछा - कहाँ जा रहा है? x राजपुत्र - जंगल में रोहों को नमक देने x मित्र - क्या हुआ राजपुत्र ने पूरी बात कही x मित्र - यदि राजा को ग्रह लगा है तो क्या तुझे भी लगा है, जाकर कह दे कि मैं देख आया गंगा पूर्वमुखी बहती है x राजपुत्र ने वैसा ही क्या x राजा के अविनीत साधु बताने पर सूरि ने उसे कहा - जा देख आ गंगा किधर बहती है, उसने सोचा - गंगा पूर्वमुखी बहती है, यह तो गुरु भी जानते हैं किंतु यहाँ कोई कारण होगा x यह सोचकर उसने कहा - तहत्ति x गया, स्वयं गंगा को देखा, दूसरे को पूछकर निश्चित किया फिर सूखे हुए तृणादि को बहते देखकर भी निर्णय किया x आकर गुरु को कहा - ऐसे मैंने निश्चित किया कि गंगा पूर्वमुखी बहती है x गुप्तचर ने भी दोनों का वृत्तांत कहा x राजा ने गुरु का वचन स्वीकारा।

इतर उपक्रम पूर्ण। अब शास्त्रीय उपक्रम 6 द्वा.- आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार, समवतार। आनुपूर्वी 10 द्वा.- नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, गणना, उत्कीर्तन, संस्थान, सामाचार्य, भाव। इन 10 आनुपूर्वी में यथासंभव सामायिक अध्ययन उतारना। उत्कीर्तनानुपूर्वी और गणनानुपूर्वी में यह अध्ययन उतरता है। उत्कीर्तन = सम्यक् प्रकार से शब्द करना - सामायिक, चतुर्विंशति इत्यादि। गणना यानि गिनना। गणनानुपूर्वी 3 द्वा.- पूर्वानुपूर्वी (सामायिक प्रथम) पश्चानुपूर्वी (प्रत्याख्यान प्रथम), अनानुपूर्वी (अनियत)

अनानुपूर्वी करने का उपाय →
→ भांगे का परिमाण - कुल जितनी संख्या की अनानुपूर्वी करना हो उनको one से लिखकर गुणा करने पर जो उत्तर आए उतने भांगे होंगे eg. 6 अध्ययन की अनानुपूर्वी में $1 \times 2 \times 3 \times 4 \times 5 \times 6 = 720$ भांगे होंगे।

→ संज्ञा -
ज्येष्ठ = जो जिसकी आदि में होती है, वह उसका ज्येष्ठ। eg. 1, 2 की आदि में है अत: 1, 2 का ज्येष्ठ।

अनुज्येष्ठ = एकांतरे आदि में हो वह अनुज्येष्ठ। eg. 1 का अनुज्येष्ठ।

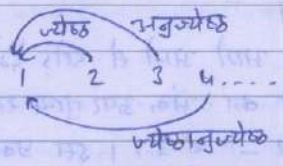

ज्येष्ठानुज्येष्ठ = एक से ज्यादा अंतर पर आदि में हो। eg. 4 वि. का। ज्येष्ठानुज्येष्ठ।

→ नियम - 1. सबसे पहले ज्येष्ठ रखना।
2. ज्येष्ठ न हो तो अनुज्येष्ठ रखना।
3. ज्येष्ठ या अनुज्येष्ठ रखने पर आगे आंगे में समान अंक नहीं आना चाहिए।
4. ज्येष्ठ या अनुज्येष्ठ रखने के बाद ऊपर वाले आंगे के तुल्य अंक रखना।
5. शेष उद्धरित अंक क्रम में रखना।

उदाहरण - 3 अंक के आंगे का परिमाण 1×2×3=6।
पहले सीधे अंकों का प्रथम आंगा 1 2 3।
उपर्युक्त नियमों में 1 का कोई ज्येष्ठ/अनुज्येष्ठ नहीं है, अतः उसे छोड़ देंगे।
2 का ज्येष्ठ 1 है अतः 1 को 2 के नीचे लिखा — 1 2 3
चौथे नियम से ज्येष्ठ रखने के बाद आगे का अंक ऊपर वाले अंक के तुल्य रखना — 1 2 3
पांचवें नियम से शेष उद्धरित अंक 3 रखना — 1 2 3। इस प्रकार दूसरा आंगा 2 1 3 हुआ।
अब 2 का ज्येष्ठ अंक 1 है किंतु आगे 1 आने से उसे नियम से उसका बाध हो जाने से छोड़ देंगे। 1 का कोई ज्येष्ठ नहीं इसलिए उसे भी छोड़ देंगे। 3 का ज्येष्ठ 2 रखेंगे — 2 1 3। अब 5वें नियम से शेष उद्धरित अंक 1, और 3 को क्रम से रखना — 2 1 3। इस प्रकार तीसरा आंगा 1 3 2 हुआ।
अब 1 को कोई ज्येष्ठ न होने से छोड़ देंगे। 3 का ज्येष्ठ 2 है किंतु आगे 2 आने से उसे नियम द्वारा बाध। अतः 3 का अनुज्येष्ठ 1 रखेंगे — 1 3 2।
अनुज्येष्ठ रखने के बाद 4 आगे के अंकों का ऊपर वाले आंगे के तुल्य अंक 4थे नियम से रखेंगे — 1 3 2। 5वें नियम से शेष उद्धरित 2 रखने पर — 1 3 2
इस प्रकार चौथा आंगा 3 1 2 हुआ।
अब 3 के ज्येष्ठ और अनुज्येष्ठ 2, 1 आगे आने से छोड़ देंगे। 1 का ज्येष्ठ-अनुज्येष्ठ न होने से छोड़ देंगे। 2 का ज्येष्ठ 1 रखेंगे — 3 1 2। 5वें

नियम से शेष द्विरित 2, 3 क्रम से रखने पर - 3 1 2 | इस प्रकार 5वां
2 3 1
भांगा 2 3 1 हुआ।
अब 2 का ज्येष्ठ 1 आगे आने से छोड़ देंगे। 3 का ज्येष्ठ 2 रखेंगे - 2 3 1।
4थे नियम से आगे का अंक ऊपर तुल्य रखेंगे - 2 3 1 | शेष द्विरित 3 2
नियम से रखने पर - 2 3 1 | इस प्रकार छठा भांगा 3 2 1 हुआ।
3 2 1
6 भांगे - 1 2 3
2 1 3
1 3 2
3 1 2
2 3 1
3 2 1

इस प्रकार यहाँ सामायिक अध्ययन के अनुयोग में 4, 5, 6 वि पदों के भांगे करना।

आनुपूर्वी कही गई। अब नाम कहते हैं। प्रतिवस्तु में झुकने से अर्थात् बदलता रहने से नाम कहा जाता है। प्रतिवस्तु नमनान्नाम। वह नाम 1 से 10 तक अनुयोग द्वार सूत्र में कहा गया है, वैसा समझना। 10 में से 6 नामों में सामायिक अध्ययन उतरता है क्योंकि 6 नामों में औदयिकादि 6 भाव कहे गए हैं। श्रुत क्षायोपशमिक होने से सभी नामों में सामायिक अध्ययन क्षायोपशमिक भाव में उतरता है।

अब प्रमाण कहते हैं। वह प्रमाण प्रमेय के भेद से 4 प्र. का - द्रव्य क्षेत्र काल भाव। सामायिक भावात्मक होने से भाव प्रमाण का विषय है। भाव प्रमाण 3 प्र. - गुण प्रमाण, नय प्रमाण, संख्या प्रमाण। सामायिक जीव का गुण होने से गुण होने से गुणप्रमाण में अंतर्भाव होती है। गुण प्रमाण 2 प्र. - जीव गुण प्रमाण, अजीव गुण प्रमाण। सामायिक जीव का गुण होने से जीव गुण प्रमाण में आता है। जीव गुण प्रमाण भी 3 प्र. - ज्ञान दर्शन चारित्र। सामायिक बोधात्मक होने से ज्ञानगुण प्रमाण में आती है। ज्ञानगुण प्रमाण भी 4 प्र. प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम। सामायिक गुरु उपदेश की अपेक्षा सहित होने से आगम प्रमाण में आती है। आगम 2 प्र. लौकिक, लोकोत्तर। सामायिक सर्वज्ञ प्रणीत होने से लोकोत्तर आगम में आती है। लोकोत्तर आगम 3 प्र. सूत्र, अर्थ, उभय। सामायिक तीनों प्र. में आती है।

आगम 3 प्र. - आत्मागम, अनंतरागम, परंपरागम।
सूत्र से गौतमादि गणधरों का आत्मागम, जंबूस्वामी वि. का अनंतरागम, प्रशिष्यों

का परंपरागम।
अर्थ से तीर्थंकरों का आत्मागम, गणधरों का अनंतरागम, प्रशिष्यों का परंपरागम।

यह सामायिक सूत्र और अर्थ से तीनों प्र. में उतरती है।
नय प्रमाण में यह सामायिक नहीं आती क्योंकि ~~नय प्रमाण~~ कालिकश्रुत नय रहित होता है।
संख्या प्रमाण ४प्र. का अनुयोग द्वार सूत्र में जैसा कहा गया, वैसा जानना। उसमें सामायिक सूत्र से परिमितसंख्या और अर्थ से अपरिमित संख्या में आती है।

वक्तव्यता यानि पदार्थविचार। ३प्र. स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता और उभय समय वक्तव्यता। सामायिक स्वसमय में आती है क्योंकि स्वसमय में ही उसका प्रतिपादन होता है। सम्री अध्ययन स्वसमय वक्तव्यता में आते हैं क्योंकि सम्यग्दृष्टि को परसमय-उभयसमय भी स्वसमय ही है। वह हेय-उपादेय का सम्यग् ज्ञान करता है इसलिए।

अर्थाधिकार यानि अध्ययन का समुदाय अर्थ। सामायिक = सावद्ययोगविरति, यह अध्ययन का समुदाय अर्थ है।

समवतार - सामायिक अध्ययन कहाँ - किस द्वार में आएगा वह कहा गया।

निक्षेप ३प्र. ओघनिष्पन्न, नामनिष्पन्न, सूत्रालापकनिष्पन्न। ओघ यानि सामान्य से शास्त्र का अभिधान। वह ५प्र. - अध्ययन, अक्षीण, आय, अपणा। प्रत्येक के नामादि ५प्र.। सामायिक भाव अध्ययन, भाव अक्षीण, भावाय, भाव अपणा में आती है। नाम निष्पन्न निक्षेप में 'सामायिक' ऐसा विशेषनाम। वह सूत्रस्पर्शक निर्युक्ति में कहेंगे। सूत्रालापकनिष्पन्न यहाँ सूत्र नहीं होने से नहीं कहते। ~~सूत्र आएगा तब कहेंगे।~~ सूत्रानुगम द्वार में कहेंगे।

अनुगम द्वार - २प्र. निर्युक्ति अनुगम और सूत्रानुगम। निर्युक्ति अनुगम ३प्र. - निक्षेपनिर्युक्ति अनुगम, उपोद्घातनिर्युक्ति अनुगम, सूत्रस्पर्शकनिर्युक्ति अनुगम। निक्षेपनिर्युक्ति शब्द में नामादि के न्यास से कही गई। अब उपोद्घात निर्युक्ति का अवसर है।

दीपिका → कालवेला सिवाय के काल में पढ़ने से आवश्यक कालिक सूत्र है। ~~का~~ कालग्रहण की अपेक्षा से उत्कालिक श्रुत है।

→ 6 अनुयोग द्वार - उपक्रम निक्षेप अनुगम नय। उपक्रम द्वार पूरा कहा। निक्षेप में ओघनिष्पन्न द्वार कहा। नाम निष्पन्न निक्षेप सूत्रस्पर्शक निर्युक्ति में कहेंगे। सूत्रालापक निष्पन्न द्वार तीसरे 'अनुगम' अनुयोग द्वार में सूत्रानुगम द्वार में कहेंगे। निक्षेपनिर्युक्ति अनुगम द्वार ~~में तीसरे~~ द्वितीय 'निक्षेप' अनुयोग द्वार में कहा गया। उपोद्घात निर्युक्ति का अवसर होने से अभी कहेंगे। सूत्रस्पर्शी निर्युक्ति सूत्र के साथ कहेंगे। चौथा अनुयोग द्वार 'नय' निर्युक्ति के अंत में कहेंगे। (देखो Chart Pg. No. 111)

मलधारीय टीका — अब उपोद्घात निर्युक्ति का प्रस्ताव है। वह उद्देशादि द्वार के लक्षणवाला है। वह महा अर्थ वाला होने से विघ्न न हो इसलिए मंगल कहते हैं।

पू1. मंगल तो पहले ही कहा गया तो वापस क्यों? और यदि मंगल करने पर भी पुनः
उ. मंगल किया जाता है तो प्रत्येकद्वार, प्रत्येक अध्ययन में मंगल कहो।
पू2. मंगल तो शास्त्र के आदि, मध्य और अंत में किया जाता है। आदि मंगल कहा गया। अब मध्य मंगल कहते हैं।
पू1. शास्त्र ही प्रारंभ नहीं हुआ तो मध्य मंगल कहाँ से?
पू2. 6 अनुयोग द्वार शास्त्र है। उपक्रम-निक्षेप रूप 2 द्वार पूर्ण होने से मध्य मंगल का अवसर है।
पू1. यह भी शास्त्र का मध्य नहीं है क्योंकि यह तो अध्ययन का मध्य है (सामायिक अध्ययन के 6 अनुयोग द्वार में से 2 पूर्ण हुए)।
उ. आदि में जो मंगल किया था वह आवश्यक का आदि मंगल था। यह जो मंगल कहेंगे वह सभी अनुयोग में उपयोगी उपोद्घात का है। सभी अनुयोगों में उपयोगी होने से यह महान् अर्थ वाला है और शास्त्रांतर है।
सर्व अनुयोग में उपयोगिता को बताने के लिए कहेंगे 'आवस्सयस्स दसकालियस्स' ... तथा 'सेसेसु वि अज्झयणेसु सेइ एसेव निज्जुत्ती'।

पू. सामायिक के व्याख्यान में यहाँ दशवैकालिकादि का कौन सा प्रस्ताव है जिससे इन का उत्क्षेप यहाँ शोभता है?
उ. उन दशवैकालिकादि का भी यही उपोद्घात है। थोड़ा विशेष है जो स्व-स्व निर्युक्ति में कहा जाएगा।

अब. उपोद्घात का आदि मंगल –
गा. 80 अनुत्तर पराक्रम वाले, अमितज्ञानी, तीर्ण, सुगति नामक गति में गए हुए, सिद्धिपथ के प्रदेशक तीर्थंकर भगवंत को वंदन करता हूँ।

★ तीर्थंकर →
→ तीर्यतेऽनेन इति तीर्थं । तु तीर्थं कुर्वन्ति इत्येवं-शीलाः ते तीर्थकराः ।
→ नामादि निक्षेप – नाम-स्थापना सुगम । द्रव्य में ज्ञशरीर- भव्यशरीर सुगम ।
तद्व्यतिरिक्त द्रव्य तीर्थ – नदी वि. का अपाय रहित सम भाग ।
भाव तीर्थ में नोआगम से संघ तीर्थ है क्योंकि वह संघ सम्यग्दर्शनादि परिणामों से अभिन्न है।

★ तीर्थ – द्रव्य और भाव का Comparison
→ तीर्थ की सिद्धि में 3-चीज सिद्ध होती है –

	द्रव्य	भाव
1. तरीता	पुरुष	साधु
2. तरण	नाव वि.	सम्यग्दर्शनादि त्रिक
3. तरणीय	नदी वि.	भवोदधि

नदी वि. द्रव्य तीर्थ है क्योंकि उसे एक बार तैरने के बाद प्रयोजन होने पर पुनः तैरना पड़ता है अथवा अपाय संभव होने पर न तैरने से अनेकांतिक है।

→ नदी वि. का सम भाग तीर्थ होने के 3 कारण – 1. कीचड़ साफ करने से 2. दाह उपशम से 3. प्यास बुझाने से ।
संघ तीर्थ होने के 3 कारण – कर्म मल साफ करने से, क्रोधाग्नि के दाह के उपशम से, लोभ रूप प्यास बुझाने से।

→ नदी वि. द्रव्य तीर्थ 4 प्र. – 1. सुखावतार सुखोत्तार 2. सुखावतार दुरुत्तार
3. दुःखावतार सुखोत्तार 4. दुःखावतार दुरुत्तार ।
इसी प्रकार भाव तीर्थ 1. सुखावतार सुखोत्तार – शैव मत → उसमें इंद्रिय-परीषह-उपसर्गादि के जय रूप दुष्कर अनुष्ठान का अभाव होने से सुखावतार। 12 वर्ष व्रत कर यदि अशक्त हो तो यज्ञ कर छोड़ दे' इस प्रकार व्रत छोड़ने में निर्दोषता होने से सुखोत्तार।
2. सुखावतार दुरुत्तार – बौद्ध मत → 'मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया, भक्तं मध्ये पानकं चापराह्णे। द्राक्षाखण्डं शर्करा चार्द्धरात्रे, मोक्षश्चान्ते शाक्यसिंहेन दृष्टः॥'
'अणुण्णं भोयणं भुच्चा, अणुण्णं सयणासणं। अणुण्णंसि अगारंसि, अणुण्णं णायरे मुणी॥'
इस प्रकार सुख पूर्वक प्रवेश होने से सुखावतार। व्रत त्याग में बड़े संसारदंडादि का प्रतिपादन होने से दुरुत्तार।
3. दुःखावतार सुखोत्तार – दिगंबर मत → नग्न्य अत्यज्जास्पद होने से अतिदुष्कर है

इसलिए दुःखावतार। अनेषणीय वस्तु का परिभोग, कषाय की बहुलता वि. दिखने से उस मत से विराग होने पर सुखपूर्वक त्याग छोड़ देते हैं, इससे सुखोत्तार।

५. दुःखातार दुरुत्तार – जैन मत → कषाय-इंद्रिय-परीषह-उपसर्ग जय, अप्रमत्तभाव, तीर्थ के कारण दुःखावतार। प्रवेश किए हुए को तत्त्व का ~~ज्ञान~~ ज्ञान हो तो वह ~~दुःखपूर्वक~~ नहीं छोड़ता या दुःख पूर्वक छोड़ता है अतः दुरुत्तार।

★ नदी स्नान आदि तीर्थ से कर्मक्षय का खंडन →
नदी स्नान मात्र बाह्य मल ही दूर करने से द्रव्य तीर्थ है।

वह आंतर मल दूर करने में समर्थ नहीं है। आंतर मल २ प्र. से दूर होता है –
१. नए मल की उत्पत्ति का निरोध २. प्राचीन मल का विध्वंस।
नया मल प्राणातिपातादि कारणों से होता है। अतः प्राणातिपातादि के निरोध से ही नए मल की उत्पत्ति का निरोध होता है। तीर्थस्नान से प्राणातिपातादि का निरोध नहीं होता, बल्कि अप्काय की विराधना होती है।
यह स्नान प्राचीन मल के उच्छेद का हेतु नहीं है क्योंकि ~~मल का उच्छेद~~ विशिष्ट क्रिया की अपेक्षा वाले अध्यवसाय से जन्य मल का उच्छेद उसकी प्रत्यनीक क्रिया के साथ रहे अध्यवसाय से ही होता है।

अतः नदी स्नान रूप तीर्थ द्रव्य तीर्थ है।

★ भगवन्त →
भग = समग्र ऐश्वर्यादि। भगः अस्ति येषां भगवन्तः।

प्र. तीर्थंकर होने से भगवंत तो आ ही जाते अतः यह विशेषण क्यों लिया?
उ. अन्य मत के तीर्थंकर बुद्धादि का निराकरण करने के लिए। वे बुद्धादि स्व-स्व दर्शन के तीर्थंकर हैं किंतु समग्र ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त नहीं हैं।

★ अनुत्तरपराक्रम →
परेषां आक्रमः पराक्रमः। अनुत्तरः पराक्रमः येषां ते अनुत्तरपराक्रमः।
पर = शत्रु – द्रव्य से बाह्य शत्रु, भाव से क्रोधादि। यहाँ भावशत्रु लेना।
आक्रम = पराजय, उच्छेद।
अनुत्तर = अन्य किसी का भी नहीं है वैसा अनन्यसदृश।
अन्य किसी ने नहीं किया वैसा शत्रुओं का उच्छेद करने वाले।

प्र. जो ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त होते हैं, वे अनुत्तर पराक्रम वाले होते हैं। इसलिए यह विशेषण अनर्थक है?

उ. कुछ धर्म वाले अनुत्तर पराक्रम बिना ही हिरण्यगर्भादि को विवक्षित अर्थ से युक्त अनादि मानते हैं। उनके निषेध के लिए विशेषण है।

★ अमितज्ञानी →
अमित - अपरिमित ज्ञान केवलज्ञान है जिन्हें वे अमितज्ञानी।

प्र. जो अनुत्तर पराक्रम वाले है वे समित ज्ञानी होते ही हैं क्योंकि क्षयादि के संपूर्ण क्षय के बाद अमित ज्ञान अवश्य होता है। अतः विशेषण निरर्थक है?

उ. कुछ दर्शन वाले (बौद्ध) कर्मक्षय में भी अमितज्ञान, सर्वज्ञता नहीं मानते। वे मात्र इष्ट तत्त्व का बोध आवश्यक मानते हैं। उनके व्यवच्छेद के लिए विशेषण है। जिसे सर्वभावों का ज्ञान नहीं है, उसे तत्त्ववृत्ति से एक भाव का भी ज्ञान नहीं होता क्योंकि सर्व वस्तु सर्व वस्तु के साथ अनुवृत्त-व्यावृत्त धर्मता से अपेक्षा वाली है। अतः सर्वज्ञता के अभाव में वे इष्ट तत्त्व को भी संपूर्ण नहीं जान सकते। इसी बात को आचारांग में भी कहा है - 'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ। जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ'।

अथवा
जैन सिद्धान्त में भी छद्मस्थ वीतराग अनुत्तर पराक्रम वाले हैं क्योंकि उन्होंने भी कषायों का नाश किया है। उनके व्यवच्छेद के लिए यह विशेषण है।

★ तीर्ण →
तरन्ति स्म भवार्णवं इति तीर्णाः। जिन्होंने भवसमुद्र पार कर लिया।

★ सुगतिगतिगत →
सर्वज्ञ होने से, सर्वदर्शी होने से, निरुपम सुख होने से सुगति = सिद्ध।
उनकी गति सुगतिगति। इस पद से तिर्यंच - मनुष्य - नारक - देव 4 गति का व्यवच्छेद कर इसी मोक्षगति कही।
उस गति को प्राप्त सुगतिगतिगत।
इस पद से मणिभद्रादि यक्षों युक्त, स्वेच्छाविलास करने वाले पुरुष को तीर्ण मानने वालों का निराकरण किया। (स्पष्टता चूर्णि में)

★ सिद्धिपथोपदेशक →
सिद्धि के पथ का उपदेश देने वाले।

इस विशेषण से तीर्थंकर का स्वरूप कहा।

चूर्णि → तीर्ण - एक बार भवसमुद्र तिरकर पुनः नहीं आते इसलिए तीर्ण विशेषण।

→ सुगतिगतिगत - कुछ दर्शन ऐसा मानते हैं कि पुरुष अणिमादि लब्धि प्राप्त कर सर्वज्ञ होकर यथेच्छ विहार कर हमेशा यहीं सुख प्राप्त करते हैं। उनके व्यवच्छेद के लिए विशेषण।

→ तीर्थंकर - प्रणयन बताने के लिए।
भगवंत - ऐश्वर्य बताने के लिए।
अनुत्तर पराक्रम - शक्ति बताने के लिए।
अमितज्ञानी - ज्ञान ऋद्धि " " ।
तीर्ण - दुःख छेद " " ।
सुगतिगतिगत - अवस्था " " ।
सिद्धिपथप्रदेशक - उपकारित्व " " ।

हरिभद्रीय टीका → अनुत्तर पराक्रम - इस पद से आत्मा को अकर्ता मानने वाले सांख्य मत का खंडन।

रिप्पणक → दुःखावतार - सुखोत्तार - दिगंबर मत → सुखोत्तारता का कारण - नाग्न्य की स्थापना में कोई भी निपुण युक्ति न होने से लोग सुख पूर्वक छोड़ देते हैं।

→ अन्य मत वाले उत्तार पक्ष में अलग अर्थ करते हैं - (मोक्ष की अपेक्षा)
1. शैव मत में अल्प अनुष्ठान से ही मोक्ष बताने से सुखोत्तार।
2. बौद्ध मत में कठिन ध्यान मार्ग और योगिज्ञान की उत्पत्ति आदि क्रम से मोक्ष प्राप्त होने से दुरुत्तार।
3. दिगंबर मत में भिक्षाशुद्धि आदि की गौणता और नाग्न्य रूप लक्षण वाली निर्ग्रंथता मात्र से ही मोक्ष होने से सुखोत्तार।
4. जैन मत में भी बौद्ध मत की तरह कठिन साधना मार्ग होने से दुरुत्तार।
- अवतार पक्ष में पूर्ववत् समझना।

मलयगिरीय टीका → अत. ऋषभादि सभी तीर्थंकरों को सामान्य से वंदन कर आसन्न उपकारी होने से और संपूर्ण श्रुत ज्ञान के उपदेशक होने से महावीर स्वामी को वंदन करते हैं -

गा. 8। महाभाग, महामुनि, महायश वाले, देव-मनुष्य के राजा से पूजित, इस तीर्थ के तीर्थंकर महावीर स्वामी को मैं वंदन करता हूँ।

★ 'वंदामि' – दीपक न्याय से सभी उत्तर पदों का अनुयायी इस पद को समझना अर्थात् सभी पदों से जोड़ना।

★ महाभाग →
भाग = अचिंत्य शक्ति, प्रभाव।
महान् अचिंत्य शक्ति वाले, प्रभाव वाले।

★ महामुनि →
मनुते मन्यते वा जगतः त्रिकालावस्थां इति मुनिः = जो जगत् की त्रिकाल अवस्था को जाने।
सर्वज्ञ होने से महामुनि।

★ महायश →
तीनों लोक में फैलने से महान् यश वाले महायश।

★ महावीर →
1. कषायादि शत्रुजंयात् महाविक्रान्तः महावीरः = कषायादि शत्रुओं को जीतने से।
2. विदारयति कर्मरिपुसङ्घातं इति वीरः।
3. अनन्यानुभूतमहातपःक्रियां विशेषतः राजते इति वीरः।
4. अन्तरङ्गमहामोहबलनिर्दलनाय तपोवीर्यं अनन्तं व्यापारयति इति वीरः।

★ सुरनररराजपूजित →
देव के स्वामी इंद्र। मनुष्यों के राजा चक्रवर्ती। इंद्र और चक्रवर्ती से पूजित।

★ अस्य तीर्थस्य तीर्थंकर →
इस वर्तमान तीर्थ को करने वाले।

नूर्णि → महत् शब्द प्राधान्य और बहुत्व अर्थ में।

→ महाभाग – महान्तं (मोक्षं) भजति इति। = मोक्ष को भजने वाले। (प्राधान्य अर्थ)
→ महाभु महान्तं (सुखं) भजति इति = अतुल सुख को भजने वाले। (बहुत्व अर्थ)

→ महामुनि – महान्तं अर्थं मुणितं येन महामुनि। महान् अर्थ = नवपदार्थ ।

→ महायश – यश = सामान्य से। कीर्ति = विशेष से चारों दिशा में।

→ अस्य तीर्थस्य तीर्थंकर – पद से चरकादि का प्रतिषेध।

प्रत्याशीर्वाद
टीका भव. अर्थ बोलने वाले तीर्थंकरों को वंदन किया। अब सूत्रकर्ता को भी पूज्य होने से वंदन करते हैं –

गा. 82 प्रवचन के प्रवाचक ॥ गणधरों को, सभी गणधर के वंश को, वाचक वंश को, और प्रवचन को मैं वंदन करता हूँ।

★ गणधर →
अनुत्तर ऐसे ज्ञानदर्शनादि गुणों के गण को धारण करने वाले गणधर।

★ प्रवाचक →
प्रकर्ष से प्रधान वाचक अथवा आदि में (प्रथम) वाचक।

★ प्रवचन → द्वादशांग।

★ सर्व गणधर वंश – सभी आचार्यों का वंश, प्रवाह, परंपरा।

★ वाचकवंश – वाचक यानि उपाध्याय का वंश, परंपरा।

Q. अर्थ और सूत्र कर्तृत्व होने से क्रमशः तीर्थंकर और गणधर वंद्य हैं। आचार्य, उपाध्याय और प्रवचन क्यों वन्द्य हैं?
A. आचार्य-उपाध्याय की परंपरा से अर्थ और सूत्र हम तक आए गए अतः वे भी उपकारी होने से वंद्य हैं। ★ प्रवचन तो साक्षात् उपकारी है ही।

अब. अब प्रकृत कहते हैं –
गा. 83 उन्हें सिर से वंदन कर उनके द्वारा कथित, ~~श्रुतज्ञान~~, भगवान् ~~इस~~ अर्थपृथक्त्व, ~~(सूत्र)~~ की निर्युक्ति कहूंगा।

ऐसे श्रुतज्ञान

★ सिर – उत्तमांग होने से मन और काया से।

★ अर्थपृथक्त्व – सूत्र अर्थ से कथंचित् भिन्न है। कथंचित् भिन्न होने से सूत्र पृथक् कहा जाता है। प्राकृत में स्वार्थिक त्व प्रत्यय।

अर्थात् सूत्र और अर्थ।

★ भगवत: → ऐश्वर्यादि से युक्त होने से। (टीप्पणक)

प्रश्न. संपूर्ण श्रुतज्ञान की निर्युक्ति कहोगे या कुछ की? उ. आवश्यकादि श्रुत विशेष की निर्युक्ति कहूँगा। इसी बात को कहते हैं-

गा.84-85 आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग, दशा, कल्प, व्यवहार, सूर्यप्रज्ञप्ति तथा ऋषिभाषित की निर्युक्ति कहूँगा।

गा.86 इन श्रुतविशेषों की आहरण-हेतु-कारणपद को वहन करने वाली यह निर्युक्ति जिनोपदेश से संक्षेप में कहूँगा।

★ 'परम' ग्रहण - मोक्ष का अंग होने से।
'निपुण' ग्रहण - अत्यंसक होने से। यह व्यवहार मनु आदि ऋषियों द्वारा प्रणीत व्यवहार की तरह व्यंसक नहीं है।

★ आहरण - अन्वय-व्यतिरेक से दृष्टांत बताना।
हेतु - साध्य के साथ अन्यथा अनुपपत्ति वाला।
कारण - मात्र उपपत्ति। (युक्ति) eg. सिद्ध निरुपम सुख वाले हैं क्योंकि उन्हें ज्ञान और अनाबाध का उत्कर्ष है। इस प्रकार यहाँ साध्यसाधन धर्म के अनुसार कोई दृष्टांत लोक में नहीं है।
इस निर्युक्ति में आहरण-हेतु और कारण के निवह यानि समूह होने से उस यह विशेषण दिया है।

प्र. यहाँ हेतु से पहले दृष्टांत क्यों कहा?
उ. कहीं पर हेतु छोड़कर सीधा दृष्टांत कहा जाता है। eg. गतिपरिणाम में परिणत जीव-पुद्गलों को धर्म द्रव्य सहायक है, मछली को पानी की तरह।
कहीं पर केवल हेतु ही कहा जाता है eg. यह घोड़ा मेरा है, विशिष्टचिह्नों की उपलब्धि की अन्यथा उपपत्ति होने से।
इस ~~उदाहरण~~ न्याय को बताने के लिए पहले दृष्टांत कहा है।

★ इमा (यह निर्युक्ति) - उस निर्युक्तिकार के अंदर तत्त्व पन से निष्पन्न ऐसी निर्युक्ति अर्थात् उनके अंदर तो निर्युक्ति तैयार हो चुकी है।

प्रश्न. 'यथोद्देशं निर्देश:' इस प्रकार के न्याय से पहले अधिकृत आवश्यक के सामायिक अध्ययन की उपोद्घात निर्युक्ति कहते हैं-

गा. 87 आचार्यों की परंपरा से क्रम पूर्वक आई हुई, गुरु जन द्वारा उपदेशित सामायिक निर्युक्ति कहूँगा।

★ परंपरा 2 प्र. – 1. द्रव्य – eg. पुरुषों की परंपरा से ईंटों का लाना।
2. भाव – यही उपोद्घात निर्युक्ति आचार्यपरंपरा से आई।

★ आचार्य परंपरा से कैसे आई?
3. आनुपूर्वी से (क्रम पूर्वक) eg. जंबूस्वामी से प्रभव द्वारा ली गई, उनसे शय्यंभवसूरि ने ली इत्यादि।

★ द्रव्य परंपरा में कथानक – साकेत नगर × उत्तर-पूर्व दिशा में सुरप्रिय यक्ष × शत वर्ष महोत्सव × एक चित्रकार चित्र बनाता है, उसे वह यक्ष मारता है × यदि चित्र न बनाए तो बहुत लोगों को मारता है × चित्रकार जाने लगा × राजा ने सोचा – यदि सभी चित्रकार चले जाएँगे तो यक्ष बहुत लोगों को मारेगा × इसलिए चित्रकार की line बना दी × सबके नाम चिट्ठी पर लिखकर घड़े में से बालक द्वारा निकलवाते हैं × जिसका नाम आए वह चित्र बनाए ×× एकदा कोई कौशांबी से कोई चित्रकार का पुत्र भागकर सीखने के लिए आया × वह एक घर में गया × वहाँ वृद्धा एका इकलौता पुत्र चित्रकार था × मित्रता हुई × उस वर्ष उस वृद्धा के घर का नंबर आया × वृद्धा रोई × कौशांबिक के पूछने पर वृद्धा ने कारण कहा × कौशांबिक – मैं यक्ष चित्र बनाऊँगा × उसने स्नान कर अखंड दो वस्त्र पहनकर मुखकोश बांधकर नौ कलशों से अभिषेक कर, नौ पीठी – नौ मत्तचंसपुर (रंग रखने के साधन) से कुदरत के प्रक्षेप रहित रंगों से चित्र बनाकर पैर में पड़कर बोला – जो अपराध हो उसे क्षमा करो × यक्ष खुश हुआ, बोला – वरमाँग × कौशांबिक – लोगों को मत मारो × यक्ष – यह तो ठीक दूसरा वर मांग × कौ. – जिस द्विपद – चतुष्पद – अपद का एक देश भी देखूँ; उसके अनुरूप संपूर्ण चित्र बना दूँ × यक्ष – एवं भवतु × कौशांबी नगर गया ××

कौशांबी नगर × शतानीक राजा × दूत को पूछा – मेरे पास क्या नहीं है, जो अन्य राजा के पास है × दूत – चित्रसभा × चित्रकार बुलाए × चित्रसभा बनाई × वरप्राप्त चित्रकार को मंत्रियों को क्रीड़ा प्रदेश मिला × चित्र बनाते-बनाते उसने जाली में से मृगावती के पैर का अंगूठा देखा × अनुमान से जाना – यह मृगावती है × चित्र बनाया × मुँह बनाते समय जांघ पर बूंद गिरी × उसने साफ की किंतु पुनः गिरी × ऐसे बार होने से उसने छोड़ दी × चित्रसभा देखते हुए राजा वहाँ आया × जांघ पर तिल देखकर उसने चित्रकार को मारने का हुक्म दिया × सभी चित्रकार बोले – यह वर प्राप्त है × राजा ने कुब्जा दासी का मुख बताया × उसने चित्र बनाया × तो भी राजा ने संदंशक (अंगूठे और तर्जनी का अग्रभाग) कटवा दिया × उसने उपवास कर उल्टे हाथ से चित्र बनाने का वरदान पाया × मृगावती का चित्र प्रद्योत को बताया × प्रद्योत ने दूत भेजा × शतानीक ने मृगावती देने के लिए मना किया × प्रद्योत सेना लेकर चला × शतानीक भय से मर गया × मृगावती ने प्रद्योत को समाचार भेजे कि हम दोनों उज्जैन जाएँगे तो मेरे पुत्र की रक्षा कौन करेगा? इसलिए उज्जयिनी की ईंट बहुत मजबूत होती है, उनसे किला बनवाओ × प्रद्योत राजा के उत्तर में थे × पूरी सेना line में खड़ी हुई × line से ईंट कौशांबी आई × किला बना × मृगावती बोली – इस नगर को धान्य से भरो × उसने भरा × फिर मृगावती नगर के

द्वार बंध कर बैठ गई x प्रभु पधारे x सभी वैर शांत हुए x मृगावती समवसरण में गई x वहाँ एक व्यक्ति ने मन से प्रभु को प्रश्न पूछा x प्रभु-वचन से पूछने पर बहुत लोग धर्म पामेंगे x उसने पूछा- जासा सा सा? x प्रभु-हा x गौतम स्वामी- इसने क्या पूछा? - x प्रभु-

चंपा नगरी x स्त्री लंपट सुवर्णकार x 500 पत्नी x रोज जिसके साथ भोग करना हो, उसे अलंकार पहनाता है x ईर्षा से 'घर में कोई न आए' घर के बाहर नहीं जाता x एकदा जबरजस्ती जाना पड़ा x सभी पत्नी ने अलंकार पहने x सभी mirror देख रही थी x पीछे से वह आया x गुस्से में एक पत्नी को इतना मारा की वह मरगई x 499 ने mirror से मारा x वह मर गया x सभी को खबर पड़ी x सब आग में जलकर मरी, 499 जंगल में चोर बनी x जो पत्नी पहले मरी थी वह तिर्यंच बनकर फिर ब्राह्मणकुल में दास बनी x वह दास पाँच सात का हुआ तब सुवर्णकार तिर्यंच गति में घूमकर ब्राह्मण पुत्री बना x पुत्री रोजरोती x दासपुत्र का हाथ एकदा चोनि पर जाने से वह चुप हुई x दासपुत्र रोज ऐसा करता x माता-पिता ने पता-चलने पर घर से निकाला x पुत्री भी घर से निकली x दासपुत्र चोर पल्ली में पहुँचा x ब्राह्मण पुत्री एक गाँव पहुँची x 500-चोरों ने गाँव लूँटा x इस पुत्री को उठा ले गए x 500-चोरों ने सोचा- यह एक ही 500 से मर जाएगी अतः दूसरी कन्या लाए x ब्राह्मण कन्या ने दूसरी कन्या को चोर नहीं ले तब कुएँ में डालकर मार दिया x चोरों ने वापस आने पर पूछा x उसने कहा- तुम्हारी कन्या की तुम जानो x यह उत्तर सुनकर दासपुत्र ने सोचा कि, निश्चित ही यह मेरी वही बहन होना चाहिए x उसने समवसरण में आकर भगवान् को पूछा- कि यह वही स्त्री है x प्रभु- हा वही है x सुनकर दास पुत्र ने दीक्षा ली x मृगावती ने उदयनकुमार उद्योत को सौंपकर और उसे पूछकर दीक्षा ली x उद्योत की अंगारवती कि. 8 रानी ने दीक्षा ली x दीक्षित दासपुत्र ने 500-चोरों को प्रतिबोध दिया।

यहाँ ईरे पुरुष परंपरा से उज्जयिनी से कौशांबी आए वह द्रव्य परंपरा है।

अब. निर्युक्ति का स्वरूप -

गा. 88 जिससे निर्युक्त अर्थ बद्ध होते हैं, वह निर्युक्ति। सूत्रपरिपाटी प्रतिपादन कराने के लिए इच्छा कराती है।

★ निश्चय से, अधिकता से अथवा आदि में ही (अर्थात् सूत्र की रचना से ही) (सूत्र से) जुड़े हुए अर्थ निर्युक्त अर्थ कहे जाते हैं। ऐसे जीवाजीवादि निर्युक्त अर्थ जिससे बद्ध हो, व्यवस्थापित हो, व्याख्यात हो वह निर्युक्ति।

★ प्र. जो सूत्र में अर्थ पहले से ही संबद्ध होते हैं तो निर्युक्ति से उनका व्याख्यान क्यों किया जाता है? संबद्ध अर्थ तो शिष्यवर्ग को स्वयमेव समझ में आ जाएगा।

उ. यद्यपि सूत्र में अर्थ संबद्ध है तो भी श्रोता को खेद न होने से सूत्रपरिपाटी ही ~~सुन~~ करने शिष्य के अनुग्रह के लिए स्वयं का व्याख्यान करने के लिए गुरु को प्रेरणा करती है।

अथवा कहीं 'सूत्रपरिपाटी' ऐसा द्वितीयान्त पद का पाठ है। वहाँ ऐसा अर्थ है- शिष्य ही सूत्र को न समझने पर गुरु को सूत्रपरिपाटी का व्याख्यान करने के

लिए प्रेरणा करता है।

अत. तीर्थंकर-गणधर द्वारा कहे हुए श्रुतज्ञान की निर्युक्ति कहूँगा, इस प्रकार गा. 83 में कहा गया। यहाँ उन तीर्थंकर-गणधरों की शीलादि संपत्ति कहते हैं -

गा. 89-90 तप-नियम-ज्ञानवृक्ष पर आरूढ, केवली, अमितज्ञानी भव्यजन के बोध के लिए ज्ञान-वृष्टि करते हैं। उस वृष्टि को बुद्धि रूप कपड़े से संपूर्ण ग्रहण कर तीर्थंकर के भाषणों को प्रवचन के लिए गुंथते हैं।

★ यहाँ रूपक अलंकार है। वृक्ष 2 प्र. से द्रव्य और भाव।
द्रव्य से प्रधान वृक्ष कल्पवृक्ष है। कोई पुरुष उसके ऊपर चढ़कर गंधादि गुणों से युक्त फूलों को इकट्ठा कर वृक्ष पर चढ़ने में असमर्थ पुरुषों की अनुकंपा से फूल नीचे फेंकता है। नीचे रहे पुरुष भी नीचे जमीन पर गिरने से मिट्टी में मिलने के भय से स्वच्छ और बड़े कपड़े पर उन्हें ग्रहण करते हैं। स्वयं उपयोग अनुसार उपभोग करते हुए और दूसरों का उपकार करते हुए सुख प्राप्त करते हैं। इस ~~भाव~~ प्रकार भाववृक्ष पर जोड़ना।

★ तप-12 प्र.।
नियम - इंद्रिय और नोइन्द्रिय (मन) का संयम। मन का संयम - क्रोधादि का निग्रह।
ज्ञान - केवलज्ञान।

★ प्र. केवली विशेषण होने पर भी 'अमितज्ञानी' विशेषण का ग्रहण क्यों किया?
उ. ज्ञान संपूर्ण भी होता है और असंपूर्ण भी। यहाँ संपूर्णज्ञानी का ग्रहण करने के लिए केवली विशेषण दिया।
केवली 2 प्र. - श्रुतकेवली, क्षायिकसम्यक्त्व केवली, क्षायिकज्ञानकेवली। अथवा
केवली 5 प्र. - श्रुतकेवली, अवधिकेवली, मनःपर्यायज्ञानकेवली, केवलज्ञानकेवली।
इनमें श्रुतादि केवली के व्यवच्छेद के लिए 'अमितज्ञानी' विशेषण।

★ 'ज्ञान रूप पुष्प वृष्टि' यहाँ कारण में कार्य का उपचार से किया है। ज्ञान-कार्य, शब्द-कारण। जीवों में ज्ञान के कारण श्रुत शब्दों की ~~वृष्टि~~ वृष्टि।

★ प्र. यदि भगवान् कृतकृत्य है तो उनका दूसरों को तत्त्वकथन निरर्थक है, प्रयोजन का अभाव होने से। यदि प्रयोजन है तो वे कृतकृत्य नहीं है, हमारी तरह प्रयोजन की अपेक्षा होने से।
उ. भगवान् कृतकृत्य नहीं हैं क्योंकि तीर्थंकरनामकर्म के विपाकोदय का उन्हें अनुभव हो रहा है। उसका अनुभव सद्धर्म-देशना आदि प्रकार से होता है।

प्र. भगवान् सर्वज्ञ और वीतराग हैं। वह भव्य जीवों को ही बोध देते हैं, यह अयुक्त है क्योंकि सर्वज्ञपन से अभव्यों के बोध के उपाय को भी जान लेते हैं। यदि उपाय नहीं जाने तो वे सर्वज्ञ नहीं होने की आपत्ति आएगी। यदि ऐसा कहो कि भव्य जीवों में उनका पक्षपात है तो वह भी योग्य नहीं है क्योंकि वे वीतराग हैं।

उ. भगवान् सर्वज्ञ हैं इसीलिए भव्य को ही बोध देते हैं क्योंकि अभव्यों के बोध का कोई उपाय ही नहीं है। यदि उनके अभव्यत्व का उपाय होता है तो अभव्यत्व का अयोग होता अर्थात् वे अभव्य नहीं होते। (बोध)

वीतराग होने से उनको पक्षपात भी नहीं है। मात्र पक्षपात से निरपेक्ष जीवों में भेदभाव बिना देशना करते हुए विभिन्न स्वभाव वाले जीवों में तथास्वभाव से विबोध- अतिबोध करने वाली क्रिया होती है। उसमें भगवान् का दोष नहीं है। अथवा जैसे साध्य या असाध्य रोग की चिकित्सा करता वैद्य उस रोग से अज्ञ भी नहीं है और राग-द्वेष वाला भी नहीं है, वैसे ही तीर्थंकर भी देशना देते हुए कर्म रोग से अज्ञ भी नहीं हैं और राग-द्वेष वाले भी नहीं हैं।
अथवा योग्य पत्थर से मूर्ति बनाता और अयोग्य से नहीं बनाता मूर्तिकार जैसे अज्ञ और राग-द्वेष वाला नहीं है वैसे ही तीर्थंकर भी।

सिद्धसेन दिवाकर सूरि ने कहा है -
त्वद्वाक्यतोऽपि केषाञ्चिदबोध इति मेऽद्भुतम्।
भानो मरीचयः कस्य नाम नात्यौकहेतवः ?॥
आपके वाक्य से भी किसी को बोध नहीं होता, इस प्रकार मुझे साश्चर्य है क्योंकि सूर्य की किरणें किसके लिए अत्यौक का हेतु नहीं है।
नैवाद्भुतमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतसः।
स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वतः कराः॥
अथवा इसमें भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि प्रकृति से क्लिष्ट चित्त वाले उल्लू को स्वच्छ सूर्य किरण भी अंधकार जैसे लगते हैं।

★ बुद्धिमय पद - गणधरों की बीजबुद्धि होने से।

★ प्रवचनार्थ - 'यह प्रवचन कैसे बने' इस प्रकार उसे गुंथते हैं।

→ केवली ५ प्र. - श्रुतकेवली, सम्यक्त्व केवली, चारित्र केवली, ज्ञानकेवली (हरिभद्रीय टीका)

अब ~~[illegible]~~ अन्य प्रयोजन कहते हैं -

गा. 9। सुखपूर्वक ग्रहण कर सके, सुखपूर्वक गणण कर ~~सके~~, धारण कर सके, दे सके, प्रश्न

पूछ सके, इन कारणों से गणधरों द्वारा किया गया (सूत्र रचा गया)।

★ तीर्थंकर द्वारा तो अर्थरूप में एक साथ बहुत वचन कहे गए किंतु सभी द्वारा वे संपूर्णतया ग्रहण करने, स्वाध्याय करने, धारण करने के लिए शक्य नहीं हैं। इस पद-वाक्य-प्रकरण-अध्याय-उद्देश-प्राभृत-वस्तु आदि क्रम से व्यवस्थापित और सूत्र में गूंथा हुआ जिनवचन 'इतना ग्रहण किया गया, इतना बाकी' इस प्रकार उत्साह और यत्न से ग्रहण करने के लिए संभव है। अतः गणधर इन कारणों से ही सूत्र में गूंथते हैं।

★ गुणण = परावर्तन। धारणा = अविस्मृति। शिष्यों को देना। संशय होने पर पूछना।

★ 'जीयंति' – इन कारणों से ही यह श्रुतज्ञान जीता है अर्थात् व्यवच्छेद नहीं पाता अथवा
जीयं = जीतं जीतकल्प = गणधरों की यह मर्यादा (कल्प/आचार) है कि उन्हें सूत्र गूंथना पड़ते हैं।

प्र. तीर्थंकर के कहे हुए वचनों को ही क्रम से व्यवस्थापित करने पर सूत्र हो जाए, गणधरों की सूत्र रचना का क्या कारण?
उ. विशिष्ट मति से संपन्न गणधरों के लिए भगवान् शुद्ध अर्थ वाले कुछ अशब्द ही बोलते हैं, पूरी ग्रंथराशि नहीं बोलते। अतः गणधर अन्य लोगों के लिए सूत्र रचते हैं।

अत इसी प्रकार कहते हैं –
गा. 92 अरिहंत अर्थ कहते हैं। गणधर निपुण सूत्र गूंथते हैं। उससे ही शासन के हित के लिए सूत्र प्रवर्तता है।

★ 'निउणं' – निपुण सूत्र = सूक्ष्म अर्थों का प्रतिपादक।
निगुण सूत्र = नियत गुण वाला अर्थात् समस्त गुण वाला।

कहीं पर पाठान्तर 'निउणा'। वहाँ गणधर का विशेषण बनाकर दोनों अर्थ (निपुण-निगुण) करना।

हरिभद्रीय टीका → प्र. अर्थ तो शब्द रूप न होने से अनभिलाप्य है, तो अरिहंत अर्थ कैसे बोलते हैं?
उ. शब्द अर्थ के बोध रूप कार्य का कारण होने उपचार से अर्थ है। अतः अरिहंत

अर्थ को शब्दरूप में ही बोलते हैं और गणधर भी सूत्र शब्दरूप में ही गूंथते हैं।

मलयगीरिय टीका अव. वह सूत्र कहाँ से शुरू होता है, कहाँ खत्म होता है और, कितने परिमाण वाला है और उसका क्या सार है, वह कहते हैं-

गा.93 श्रुतज्ञान साभाधिक की आदि वाला, बिंदुसार तक है। उसका भी सार चरण है। चरण का सार निर्वाण है।

* 'सार' शब्द = अर्थ- फल और प्रधान। यहाँ ज्ञान का फल चारित्र है अथवा ज्ञान से भी चारित्र प्रधान है।
* चरण = संवर रूप क्रिया।
* ज्ञान और क्रिया में प्रधानता की चर्चा →
पू: ज्ञान के अभाव में क्रिया तो मृत होती है तथा 'ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः' में दोनों समुदित होने पर मोक्ष होता है। इसलिए ज्ञान और चरण का समानत्व है। तो ज्ञान का सार चरण कैसे?
उ. 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (1-1)' इसमें यद्यपि समान निर्वाणहेतुत्व कहा गया है तो भी ज्ञान मात्र प्रकाशक रूप में व्यापार करता है। कर्ममल दूर करने का काम चारित्र करता है। अतः निर्वाण की हेतुता दोनों में है किंतु ज्ञान की निर्वाणहेतुता गौण है और चरण की मुख्य।
केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी शैलेशी अवस्था में जब तक योग निरोध की क्रिया न करे तब तक मोक्ष नहीं होता।

* अपि शब्द - ज्ञान के साथ ही सम्यक्त्व का सार भी चारित्र है।
अथवा अपि को बाद वाले वाक्य में जोड़ना -
चरण का सार निर्वाण है। ज्ञान का भी सार निर्वाण है।

अव. संयम की मुख्यता -
गा.94 श्रुतज्ञान में भी वर्तता वह जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करता, जो तप-संयम मय योगों को वहन करने के लिए समर्थ नहीं है।
* अपि शब्द से मत्यादि अन्य ज्ञान भी।

* प्रयोग- न ज्ञानमेव इप्सितार्थसाधकं सत्क्रियाविरहात् स्वदेशप्राप्त्यभिप्रेतगमन-क्रियाशून्यमार्गज्ञज्ञानवत्।

अव. दृष्टांत –

गा. 98-6 जिस प्रकार दक्ष ऐसे निर्यामक वाला जहाज भी हवा बिना समुद्र तैरकर वणिक् को इच्छित भूमि पर नहीं पहुँच सकता, वैसे ज्ञान रूप निर्यामक वाला निपुण ऐसा जीव रूप जहाज भी तप-संयम रूप हवा के बिना सिद्धि रूप वसति को प्राप्त नहीं करता।

अत. औपदेशिक गाथा कहते हैं –

गा. 97 संसार सागर से बाहर आया हुआ जीव! फिर से डूबना मत। बहुत कुछ जानता हुआ जीव भी चरण गुण से रहित डूब जाता है।

★ दृष्टांत – एक तालाब पूरा शैवाल – पेड़ के पत्ते वि. से ढँका हुआ था। अंदर एक कछुआ अनेक जलचर जीवों वि से दुःखी था। एक बार वह घूमते हुए उसने बीच के छिद्र में से शरद् पूनम का चंद्र देखा। उसने सोचा की स्वजनों को भी दिखाऊँ। उन्हें लेकर वह वापस आया तब तक छिद्र ढँक गया था। छिद्र ढँकने से वह अधिक दुःख अनुभवता हो।

→ उपनय → कछुआ – जीव। शैवाल वि. – कर्म पटल। जलचर जीवादि – शरीरादि के दुःख। तालाब – संसार। छिद्र – मनुष्य भव। चंद्र – जिन

→ सार → स्वजनादि के राग से पुनः जिनधर्म प्राप्त करने पर भी पुनः डूबना मत।

★ प्र. कछुआ तो अज्ञानी था इसलिए डूब गया। मगर जीव तो हित-अहित का ज्ञानी है तो कैसे डूबेगा?

उ. यदि चरण गुण से वि-हीन (विविध प्रकार, प्रकर्ष से) हो तो बहुत ज्ञानी भी डूब जाता है।

अथवा निश्चयनय की दृष्टि से यह अज्ञानी ही है क्योंकि ज्ञान वैसे फल चरण से रहित है।

अत. इसी बात का समर्थन करते हैं –

गा. 98 चरण से रहित का बहुत पढ़ा हुआ श्रुत भी क्या करेगा? जिस प्रकार अंध को लाखों करोड़ जलाए हुए दीपक भी कुछ नहीं करते।

गा. 99 जिस प्रकार चक्षु सहित को एक दीप भी प्रकाश करता है, वैसे चरण से युक्त का अल्प भी पढ़ा हुआ श्रुत प्रकाशक होता है।

अव. ऐसा होने पर तो चरण रहित का ज्ञान बिलकुल निरर्थक होगा? उ. हाँ, सही है, निरर्थक ही है –

गा. 100 जिस प्रकार चंदन के भार को वहन करने वाला गधा भार का भागी होता है, चंदन का नहीं। वैसे ही चरण से हीन ज्ञानी ज्ञान का भागी होता है, सुगति

का नहीं।

★ भार का भागी - भार से होने वाले कष्ट का भागी।
चंदन का भागी - चंदन से होने वाली ठंडक का भागी।

★ ज्ञान का भागी - ज्ञान के पठन-पाठन-परावर्तन-चिंतनादि से होने वाले क्लेश का भागी।

अव. शिष्य को एकांत से ज्ञान में अनादर ~~न~~ से और ज्ञानशून्य क्रिया में पक्षपात न हो इसलिए दोनों का अलग-अलग इष्टफल असाधकत्व बताते हैं -

गा.101 क्रिया से ही ज्ञान मृत है, जैसे देखता हुआ लंगड़ा अग्नि से जल गया। क्रिया अज्ञान से मृत है, जैसे दौड़ता हुआ अंधा भी जला।

★ दृष्टांत - एक नगर में आग लगी x 2 अनाथ - एक लंगड़ा, एक अंधा। लंगड़ा आग से लोगों को भागते हुए देखकर भी गमन क्रिया से रहित होने से आती हुई अग्नि से जल गया। अंधा गमन क्रिया से युक्त था किंतु अग्नि को न जानता हुआ अग्नि की दिशा में ही दौड़ा और अग्नि से भरी खाई में गिरकर जला।

पू. इस प्रकार तो ज्ञान-क्रिया मिलने पर भी मोक्ष के साधक नहीं होंगे क्योंकि दोनों में अलग-अलग सामर्थ्य का अभाव है तो समुदित में भी अभाव होगा, रेती में तेल की तरह।

उ. समुदाय में सामर्थ्य प्रत्यक्ष सिद्ध होने से यह दोष नहीं है। eg. ज्ञानक्रिया से कटादि कार्य प्राप्त होते ही हैं।
तथा इन दोनों में निर्वाणसाधक सामर्थ्य का संयोग सर्वथा नहीं है क्योंकि देश-उपकारित्व दिखता है। समुदाय में फल देते हैं अतः देशोपकारित्व सिद्ध है।
वे तो मात्र सहकारसामग्री रहित होने से असाधक हैं।

गा.102 संयोग की सिद्धि से फल कहते हैं। एक पहिए से रथ नहीं चलता। अंधा और पंगु वन में मिलकर नगर में प्रविष्ट हुए।

★ भगवान् तीर्थंकर ज्ञान-क्रिया के संयोग से ही फल मोक्ष कहते हैं।

अव. ज्ञान-क्रिया का सहकारित्व होने पर किस स्वभाव से उपकार करते हैं? शिबिका उठाने वाले की तरह अभिन्न स्वभाव से या गमन क्रिया में आँख और पैर की तरह भिन्न स्वभाव से? उ. भिन्न स्वभाव से।-

गा.103 ज्ञान प्रकाशक है। तप और संयम गुप्तिकरने वाला है। जिनशासन में तीनों के समायोग में मोक्ष कहा गया है।

* कोई बहुत जाले वाला, धूल वि. से भरा हुआ शून्यगृह है। वहाँ कोई साफकर रहना चाहता है। धूल वि. के प्रवेश को रोकने के लिए वह सभी खिड़की वि. को बंद करता है। धूल देखने के लिए दीपक जलाता है। पुरुष कचरे को साफ करता है।
यहाँ जीव = Room गुणशून्य, आस्रव वाला, कर्म से भरा हुआ।
ज्ञान - दीपक की तरह जो कर्म मल को प्रकाशित करता है।
तप - कर्म को साफ करता है।
संयम - नए कर्मों को रोकता है।

* च शब्द - ज्ञानादि का भिन्न-भिन्न उपकार बताने के लिए।

* प्र. ज्ञान-तप-संयम तीनों के योग में ही मोक्ष कहोगे तो 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' इससे सम्यग्दर्शन न होने से विरोध होगा।
उ. ज्ञान के ग्रहण से सम्यग्दर्शन का ग्रहण हो गया है, अन्यथा ज्ञान का अप्रयोग होगा।

अत. पहले कहा गया कि क्षायिक ज्ञान से ही मोक्ष होता है। श्रुतज्ञान तो क्षायोपशमिक है। अतः श्रुत का क्षायोपशमिकत्व कहते हैं - (गा.34 का संबंध)
गा.10 12 ही अंगों का श्रुतज्ञान क्षायोपशमिक भाव में होता है। कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति कषायों के क्षय में होती है, अन्यत्र नहीं।
अपि शब्द - अंगबाह्य श्रुत का भी ग्रहण।
* केवलस्य भावः कैवल्यः = घातिकर्म का वियोग। उस वियोग में ज्ञान कैवल्यज्ञान।
* → 'कैवल्य' पद के ग्रहण के बाद भी 'ज्ञान' पद के ग्रहण से सांख्य मत का खंडन जो पुरुष में ज्ञान नहीं मानता किंतु प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि में ज्ञान मानता है।

प्र. छद्मस्थ वीतराग अवस्था में कषाय न होने पर भी कैवल्य ज्ञान नहीं होता, तो यहाँ कषाय क्षय क्यों लिखा?
उ. कषाय क्षय की प्रधानता बताने के लिए। कषाय क्षय के बाद ज्ञानावरण का नियम क्षय होता है।

प्र. (गा.34) पहले कहा गया कि श्रुत होने पर भी वह जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करता, जो तप-संयम योग शून्य है। इसमें 'तप-संयमयोग शून्य' विशेषण अनर्थक है क्योंकि श्रुत ज्ञान में वर्तते जीव को तप-संयम होने पर भी मोक्ष नहीं होता।
उ. यहाँ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व-श्रुत-चारित्र समुदित होने पर क्षायिक सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्र के कारण हैं। अतः वे परंपरा से मोक्ष के हेतु हैं।

अत. मोक्ष के परंपर कारण श्रुतादि हैं, वह हमने स्वीकारा। किंतु उनका लाभ अथवा अलाभ कैसे होता है, वह कहते हैं- (अलाभ कारण)

गा. 105 आठ प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति में वर्तता जीव ५ सामायिक में से एक भी सामायिक प्राप्त नहीं करता।

* ४ कर्म प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति में वर्तता जीव ५ सामायिक में से एक भी और (अपि शब्द से) मतिज्ञान भी प्राप्त नहीं करता।
पूर्व प्रतिपन्न भी आयुष्यकर्म सिवाय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति में नहीं होता।

* एक बार सम्यक्त्व प्राप्त करने पर जीव सम्यक्त्व वमन के बाद भी पुनः ग्रंथी का उल्लंघन कर उत्कृष्टस्थिति वाली कर्मप्रकृतियाँ नहीं बांधता है। (सिद्धान्तिक मत)
(कार्मग्रंथिक मत) जीव पुनः उत्कृष्ट स्थिति बांधता है।

गा. * आयुष्य की उत्कृष्ट स्थिति में अनुत्तर विमान में उपपात समय पूर्वप्रतिपन्न अवश्य होता है, प्रतिपद्यमान नहीं।
आयुष्य की जघन्यस्थिति क्षुल्लकभव प्रमाण। यह वनस्पति में होती है। उसमें जीव पूर्वप्रतिपन्न नहीं होता, प्रतिपद्यमान भी नहीं होता क्योंकि सास्वादन सम्यक्त्व भी उनमें नहीं होता।

* प्र. ये कर्मप्रकृतियाँ क्या एक साथ ही उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त करती है या एक की उत्कृष्ट स्थिति होने पर अन्य की भी उत्कृष्ट स्थिति होती है या कुछ अन्यथा विचित्रता है?
उ. अन्यथा विचित्रता है। -
मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति होने पर शेष ६ की उत्कृष्ट स्थिति ही होती है, आयुष्य की उत्कृष्ट/मध्यम होती है, जघन्य नहीं।
मोहनीय सिवाय शेष की में से किसी एक की उत्कृष्ट स्थिति होने पर मोहनीय और शेष प्रकृति की उत्कृष्ट या नक्त मध्यम स्थिति, जघन्य नहीं।

अत. सम्यक्त्वादि का लाभ कारण-

गा. 106 ७ प्रकृतियों की स्थिति १ कोड़ाकोड़ी सागरोपम के अंदर कर ५ में से एक सामायिक जीव प्राप्त करता है।

* ७ प्रकृतियों की स्थिति १ कोड़ाकोड़ी सा. के अंदर आने पर जीव अपूर्वकरण नामक करण विशेष से घनराग-द्वेष के परिणाम रूप ग्रंथीभेद करता है। ग्रंथीभेद के बाद सम्यक्त्व अवश्य प्राप्त होता है। ग्रंथिभेद ही अनंतिपात-परिश्रमादि से दुःसाध्य है।

प्र. ग्रंथि भेद या सम्यक्त्व से क्या ? क्योंकि सम्यक्त्वादि गुण रहित जीव ने ही दीर्घ कर्मस्थिति को खपा दिया तो शेष कर्मस्थिति भी गुण रहित ही खपा देगा।

उ. वह जैसे-जैसे आगे बढ़ता है वैसे-वैसे चित्तविघातादि विघ्न भी बहुत बढ़ जाते हैं। अतः गुण प्राप्त करे बिना आगे विशिष्ट फल की प्राप्ति अशक्य नहीं है।

अथवा

उसने बहुत कर्मस्थिति खपा दी है, इससे ही दोष कम होते हुए सम्यक्त्वादि गुण स्वयमेव प्रगट होते हैं; जैसे संपूर्ण कर्मक्षय पर मोक्ष होता है।

★ सम्यक्त्व प्राप्ति की विधि →

३ करण –

1. यथाप्रवृत्त करण – अनादि काल से जिस प्रकार प्रवृत्त है, उसी प्रकार प्रवृत्त यथाप्रवृत्त। नदी घोल न्याय। अनादि काल से जीव के कर्मक्षय का अध्यवसाय विशेष।
2. अपूर्वकरण – जो पूर्व में प्राप्त नहीं हुए ऐसे स्थितिघात-रसघात करने वाला अध्यवसाय।
3. अनिवर्तिकरण – सम्यक्त्व प्राप्ति तक जो पीछे न हटे वह अध्यवसाय।

→ तीनों में उत्तरोत्तर विशुद्धतर अध्यवसाय।

→ ग्रंथि देश तक यथाप्रवृत्त करण। ग्रंथि भेद अपूर्वकरण। सम्यग्दर्शन प्राप्ति के अभिमुख अनिवर्तिकरण।

→ अभव्यों को मात्र यथाप्रवृत्त करण। भव्यों को तीनों करण।

अतः जीव में सामायिक प्राप्ति के दृष्टांत –

गा. 107 १. पल्यक २. गिरिनदी उपल ३. पिपीलिका ४. पुरुष ५. ~~वस्त्रगलित~~ ६. ~~कोद्रव~~ ७. ~~जल~~ ८. ६. ज्वर गृहीत ७. कोद्रव ८. जल ९. वस्त्र। – सामायिक प्राप्ति के दृष्टांत हैं।

1. पल्यक – त्यार देश में धान्य की कोठी। उसमें कोई अल्प डाले और अधिक निकाले तो वह खाली होगा। ऐसे ही जीव अधिक कर्मक्षय करे और बंध कम करे तो सम्यक्त्व प्राप्ति।

प्र. यह दृष्टांत अयुक्त है क्योंकि संसारी जीवों को कर्म का चय-अपचय प्रतिसमय होता है। उसमें असंयत मिथ्यादृष्टि को बहुत चय और अल्प अपचय होता है। तो कर्म खाली होने से सम्यक्त्व कैसे होगा ?

उ. असंयत ज्यादा कर्म बांधता है, वह बहुलता से कहा गया है। सभी असंयत ज्यादा ऐसा ही बांधते हैं, ऐसा नहीं।

प्र. यह कैसे पता चले कि बहुलता से कहा गया ?

उ. रोज 10000 पुरुष रुपये ग्रहण करे और 1 रु. छोड़े तो कुछ दिन में 1 लाख खत्म हो जाएँगे। ऐसे ही यदि सभी असंयत कर्म बांधने लगे तो जीवों द्वारा सभी पुद्गल ग्रहण होने से बंधयोग्य पुद्गल खत्म होंगे। जिससे बंध के अभाव की आपत्ति होगी।

पू. ग्रहण किए हुए पुद्गल असंख्य ~~सम~~ काल बाद अवश्य छूट जाते हैं क्योंकि बंध की उत्कृष्ट स्थिति असंख्यकाल है। वे पुद्गल छोड़ते हुए जीवों से भी अनंतगुणा है। तो पुद्गल खत्म कैसे होंगे?

उ. गृहीत पुद्गल तो कुछ कुछ काल के बाद छूटते हैं। ग्रहण तो हर समय जीवों से अनंतगुणा पुद्गलों का हो रहा है। अतः पुद्गल खत्म हो जाएँगे।

पू. आगम में ऐसा कहा है 'जाव णं जीवे एए.... ताव सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा, नो चेव णं अबंधए सिया' तथा संसार भी प्रतिसमय कर्मबंधक जीवों के आकने रूप है। अतः आगम प्रमाण से और संसार में प्रत्यक्ष दिखने से ऐसा कभी नहीं होगा कि पुद्गल खत्म हो जाए।

उ. यदि आगम प्रमाण मानो तो सम्यक्त्वादि का प्रतिपादक भी आगम है। तथा सम्यक्त्वादि गुणों का स्वसंवेदन से दिखने से कर्म निर्जरा सिद्ध ही है।
तो ऐसे आगम प्रमाण और प्रत्यक्ष दिखने से पूर्वोक्त सूत्र बहुलता विषयक है, वह भी सिद्ध है।

2. गिरि नदी के उपल – पर्वत की नदी के पत्थर परस्पर घिसाने से उपयोग बिना ही विचित्र आकृति वाले हो जाते हैं वैसे ही यथाप्रवृत्तकरण से जीव को ग्रंथिदेश की प्राप्ति होती है।

3 पिपीलिका – कोई जमीन पर स्वभाव से चलती है। कोई स्वभाव से स्थाणु पर चढ़ती है। कोई पंख वाली वहाँ से उड़ती है। कोई स्थाणु के ऊपर रहती है। कोई वहाँ से नीचे उतरती है। यहाँ भी जमीन पर गमन की तरह यथाप्रवृत्त करण है। स्थाणु आरोहण – अपूर्वकरण। उड़ना – अनिवृत्तिकरण। स्थाणु का ऊपरी भाग – ग्रंथिदेश।

4. पुरुष – 1 पुरुष x महानगर जाने के लिए x महाअटवी पहुँचे x भय से जल्दी चले x दो तस्कर हाथ में खुली तलवार लेकर आए x एक पीछे वापस भागा x एक ग्रहण किया गया x एक आगे निकलकर इष्ट नगर पहुँचा।
अटवी – संसार। पुरुष – संसारी। मार्ग – कर्मस्थिति। भयस्थान – ग्रंथिदेश। तस्कर – राग-द्वेष पीछे जाने वाला – ग्रंथिदेश आकर अनिष्ट परिणाम वाला होकर पुनः गया। चोर द्वारा पकड़ा गया – ग्रंथिदेश में रहे को प्रबल राग-द्वेष का उदय। इष्ट नगर प्राप्त – सम्यग्दर्शन प्राप्त।

5 ६ ~~पद्य~~ ६. पद्य –

प्र. ग्रंथिभेद करके सम्यग्दर्शन उपदेश से प्राप्त करता है या अनुपदेश से ?

उ. दोनों प्रकार से। जैसे कोई पुरुष उपदेश बिना स्वयं ही मार्ग से भ्रष्ट होने पर पुनः मार्ग में आ जाए। कोई उपदेश से आए।

6. ज्वर – किसी का स्वयमेव ठीक होता है। किसी का औषध से। किसी का नहीं होता ऐसे ही मिथ्यादर्शन रूप ज्वर।

7. कोद्रव – कुछ कोद्रवों का मदन भाव कालान्तर में स्वयं निकल जाता है। कितने का गोबरादि से। कितने का नहीं निकलता। वैसे मिथ्यादर्शन भी। गोबरादि – उपदेश से।

8. जल – त्रिपुंज मलिन, अर्द्धशुद्ध, शुद्ध। ऐसे ही जीव भी मिथ्यात्व मोहनीय को अपूर्वकरण से त्रिभाग करता है।

9. वस्त्र भी इसी प्रकार त्रिपुंज।

★ किन भावों की प्राप्ति कितनी स्थिति का क्षय होने पर –

	भाव	स्थिति क्षय
1.	सम्यक्त्व	69 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
2.	देशविरति	पल्योपमपृथक्त्व
3.	सर्वविरति	संख्य सागरोपम
4.	उपशम श्रेणि	"
5.	क्षपक श्रेणि	"

अब. जिन कषायों के उदय से सामायिक की प्राप्ति नहीं होती, उनके उपाय कहा गया (गा. 104) कि कैवल्यज्ञान कषाय के क्षय से होता है, उन कषायों का वर्णन करते हैं।

गा. 108 प्रथम संयोजनाकषायों के उदय में ~~भव्य~~ भवसिद्धिक जीव भी अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करता।

★ प्रथम – अनंतानुबंधी कषाय।

प्र. ये प्रथम क्यों हैं ?

उ. सम्यक्त्व नामक प्रथम गुण का घात करने से अथवा क्षपण में सबसे पहले खपाने से।

★ संयोजनाकषाय – कर्मणा संसारेण वा सह संयोजयन्ति जीवं इति संयोजनाः। = जो जीव को कर्म या संसार से जोड़े।

1. कषन्ति-परस्परं हिंसन्ति प्राणिनोऽस्मिन् इति कषः-संसारः कर्म वा। तस्य आयः-लाभः येषां ते कषायाः।
2. कषं-संसारं आययन्ति गमयन्ति इति कषायाः।

★ इन अनंतानुबंधी कषाय के उदय में उसी भव में सिद्ध होने वाले जीव भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करते तो अल्पसंसारी अथवा अभव्य तो क्या?

अव. देशविरति के आवरण रूप कषाय-
गा.109 अप्रत्याख्यान नामक द्वितीय कषाय के उदय में सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, पर विरताविरति नहीं होती।

★ न विद्यते देशतः सर्वतो वा प्रत्याख्यानं येषु उदयप्राप्तेषु तेऽप्रत्याख्यानाः।

अव. सर्वविरति के आवरक कषाय-
गा.110 प्रत्याख्यानावरण नामक तृतीय कषाय के उदय में देश-एकदेश विरति प्राप्त करते हैं, चारित्र नहीं।

★ ~~प्रत्याख्यान~~ प्रत्याख्यानं आवृण्वन्ति इति ~~प्रत्या~~ प्रत्याख्यानावरण।
प्र. अप्रत्याख्यान के उदय में प्रत्याख्यान नहीं है। यहाँ भी आवरणशब्द से प्रत्याख्यान का निषेध ही है।
उ. वहाँ नञ् सर्वनिषेध में था। यहाँ आवरण शब्द में आङ् मर्यादा या ईषद् अर्थ में है।

★ देश-स्थूलप्राणातिपातादि। एकदेश-दृश्यवनस्पतिकायादि का अतिपात। दोनों की विरति - देशैकदेशविरति।

अव. मूलगुण और यथाख्यात चारित्र के आवरक कषाय-
गा.111 मूलगुणघाती कषायों के उदय में मूलगुणों की प्राप्ति नहीं होती। संज्वलन के उदय में यथाख्यात चारित्र प्राप्त नहीं होता।

★ मूलगुण- महाव्रत और अणुव्रत।
मूलगुणघाती- अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानावरण 12 कषाय के उदय में मूलगुण प्राप्त नहीं होते।

★ सम्- ईषत्परीषहादिसम्पाते चारित्रिणं अपि ज्वलयन्ति इति संज्वलनाः कषायाः।

★ संज्वलन कषाय मात्र यथाख्यात चारित्र का ही उपघात नहीं करते किंतु शेष चारित्र के देश का भी घात करते हैं क्योंकि इनके उदय से ही शेष चारित्र में अतिचार लगते हैं।

अत. ऊपर्युक्त बात को कहते हैं -

गा.112 सभी अतिचार संज्वलन के उदय से होते हैं। मूलच्छेद्य दोष 12 कषायों के उदय से होता है।

★ अतिचार - ~~प्रमत्त प्रायश्चित्तादि~~ आलोचन से लेकर छेद प्रायश्चित्त तक जिनकी शुद्धि हो।

★ मूलच्छेद्य - 8वें मूल प्रायश्चित्त से जिसकी शुद्धि हो।

गा. 113 12 कषायों के क्षय या उपशम में योगों से जो चारित्र प्राप्त होता है, उसके 5 भेद होते हैं।

गा. 114-5 प्रथम सामायिक, दूसरा छेदोपस्थापन, 3. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय। इसके बाद यथाख्यात चारित्र जो जीतलोक में ख्यात है, जिसे पालनकर सुनिहित अजरामर स्थान जाते हैं।

(सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं ... 2 गाथा नवतत्त्व प्रकरण)

5 चारित्रों का वर्णन पंचवस्तु, पंचाशकादि अन्य ग्रंथों की तरह ही।

परिहार विशुद्धि - पंचवस्तु में 1400 - 1500 गाथा भाषांतर, 20 द्वार।

★ प्रथम 3 चारित्र उपशम, क्षय या क्षयोपशम से प्राप्त होते हैं।

अंतिम 2 उपशम या क्षय से।

अत. सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात चारित्र उपशम या क्षय से होता है। अत. उपशम का क्रम बताते हैं -

गा.116 अनंतानुबंधी-दर्शनत्रिक → नपुं → स्त्री → पुंवेद → हास्यषट्क → पुंवेद → 2-2 कषाय एकांतरे सदृश को सदृश के साथ उपशमाता है।

★ उपशम श्रेणि में उपशम का क्रम तत्त्वार्थसूत्र की सिद्धसेनीय टीका से उद्धृत टिप्पणी में देखना (9-18)। अथवा Fig.No.142 में क्षपकश्रेणि का क्रम (कुछ फेरफार)।

विशेष अंत में संज्वलन लोभ के 3 टुकड़े कर 2 का उपशम

Last टुकड़े के संख्यात भाग

↓

Last के असंख्य भाग

* यहाँ की एक विशेषता Pg.No. 145 पर

* चर्चा –

प्र. उपशमश्रेणि का प्रारंभक अप्रमत्तसंयत 12 कषाय और दर्शन त्रिक के उपशम से होता है। तो यहाँ पुनः उन कषाय और दर्शनमोह का उपशम क्यों कहा?

उ. पूर्व में उनका क्षयोपशम होता है, उपशम नहीं।

प्र. क्षयोपशम में अनुदित कर्म का उपशम आ ही जाता है।

उ. क्षयोपशम में प्रदेशोदय रहता है, उपशम में प्रदेशोदय नहीं होता।

प्र. क्षयोपशम होने पर प्रदेशोदय से सम्यक्त्वादिगुणों का विघात क्यों नहीं होता?

उ. प्रदेशोदय मंदरस वाला होने से। e.g. मत्यादिज्ञानावरण श्रुतोदय है। श्रुतोदय विपाकोदय की अपेक्षा से होता है। चतुर्ज्ञानी ऐसे गौतमादि को मत्यादिज्ञानावरण भी विघात करने वाला नहीं होता। क्योंकि वहाँ विपाकोदय मंदरस वाला होता है।
जब मंदरस वाला विपाकोदय भी गुण का घात नहीं करता तो प्रदेशोदय तो गुणघात करने के लिए कभी समर्थ नहीं होता।

गा. 117 लोभाणु का वेदन करता हुआ जो उपशामक या क्षपक है, वह यथाख्यात से कुछ न्यून सूक्ष्मसंपराय होता है।

* ~~लोभ~~ संज्वलन लोभ के अंतिम संख्यातवें खंड के असंख्य टुकड़े कर उनका उपशामक या क्षपक अंतर्मुहूर्त तक सूक्ष्मसंपराय होता है।

* यदि बद्धायु वाला उपशमश्रेणि में या उपशांतमोह (11वें गुणठाणे में) काल करता है ~~अब~~ तो अवश्य अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है।
यदि बद्धायु श्रेणि से उतरकर काल करता है तो कहीं भी जा सकता है।
~~यदि~~ भवबद्धायु तो श्रेणि चढ़कर नियमा उतरता है, श्रेणि में काल नहीं करता।

अव. कषाय के सामर्थ्य को कहते हैं –

गा. 118 गुणों से महान् उपशमक द्वारा उपशांत किए गए कषाय तीर्थंकर के समान चारित्र वाले को भी गिराते हैं तो शेष सराग चारित्र वाले को तो क्या?

* उपशमश्रेणि से गिरा हुआ उपशमक उत्कृष्ट से देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्त संसार घूमते हैं। जघन्य से एक भव क्योंकि उसी भव में वह मोक्ष में नहीं जाता।

अव. इसलिए जीव को उपदेश देते हैं –

गा. 119 उपशांतकषाय पुनः अनंत प्रतिपात आपन्न करता है अतः तुम्हारे द्वारा थोड़ा भी

* इसकी एक विशेषता Pg. No. 154 पर हरिभद्रीय टीका और टिप्पणक में।

शेष कषाय पर विश्वास करना योग्य नहीं है।

गा. 120 थोड़ा ऋण, थोड़ा व्रण, थोड़ी अग्नि, थोड़ा कषाय पर भी तुम्हारे द्वारा विश्वास करना योग्य नहीं है क्योंकि इनका थोड़ा भी बहुत होता है।

अब क्षपक श्रेणि का क्रम –

गा. 121 अनंतानुबंधी → मिथ्यात्व → मिश्र → सम्यक्त्व मोह → नपुंसक वेद → स्त्री वेद → हास्यषट्क → पुंवेद → संज्वलन क्रोधादि

गा. 122-3 16 प्रकृति के नाम। (नाम तो 17 हैं किंतु संख्या 16 ही लिखी है)

★ क्षपक श्रेणि के प्रारंभ →

1. अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत या प्रमत्त संयत – धर्मध्यान से।
2. अप्रमत्त संयत – शुक्लध्यान से।

★ क्रम → (तत्त्वार्थसूत्र 9-18 टीका से कुछ अंतर और विशेष है)

4 अनंतानुबंधि
मिथ्यात्व मोहनीय
मिश्र मोहनीय
सम्यक्त्व मोहनीय — 8वां गुणस्थान

8 अप्रत्या. + प्रत्या. कषाय का क्षय प्रारंभ
16 प्रकृति
8 कषाय के शेष भाग
अनुदित वेद (i)
हास्य षट्क
उदित वेद (ii) — 9वां गुणस्थान
सं. क्रोध
सं. मान
सं. माया
सं. लोभ के संख्य टुकड़े
सं. लोभ के अंतिम टुकड़े के असंख्य भाग — 10वां गुणस्थान
निद्रा-द्विचरमा + 5 ज्ञान + 4 दर्शनावरण + 5 अंतराय (iii) — 12वां गुणस्थान
केवलज्ञान उत्पत्ति — 13वां गुणस्थान

★ 1. यदि बद्धायु है तो 4 अनंतानुबंधी के क्षय के बाद मृत्यु हो सकती है। यदि वहाँ पुनः मिथ्यात्व मोहनीय का उदय हो जाएगा तो अनंतानुबंधी कषाय पुनः बांधेगा।

2. यदि बद्धायु है दर्शन सप्तक के क्षय के बाद मरे तो अवश्य देवलोक में जाएगा (यदि

शुभ परिणामी हो तो)

3. बद्धायु, दर्शन सप्तक के क्षय बाद यदि अशुभ परिणामी हो तो कोई भी गति में जा सकता है।

4. बद्धायु यदि दर्शन सप्तक के क्षय बाद यदि मृत्यु न हो तो भी वह वहीं अटक जाता है, चारित्रमोह क्षय के लिए उपक्रम नहीं करता।

5. यदि अबद्धायु है तो दर्शन सप्तक के क्षय बाद तुरंत चारित्र मोह के क्षय के लिए यत्न करता है।

(i) अनुदित वेद – पहले अन्यतर खपाना, फिर अन्य खपाना। eg. यदि पुरुष हो तो पहले नपुंसक वेद फिर स्त्रीवेद।

(ii) उदित वेद के 3 टुकड़े कर यहाँ साथ खपाए फिर तीसरा सं. क्रोध में डालकर खपाएगा। सं. कषाय में भी यही क्रम समझना।

(iii) क्षीणमोह होकर अनाभोग से होने वाले करण से विश्राम करता है। द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला खपाता है। चरम समय में 14 प्रकृति। उसके अनंतर समय में थानि 13वें गुणठाणे के पहले समय में केवलज्ञानोत्पत्ति।

★ अन्य मत – द्विचरम समय में निद्रा-प्रचला के साथ देवगति-देवानुपूर्वी, वैक्रियद्विक, 6 संहनन (प्रथम सिवाय), 6 संस्थान (प्रथम सिवाय), आहारक द्विक, तीर्थंकर नाम (यदि तीर्थंकर न हो तो)।
इस मत से मूल निर्युक्ति में 124-6 गाथा (3) है Extra है वीसमिऊण इत्यादि। किंतु यह मत अयुक्त है क्योंकि चूर्णिकार, भाष्यकार और सभी कर्मग्रंथकारों को असंमत है। चूर्णि और भाष्य में ये गाथाएँ न होने से ये गाथाएँ मूल निर्युक्ति में नहीं है, किंतु प्रवाह से आ गई है। मात्र वृत्तिकार हरिभद्रसूरि म. ने किसी अभिप्राय से लिखी है।

गा. 124 संपूर्ण लोक-अलोक को सभी ओर से सभी द्रव्यों को देखते हुए भूत, भविष्य या वर्तमान कोई वस्तु व ऐसी नहीं है जो वे नहीं देखते।

★ जो गा. 89 में कहा 'तप-नियम-ज्ञान वृक्ष पर आरूढ़ केवली' इस प्रकार यहाँ केवली का स्वरूप कहा।
इससे निर्युक्ति के उत्थान का प्रसंग कहा।

अब प्रासंगिक कहकर शेष द्वारों का संग्रह करते हैं-

गा. 125 जिनवचनोत्पत्ति, प्रवचन एकार्थिक, और विभाग। द्वार विधि, नयविधि, व्याख्यानविधि

और अनुयोग।

★ द्वार विधि- उद्देश-निर्देशादि द्वार। यह द्वारविधी उपोद्घात कहा जाता है।
नयविधि- उपक्रमादि ५ मूल अनुयोग के द्वारा में से पथा द्वार।
व्याख्यानविधि- शिष्य और आचार्य की परीक्षा विधि।
अनुयोग - सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति और सूत्रानुगम।

→ यहाँ इतने द्वार कहना बाकी है।

★ इन द्वारों में चालना करते हैं→

पू. पथा अनुयोगद्वार नयविधी को करुकर पुनः तीसरा अनुयोग द्वार कहने का क्या कारण
उ. नय और अनुगम का सहचरभाव दिखाने के लिए। नय और अनुगम प्रत्येकसूत्र में एक साथ चलते हैं। जिस सूत्र में नय नहीं होगा तो अनुगम का भी अभाव होगा।

पू. तो दोनों द्वार का न्यास भी साथ में करना चाहिए। ५ अनुयोग द्वार में नय को अंत में क्यों रखा?
उ. क्योंकि दोनों को एक साथ कहना अशक्य है। (मूलटीका का पाठ)

पू. शास्त्र ५ अनुयोगद्वारात्मक है। तो ५ अनुयोग द्वार से अतिरिक्त व्याख्यान विधि का न्यास निरर्थक है।
उ. वह व्याख्या का अंग होने से अनुगम का अंग है। और अनुगम का अंग होने से निरर्थक नहीं है।

→ पू. जिनवचन की उत्पत्ति का द्वार निर्युक्ति के उत्थान के प्रसंग से कहा गया।

अब प्रवचन के एकार्थक और उनके विभाग को कहते हैं-
गा. 126 एकार्थक ३ ही हैं- प्रवचन, सूत्र और अर्थ। प्रत्येक के बारे में ५-५ एकार्थक हैं।

पू. सूत्र-अर्थ की प्रवचन के साथ एकार्थता युक्त है किंतु सूत्र-अर्थ तो परस्पर भिन्न है। सूत्र व्याख्येय है, अर्थ व्याख्यान है। अथवा
तीनों की भिन्नता युक्ति से ही प्राप्त होती है। क्योंकि तीनों के एकार्थक अलग हैं। अन्यथा तीनों की एकार्थता होने पर अलग-अलग एकार्थक कहना अयुक्त है।
उ. मुकुल और विकसितपद्म में पर्याय भेद होने पर भी सामान्य से कमलत्व का अभेद है। वृंत, संकुचित मुकुल के एकार्थक हैं। विकच, फुल्ल, विबुद्ध विकसित के एकार्थक हैं। इसी प्रकार प्रवचन-सूत्र-अर्थ का एकार्थक विभाग अविरुद्ध है।

प्र. द्वारगाथा में जो 'प्रवचन के एकार्थक' कहा वह गलत है, सूत्र-अर्थ के भी एकार्थक कहने से।

उ. सूत्र-अर्थ में भी सामान्य से प्रवचनत्व है ही। अतः गलत नहीं है।

प्र. तो 'विभाग' नामक अलग द्वार का कथन अनर्थक है।

उ. सामान्य से प्रवचन के ११ एकार्थक हैं, ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि विशेष विषयक पर्यायवाची का सामान्य विषयक पर्यायवाची नहीं कहते। जैसे- आम के पेड़ के पर्यायवाची चूत, सहकारादि वृक्षादि शब्द के पर्यायवाची नहीं कहे जाते। इसलिए सूत्र-अर्थ के अलग-अलग पर्यायवाची कहे।

* [अनुसंधान Pg. No. 141 पर]

→ उपशम श्रेणि वाला जीव उसी भव में मोक्ष प्राप्त नहीं करता।
यह विशेषावश्यक भाष्य (गा. 1308) के आधार पर टीकाकार मलयगिरि म. ने लिखा है। भाष्य की उक्त गाथा की टीका में मलधारि हेमचंद्र सूरि म. ने लिखा है कि जीव एक भव में एक ही श्रेणि चढ़ता है अतः उपशम श्रेणि चढ़ने के बाद वह क्षपक श्रेणि नहीं चढ़ता, फलतः मोक्ष नहीं होता। यह सिद्धान्त मत है।

चूर्णि → चूर्णिकार के मत में एक ही जीव एक भव में दो उपशम श्रेणि भी कर सकता है- 'एकभवग्गहणे दो उवसमसेढीओ होज्जत्ति'। फिर चूर्णिकार श्रुतपरंपरा से आया हुआ पाठ देते हैं- उवसमणे मोहस्स तु एगम्मि भवे हवेज्ज दो वारे। यह कार्मग्रंथ का मत है।

मलयगिरीय टीका अनु. → प्रवचन और सूत्र के ६-६ एकार्थक-
गा. 127 श्रुतधर्म, तीर्थ, मार्ग, प्रावचन, प्रवचन एकार्थ हैं। सूत्र, तन्त्र, ग्रंथ, पाठ, शास्त्र एकार्थक हैं।

* श्रुतधर्म- श्रुत का स्वभाव ⇒ बोध।
तीर्थ- तीर्यते संसारसमुद्रः अनेन ⇒ संघ।
मार्ग- मृग्यतेऽनेन ⇒ कल्याण की खोज।
प्रावचन- प्रगतं अभिविधिना जीवादिपदार्थेषु वचनं।
प्रवचन- प्रकृष्टं वचनं।

* सूत्र- सूचनात्
~~तन्यते~~ तन्त्र- तन्यतेऽनेन अस्माद् अस्मिन् वा अर्थः।
ग्रंथ- ग्रथ्यतेऽनेन अस्माद् अस्मिन् वा अर्थः।

पाठ- पठनं अथवा पठ्यते स्म अथवा पठ्यते-व्यक्तं क्रियतेऽनेन अस्मादस्मिन् अभिधेयं
शास्त्र- शिष्यतेऽनेन अस्माद् अस्मिन् स्वयं आत्मा वा।

→ एकार्थक- यह शब्द दो बार सामान्य-विशेष का कथंचित् भेद कहने के लिए।

अ. अर्थ के अनेकार्थक - व्याख्यान, अनुयोग इत्यादि। अनुयोग के एकार्थक -
गा.128 अनुयोग, नियोग, भाषा, विभाषा, वार्तिक, ये 5 अनुयोग के एकार्थक है।
★ अनुयोग- सूत्र का अर्थ के साथ अनुकूल योजन।
नियोग- नियत, निश्चित योग।
भाषा - व्यक्तीकरण।
विभाषा- पर्यायवाची शब्दों से स्वरूप कथन।
वार्तिक- सभी पर्यायों का कथन।

अ. यह गाथा का समुदायार्थ है, अवयवार्थ प्रतिद्वार करेंगे। यद्यपि वचन के एकार्थक कहने का अवसर है, फिर भी अनुयोगद्वार के एकार्थक कहते हैं।
9. अनुयोगद्वार के एकार्थक पहले क्यों कहते हैं?
I. क्योंकि सूत्र की अपेक्षा अर्थ प्रधान है, यह बताने के लिए।
अनुयोग के एकार्थक में अनुयोग नामक प्रथम द्वार-
गा.129 नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, वचन, भाव अनुयोग के ये 7 निक्षेप हैं।
★ नाम अनुयोग- ①किसी जीवादि का 'अनुयोग' नाम, अथवा ②नाम का अनुयोग यानि नाम की व्याख्या अथवा ③नाम के अनुरूप योग।
★ स्थापना अनुयोग- ① सद्भाव-निक्षेपादि रूप - जो अनुयोग करते हुए स्थापी जाए।
② स्थापना का अनुयोग यानि व्याख्या
③ स्थापना के अनुकूल योग-संबंध - जिसकी स्थापना की जाती हुई देश-कालादि से युक्त लगे, वह।
★ द्रव्य अनुयोग- आगम से, नोआगम से। नोआगम से ज्ञशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य का, द्रव्यों का, द्रव्य से, द्रव्यों से, द्रव्य में, द्रव्यों में अनुयोग। eg-
1. द्रव्यस्य अनुयोग:- 2 प. जीव का, अजीव का। प्रत्येक द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से 4-4 प. का
जीव द्रव्य अनुयोग- द्रव्य से एक जीव, क्षेत्र असंख्य प्रदेश, काल- अनादि-अनंत, भाव- ज्ञानादि गुण अजीव द्रव्य का अनुयोग- द्रव्य एक परमाणु, क्षेत्र एक प्रदेश, काल- जघन्य से 1 समय/उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, भाव एक रस-गंध-वर्ण/2 स्पर्श।

2. द्रव्याणां अनुयोग:- 2 प. जीव का, अजीव का। प्रत्येक द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से 4 प.
जीवों का अनुयोग- द्रव्य अनंत जीव क्षेत्र सर्व लोक, काल अनादि-अनंत, भाव अनंत पर्याय

अजीवों का अनुयोग - द्रव्य अनंतपरमाणु आदि, क्षेत्र - लोक, काल सादि सांत या अनादि अनंत, भाव अनंत पर्याय।

3. द्रव्य से अनुयोग - एक खीका से या एक अक्ष से या एक प्रक्षेप से अनुयोग।
4. द्रव्यैः अनुयोग - बहुत अक्षादि से।

5. द्रव्ये अनुयोग - एक फलकादि पर बैठे व्यक्ति द्वारा अनुयोग।
6. द्रव्येषु अनुयोग - अनेक फलकादि " "।

★ क्षेत्र अनुयोग - 1. क्षेत्रस्य अनुयोग - जम्बूद्वीप पन्नत्ति में जंबूद्वीप का अनुयोग।
2. क्षेत्राणां अनुयोग - बहुत द्वीप-सागरों का अनुयोग द्वीपसागरपन्नत्ति।
3. क्षेत्रेण अनुयोग - पृथ्वीकायादि जीवों की संख्या के व्याख्यान में जंबूद्वीप प्रमाण पृथक करके इस प्रकार का व्याख्यान। जंबूद्वीप प्रमाण पाला बनाकर भरने और खाली करने से जब सूक्ष्म-बादर सभी पृथ्वीकाय के जीव मापे तो असंख्य लोक प्रमाण होते हैं।
4. क्षेत्रैः अनुयोग - बहुत द्वीप-सागर प्रमाण प्रस्थक कर पृथ्वीजीव मापे तो असंख्य लोक होंगे।
5. क्षेत्रे अनुयोग - तिर्च्छा लोक या भरतादि एक क्षेत्र में।
6. क्षेत्रेषु " - $2\frac{1}{2}$ द्वीप में।

★ कालअनुयोग - 1. कालस्य - समय की अनुयोग द्वारों में संख्या व प्ररूपणा।
2. कालानां - बहुत समय-आवलिकादि की प्ररूपणा।
3. ~~कालेः = कालेन - बादर अप्तेजस्काय के वैक्रिय शरीर असंख्यात पल्योपम के असंख्यभाग मात्र में नष्ट होता है।~~
3. कालेन - असंख्यात पल्योपम के असंख्यात वें भाग में एक समय प्रमाण बादर वायुकायों के वैक्रिय शरीर हैं।
4. कालैः - विवक्षित एक समय में उत्पन्न त्रसकायजीव की संख्या असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के समय प्रमाण है।
5. काले - दूसरी पोरसी में अनुयोग होता है।
6. कालेषु - अवसर्पिणी में 3-4-5 आरे में, उत्सर्पिणी में 2-3-4 में अनुयोग होता है।

★ वचन अनुयोग - 1. वचनस्य - एकवचन, द्विवचन अथवा एक बहुवचन का प्रयोग।
2. वचनानां - बहुत सारे एकवचन, द्विवचन, बहुवचन के प्रयोग।
अथवा 16 वचनों का अनुयोग।
★ → 16 वचन = 3 लिंग + 3 वचन + 3 काल + परोक्ष + प्रत्यक्ष + उपनय - अपनय चतुर्भंगी के 4 + 1 अध्यात्मवचन।

परोक्ष = 'वह' इत्यादि। प्रत्यक्ष = 'यह' इत्यादि।

उपनय = स्तुति eg. रूपवती स्त्री। अपनय = निंदा eg. कुरूपा स्त्री। इनकी चतुर्भंगी -

	उपनय	अपनय	eg.
2. ⓐ	✓	✓	रूपवती किंतु कुशीला स्त्री
3. ⓑ	✓	×	रूपवती / सुशीला स्त्री
4. ⓒ	×	✓	कुरूपा / कुशीला स्त्री
ⓓ	उपनयोपनय वचन		कुरूपा किंतु सुशीला स्त्री

अध्यात्म वचन = दूसरे को जाने की बुद्धि से मन में अन्य सोचकर बाहर अन्य बोलने की इच्छा वाली अचानक मन की सही बात बोल दे।

3. वचनेन - साधु आदि द्वारा प्रार्थना करने पर एक वचन से आचार्य अनुयोग करे।
4. वचनैः - बहुत वचनों से अनुयोग करे।
5. वचने - एक क्षायोपशमिक वचन में अनुयोग।
6. वचनेषु - बहुत क्षायोपशमिक वचनों में अनुयोग।

★ भावानुयोग - आगम से ज्ञाता + उपयुक्त।
नोआगम से 6 प्र -

1. ~~भव~~ भावस्य - औदयिकादि किसी एक भाव का व्याख्यान।
2. भावानां - बहुत भावों का व्याख्यान।
3. भावेन - संग्रहादि 5 अध्यवसाय में से किसी एक अध्यवसाय से अनुयोग।
4. भावैः - 2, 3, 4 या 5 अध्यवसाय से अनुयोग करना।

→ 5 संग्रहादि अध्यवसाय - (स्थानांग सूत्र)

ⓐ संग्रहार्थता - 'ये शिष्य सूत्र-अर्थ के संग्राहक कैसे हो?'
ⓑ उपग्रहार्थता - 'ये गीतार्थ होकर वस्त्रादि ग्रहणकर गच्छ के उपकारी कैसे हो?'
ⓒ कर्मनिर्जरार्थता - 'मुझे बोलते हुए कर्म निर्जरा विपुल हो रही है'
ⓓ श्रुतपर्यवजात - 'मेरी भी श्रुतपर्याय राशि बढ़ रही है'
ⓔ अव्यवच्छित्ति - 'शिष्य परंपरा से श्रुत का विच्छेद न हो'

5. भावे - क्षायोपशमिक भाव में व्याख्या करना।
6. भावेषु - क्षायोपशमिक भाव एक रूप होने से भावेषु अनुयोग नहीं होता।
अथवा अलग-अलग ग्रंथ में क्षयोपशम अलग होने से बहुत क्षायोपशमिक भावों में व्याख्या करना।

★ किस अनुयोग का किसमें समावेश →
→ द्रव्य अनुयोग में भाव, काल, क्षेत्र का समावेश क्योंकि द्रव्य पर्याय रहित नहीं होता और द्रव्य-पर्याय क्षेत्र-काल बिना नहीं होते।
→ क्षेत्र अनुयोग में द्रव्यकालभाव की प्ररूपणा - यदि क्षेत्र लोक रूप हो तो द्रव्य धर्मादि, काल

वर्तनादि लक्षणवाला, भाव गुरुलघु/अगुरुलघु। यदि अलोक रूप क्षेत्र लो तो अन्य द्रव्य नहीं है, काल वर्तनादि रूप नहीं है, भाव अगुरुलघु पर्याय।

→ कालानुयोग में द्रव्यक्षेत्रभाव की भजना → काल २५ वर्तनादि रूप, समयावलिकादि। यदि वर्तना रूप विवक्षा करो तो संपूर्ण द्रव्य-क्षेत्र-भाव व्यापी। यदि समयादि रूप लो तो 2½ द्वीप में ही।

* [अनुसंधान Pg. No. 142 पर]

हरि. टीका → 16 प्रकृति की जगह यहाँ 17 प्रकृति का क्षय होता है। (हरिभद्रीय टीका)

टिप्पणक → कर्मग्रंथों में यहाँ 16 प्रकृति ही खपाने का स्वीकृत है क्योंकि उनके मत में अपर्याप्त नाम कर्म यहाँ नहीं खपाते किंतु अयोगी गुणस्थान में 72 प्रकृति के साथ खपाते हैं।

अब. अनुयोग कहा गया। इससे विपरीत अननुयोग होता है। अब अनुयोग और अननुयोग के प्रतिपादक दृष्टांत कहते हैं-

गा. 130 वत्सगाय, कुब्जा, स्त्यानर्द्धि, बधिर का उत्कर्षण, ग्रामेयक ~~स्वप्न~~ उदाहरण जानना। भाव अनुयोग-अननुयोग में 7 दृष्टांत कहेंगे।

* जिस प्रकार अनुयोग नामादि 7 प्र. से कहा, वैसे ही अननुयोग भी 7 प्र. का।

* नाम-स्थापना अनुयोग सुगम होने से दृष्टांत नहीं दिए।

* द्रव्य अनुयोग-अननुयोग में वत्सगो दृष्टांत → यदि खोटा सफेद गाय के बछड़े को काली या काली गाय के बछड़े को सफेद गाय का स्तन पान कराए तो अननुयोग, उसे दूध की अप्राप्ति। यदि उसबछड़े की गाय के पास ही स्तनपान कराए तो अनुयोग।
इसी प्रकार यदि जीव लक्षण से अजीव को या अजीवलक्षण से जीव रूपे तो अननुयोग। इससे अर्थ विपरीत होने से शिष्य चारित्र भी उल्टा पाले।

* क्षेत्र अनुयोग-अननुयोग में कुब्जा का दृष्टांत → प्रतिष्ठान × शालिवाहन × प्रतिवर्ष नरवाहन राजा की भृगुकच्छ नगर को रोधता है × वर्षाकाल में वापस × एकरा रोक कर रहे उस राजा ने (कपदानी की जगह) सभामंडप में धूंका × कुब्जा दासी देखकर समझ गई कि राजा जाने की इच्छा वाला है × कुब्जा ने यानशालक को कहा × उसने सुबह वाहन साफ करे × यान देखकर सैन्य भी तैयार हुआ × राजा ने सोचा-धूल उड़ने के कारण मैं अकेला जाऊँगा किंतु सैन्य को चलते हुए देखा × राजा के पूछने पर परंपरा से दासी का पता चला × राजा ने पूछा-तूने कैसे जाना? × बोली-धूंकने से।

क्षेत्र को सपरिभोग्य जानती अनुयोग, यदि गलत जाने तो अननुयोग।

★ काल अनुयोग- अननुयोग में स्वाध्याय दृष्टांत → एक साधु स्वाध्याय करता हुआ असज्झाय को जानता नहीं है × सम्यग्दृष्टि देवी मिथ्यात्वी देव के भय से उसे बोध देता है × वह घास का पूड़ा भरकर जोर से 'घासलो, घास!' आवाज करती हुई वहाँ निकली × आवाज से स्थिर होने पर साधु बोला- अहो! तद्भवेला × देवी - जैसा आपका स्वाध्याय काल है, वैसा मेरा तद्भव काल है × साधु मिच्छामि दुक्कडं बोला × देवी- पुनः ऐसा मत करना, मिथ्यात्वी परेशान करेंगे।
अकाल में स्वाध्याय करने पर अननुयोग, काल जानने पर अनुयोग।

★ वचन अनुयोग- अननुयोग में बधिर- उत्सर्ग दृष्टांत → बहरा कुटुंब × बुड्ढा-बुड्ढी, पुत्र-पत्नी पुत्र हल चलाता है × एकदा पथ में चलते पथिकों ने पूछा- रास्ता पूछा × वह बोला (उसे लगा बैल का पूछ रहे हैं) - मेरे घर में उत्पन्न हुए दो बैल हैं × पत्नी भोजन लाई × वह बोला- सुना बैल को सींग उगे हैं × (उसे लगा भोजन के लिए बोले) वह बोली- नमक डला या नहीं मुझे नहीं मालूम, क्योंकि तुम्हारी माँ ने बनाया है × घर जाकर पत्नी ने सासू को नमक की बात कही × वह रूई कातती थी × (उसे लगा रुई के लिए बोली) वह बोली - झाड़ हो या पतला, बुड्ढे का वस्त्र बन जाएगा × बुड्ढे को बुलाया × (वह तिल की रक्षा कर रहा था) वह बोला- मेरी कसम! मैंने एक भी तिल नहीं खाया।
यहाँ पूछते कुछ हैं और बोलते कुछ और हैं। ~~अत~~ ऐसे ही यदि एकवचन की जगह द्विवचनादि प्रयोग करे तो अननुयोग।

★ वचन अनुयोग में दूसरा दृष्टांत गामडीये का - एक विधवा × लकड़ी बेचती है × पति मरण से मेरी निंदा होती है' ऐसा सोचकर दूसरे गाँव गई × बालक बड़ा होने पर पूछता है - पिता कहाँ है? × बोली - मर गए × बालक - वो कैसे आजीविका चलाते? × माता - नौकरी से × पुत्र - मैं भी नौकरी करूँगा × माँ - नौकरी कैसे करोगे? × पुत्र - कैसे करूँ? × माँ - विनय करना × पुत्र - विनय कैसे करना? × माँ - जयकार करना, नम्र रहना, इच्छानुसार रहना × नगर के लिए निकला × हिरण पकड़ने के लिए आए शिकारी दिखे × इसने जोर से जय बोली × हिरण भाग गए × शिकारियों ने मारा × कहा- जब ऐसा हो तब धीरे-धीरे जाना, छुपकर जाना × आगे घोड़ी दिखे × उनके वस्त्र रोज कोई चोरता था × वे मौका देखकर बैठे थे × इसे छुपकर आते देख चोर मानकर मारा × सही बात कहने पर छोड़ा और कहा 'शुद्ध हो' ऐसा कहना × आगे खेत में किसान खेती कर रहे थे × वह बोला- 'शुद्ध हो' (साफ हो) × किसानों ने मारा और कहा- 'बहुत हो' ऐसा बोलना × आगे लोग मृतक लेकर जा रहे थे × वह बोला- 'बहुत हो' × मारा और कहा- 'अत्यंत वियोग हो × आगे दूल्हे की बरात जा रही थी × वहाँ बोला 'अत्यंत वियोग हो' × मारा और कहा- 'ऐसा रोज हो' × आगे सांकल से गाम अधिकारी बंधे थे × बोलने पर मारा

शाएबत हो

और कहा - 'शीघ्र छुटकारा हो' x आगे मित्रों की रोती मिली x अबोलने पर भारा और घोड़ा x ठाकुर के यहाँ नौकरी लगी x नगर में दुःकाल पड़ा x ठाकुर की पत्नी ने यवागू (राब) बनाई x गामडीये को कहा, ठाकुर को बुलाओ कहीं से लेकर आ, नहीं तो राब ठंडी हो जाएगी x वह सभा में गया - जोर से बोला - जल्दी चलो, नहीं तो राब ठंडी हो जाएगी x ठाकुर लोगों के बीच में शर्मा गया x उसे बोला - ऐसे समय पर धीरे से बोलना चाहिए x एकदा घर में आग लगी x वह धीरे-धीरे ठाकुर के पास गया और कान में धीरे से बोला तब तक घर जल गया x ठाकुर बोला - ऐसे समय आना नहीं चाहिए, खुद ही पानी-गोबर ले डालना चाहिए x एकदा ठाकुर नहाकर धूप करता था x वहाँ धूआँ निकलते देख उसने गोबर-पानी डाला।

यह सब वचनाननुयोग है। जब जो योग्य हो, वह बोलना चाहिए।

अब. भाव-अनुयोग- अननुयोग में ७ दृष्टांत -

गा. 131 श्रावक भार्या, सापत्पदिक, कोंकणकपुत्र, नकुल, कमलामेला, शांब का साहस, औणिक का कोप।

1. श्रावक भार्या - एक श्रावक ने पत्नी की युवान सखी को देखा x राग हुआ x रोज दुर्बल होने लगा x पत्नी के पूछने पर न कहा x अति आग्रह से कहा x पत्नी ने कहा - मैं उसे बुलाऊँगी x शाम को उसके वस्त्राभरण पहनकर स्वयं अंधेरे में आई x दूसरे दिन श्रावक पश्चात्ताप करता है कि व्रत तोड़ा x पत्नी ने चिह्नों पूर्वक बताया कि मैं ही थी।

पत्नी को सखी जानना अननुयोग, पत्नी जानने पर अनुयोग। इस प्रकार स्व समय - पर समय वक्तव्यता में, औदयिकादि भावों की प्ररूपणा में।

7. (ऐसी same ६ कथा सिद्धराज जयसिंह के पिता की है। उसके पिता राजा नर्वकी नर्मदा सरोवर पर मोहित हुए थे। मंत्री ने मीनलदेवी रानी को उसके वस्त्र पहना कर भेजा था। जिससे सिद्धराज जयसिंह उत्पन्न हुआ)

2. सापत्पदिक - सप्तमीं पदं व्यवहरति इति सापत्पदिकः। - एक सेवक पुरुष x साधु के पास जाए नहीं, धर्म सुने नहीं, श्रद्धा है नहीं x एकदा गाँव में साधु आए x वसति माँगी x गोष्ठी (टोली) ने उस सेवक पुरुष की मजाक करने साधुओं को उसके घर भेजा x साधु ने उसे वसति मांगी x वह कुछ नहीं बोला x एक साधु बोला - या तो यह श्रावक नहीं है, या तो हम ठगे गए x ऐसा सुन उसने सोचा कि रोटी से मैं अच्छे ठगा जाऊँ, पर साधु न ठगाए x यह सोचकर धर्म न कहने की शर्त पर वसति दी x ५ मास पूरे हुए x साधुओं को छोड़ने गया x सीमा के बाहर धर्मकथा x वह कोई नियम लेने तैयार न हुआ x तो १ कदम पीछे हटकर आने का नियम दिया x चोरी करने गया x छाया से बहन पुरुष वेश में सोई देखकर मारने के लिए १ कदम पीछे हटा x बहन बोली - अभी हाथ पर से सिर हटाओ। x वह आवाज से पहचाना। (Same कथा 'वंकचूल' में)

बहन को पर पुरुष माना - अननुयोग। सही ज्ञान - अनुयोग।

3. कोंकणक पुत्र - कोंकण देश × एक पुत्र × माता मर गई × पिता को अन्य पत्नी नहीं मिलती क्योंकि शौक्य पुत्र है × उसे मारने के लिए पिता ने बाण फेंका × बोला - तेरा बाण ले मा× पीछे से दूसरा बाण मारा × पुत्र - बाण क्यों फेंका मुझे लग रही है × दूसरा मारा × रोता हुआ मरा।
'मुझे मार रहे हैं' नहीं जानता बालक अननुयोग, जाना तब अनुयोग। अथवा 'रक्षणीय बालक को मारूं' ऐसा विचार अननुयोग, यदि रक्षा करते तो अनुयोग।

4. नकुल - एक सैनिक की पत्नी गर्भवती हुई × ~~इसी दिन~~ एक नेवली भी गर्भवती हुई × एक ही रात्रि में दोनों ने पुत्र जन्म दिया × स्त्री ने सोचा - मेरे पुत्र का खिलौना होगा, लालन-पालन किया × एक बार माचड़े पर चढ़कर सांप ने बालक को डंसा × नेवले ने उतरते हुए सांप को मारा × खून से भरे हुए मुँह से स्त्री के पास गया × स्त्री ने उसे मुसल से मारा × दौड़कर पुत्र के पास गई × सांप के टुकड़े देखकर पछताई।
बालक समझने पर अननुयोग, बार में अनुयोग।

5. कमलामेला - द्वारिका × बलदेव पुत्र निषध का पुत्र सागरचंद्र × रूपवान्, शांबादि को ईर्ष्या × उग्रसेन राजा की कमलामेला पुत्री × उग्रसेन राजा के दौहित्र धनदेव के साथ सगाई × एकदा नारद सागरचंद्र के पास आए × उसने पूछा - कोई आश्चर्य देखा! × नारद - कमलामेला × सागर - किसी को दी गई? × नारद - हाँ × सागर - मेरी कैसे होगी × नारद - मुझे नहीं पता चले गए × नारद कमलामेला के पास गए × पूछने पर कहा - रूप में सागरचंद्र, कुरूप में धनदेव आश्चर्य है × सागर के पास आकर कहा - वह तुझे इच्छती है × शांब पीछे आकर विलाप करते हुए सागर की आँख हाथ से बंद करता है × सागर - कमलामेला! × शांब - मैं कमलामेला नहीं, कमलामेलक (कमलामेला को मिलाने वाला) हूँ × उसे शराब पीलाकर शपथ दिलाई × नशा उतरने पर वह सोचता है कि कमलामेला इसे कैसे मिलेगी! मैंने गलत शपथ स्वीकारी × शपथ दृढ़ करने के लिए उसने प्रद्युम्न से प्रज्ञप्ति विद्या ली × विवाह के दिन कमलामेला का अपहरण कर सुरंग से रेवती उद्यान में लाकर सागरचंद्र के साथ विवाह कर दिया × उधर कमलामेला के परिवार वालों ने नारद को पूछा तो नारद - रेवती उद्यान में देखी × कृष्ण सैन्य के साथ आए × शांब ने विद्याधर का रूप कर युद्ध किया × सब राजा हार गए × अंत में कृष्ण लड़ने आए तब शांब असली रूप में आकर पैर में गिरा × विवाह की बात की × धनदेव बच्चे से माफी मांगी।
शांब का कमलामेला लाना, वह अननुयोग, बार में अनुयोग।

→ हरिभद्रीय टीका - धनदेव की जगह उग्रसेन के पुत्र नभसेन के साथ सगाई की।
→ चूर्णि में मलयगिरि म. वत् । उग्रसेन - नेमिनाथ भगवान् पधारे × सागरचंद्र - कमलामेला ने अणुव्रत ग्रहण किए × 8-14 तिथि को शून्य घर में सागर प्रतिमा में रहा × धनदेव ने तांबे की सुईयाँ बनवाकर उसके अंगुली के नखों में ठोकी × वेदना से मरा, देव बना × दूसरे दिन ढूंढने पर सूई मिली × कुमार गुस्सा

इए × युद्ध हुआ × सागरचंद्र देव बीच में आकर युद्ध शांत करता है × कमलामेला ने दीक्षा ली।

6. शांब का साहस → जांबवती - मेरे पुत्रों में मैंने कभी मनाड़ीपन नहीं देखा × कृष्ण - आज दिखाता हूँ × दोनों ग्वाला - ग्वालन बनकर छाछ बेचने लगे × शांब ने देखकर बुलाया × ग्वालन आगे गई × शांब शून्य मंदिर के अंदर गया × ग्वालन - मैं नहीं आऊँगी, चाहिए तो यहीं मूल्य देकर ले लो × शांब - तुझे आना ही पड़ेगा × हाथ पकड़कर खींचने लगा × ग्वाला आकर युद्ध करता है × अंत में दोनों प्रगट हुए × माँ-पिता को देखकर मुँह ढांककर भाग गया × दूसरे दिन बुलाया × खील ठोकता - ठोकता आया × कृष्ण - खील क्यों ठोकता है × शांब - कल की बात जो बोलेगा, उसके मुँह में ठोकना है।
पहले अननुयोग, फिर अनुयोग।

7. श्रेणिक कोप → राजगृह × श्रेणिक राजा, चेलणा रानी × महावीर स्वामी को वंदन कर शाम को प्रायः भास में घर आई × रास्ते में ध्यानिमाप्रतिपन्न साधू देखा × रात को सोतीहुई हाथ कंबल के बाहर रह गया × ठर गया × अंदर लिया और बोली - उनका क्या होता होगा? × श्रेणिक ने सोचा - किसी को संकेत दिया है × सुबह अभय को कहा - महल जला दे × वीर स्वामी को वंदन करने गए × पूछा - प्रभु! चेलणा एक पति वाली है या अनेक? × प्रभु - एक पति × दौड़े × रास्ते में अभय मिला × पूछा - महल जला दिया? × अभय - हाँ × अभय ने जीर्ण हस्तिशाला जलाई थी × राजा - तू क्यों नहीं जला? × अभय - मुझे तो दीक्षा लेना है × अभय - नहीं जलाया।
पहले अननुयोग। फिर अनुयोग।

अब. अनुयोग कहा गया (गा. 128)। निक्षेप भी अनुयोग की तरह जानना। अब भाषादि का स्वरूप कहते हैं -

गा. 132 भाषक, विभाषक और वार्तिक में काष्ठ, पुस्त, चित्र, शैलगृहिक, लेंड (कमल), देशिक के उदाहरण हैं।

★ काष्ठ → कोई Carpenter लकड़ी में स्वल्पाकार ही करता है, कोई स्थूल अवयव बनाता है, कोई संपूर्ण अंगोपांग बनाता है। ऐसे काष्ठ समान सामायिकादि सूत्र हैं। उनमें भाषक स्थूल अर्थ कहता है, विभाषक अनेक प्र. के अर्थ कहता है। स्पष्ट करने के स्वभाव वाला व्यक्तिकर होता है, जो सभी व्युत्पत्ति-फलादि से कहता है, यह निश्चय से पूर्वी होता है।

★ पुस्त → काष्ठवत्।

★ चित्र → काष्ठवत्।

★ श्रीष्टाहिक → श्रीगृह-भांडागार। तदस्य अस्ति इति 'अतोऽनेकस्वरादृ' इक प्रत्यय।
कोई भांडागारी रत्नों के भाजन ही जानता है, कोई रत्न, कोई जातिप्रान् इत्यादि, कोई गुण भी जानता है। इस प्रकार प्रथम-द्वितीय-तृतीय इ. के भाषकादि समझना।

★ खोंड = कमल → कोई थोड़ा खुला, कोई आधा, कोई पूरा।

★ दैशिक = देशनं = कथनं सोऽस्यास्ति इति दैशिकः। → कोई दैशिक रास्ता पूछने पर दिशा ही बताता है, कोई बीच में रहे गाँव वि. भी, कोई रास्ते के गुण-दोष भी।

→ विभाग कहा गया (गा. 125)। द्वार विधि कहने का अवसर है किंतु उसे छोड़कर व्याख्यान विधि कहते हैं।

प्र. प्रभनुयोग द्वार में व्याख्यान विधि का अधिकार नहीं होने पर भी प्रतिपादन क्यों किया जा रहा है?

उ. ताकि शिष्य और गुरु सुखपूर्वक श्रवण और व्याख्यान कर सके जिससे शास्त्र का उपकार हो। अथवा
प्रभनुयोग द्वार में अनुगम में अन्तर्भूत होने से अधिकृत है।

प्र. द्वारविधि के पहले क्यों लाए?

उ. द्वारविधि में भी बहुत कहने जैसा है, अतः इस द्वार विधि में भी व्याख्यानविधि का विपर्यय न हो इसलिए यहीं गुरु-शिष्य के गुण-दोष कहते हैं।

प्र. व्याख्यानविधि को द्वारगाथा में क्यों नहीं कहा?

उ. सूत्र व्याख्यान का गुरुत्व बताने के लिए कि सूत्र की व्याख्या के लिए शिष्य या गुरु विशेष से गुणवान् ढूँढना चाहिए।

अतः व्याख्यान विधि →

गा. 125 आचार्य-शिष्य विषयक प्रतिपक्ष में गाय, चंदनकथा, चेटी (पुत्री) श्रावक, बहरा कुंडा और टंकण व्यवहार का दृष्टांत है।

★ 6 दृष्टांत में प्रतिपक्ष जोड़ लेना। अथवा 6 उदाहरण में क्रम से एक गुरु, एक शिष्य की योग्यता-अयोग्यता का है।

1. गाय → एक धूर्त × उसकी गाय रोगी, दूध में असमर्थ × वो-वो ही बेच दी × खरीदने के बाद पता चला कि यह तो दूध ही नहीं सकती × सोचा- मैं भी बेच दूँ × एक खरीदने वाला

आया × वह बोला- खरीद का बोला और मूल्य दे चूकूंगा फिर खरीदूंगा × वह बोला- मैंने तेरी ही खरीदी है, तू भी ऐसे ही खरीद × ग्राहक- तू ठग है, क्या मैं भी ठग हूँ?
ऐसे जो गुरु प्रश्न का जवाब न दे और कहे कि 'मैंने ऐसा ही सुना है, तुम भी सुनो' उसके पास नहीं सुनना।

2. चंदन कंथा → द्वारिका × कृष्ण × भेरी – ⓐ संग्रामिका – युद्धादि में सामन्तों को बताने के लिए ⓑ अदृष्टदर्शिता – आगंतुक आने पर लोक और सामंतों के लिए ⓒ कौमुदिका- कौमुदी वि. उत्सव बताने के लिए ⓓ अशिवप्रशमनी – पूर्वोत्पन्न रोग शांत होते हैं और 6 मास तक नए रोग नहीं होते, हर 6 मास में एक बार बजाते। चारों गोशीर्षचंदन की, देवता से प्राप्त। चौथी भेरी की उत्पत्ति → देवलोक में इंद्र – पर कृष्ण दुर्गुण नहीं देखता और नीच युद्ध नहीं करता × एक देव परीक्षा करने आया × कृष्ण नेमिनाथ प्रभु के समवसरण के लिए निकला × बीच में काला कुत्ता मरा हुआ, दुर्गंधी × कृष्ण – इसकी दंत पंक्ति मोती की माला जैसी है × देव ने सोचा- सही में गुणग्राही है × फिर अश्वरत्न चोरी कर दौड़ा × सभी कुमार आए, हारे × कृष्ण आया, बोला – मेरा अश्वरत्न तेरा नहीं होगा × देव – मुझे हराकर लेना × कृष्ण – तू नीचे है, मैं रथ पर हूँ, तू रथ ग्रहण कर × देव ने मना किया × सरथ हाथी का भी मना किया × कृष्ण वाक्-युद्धादि सबका मना किया × कृष्ण – तो कौन सा युद्ध करे × देव – प्रथिव्याम् युद्ध (ढेका युद्ध) × कृष्ण – जा, अश्वरत्न तू लेजा, मैं हार गया, मैं नीच युद्ध नहीं करता × देव खुश होकर बोला – क्या दूँ × कृष्ण – अशिव-प्रशमनी भेरी दे × देव ने भेरी दी।
एक भेरीपात्लक रखा × एक वणिक् आकर बोला – मुझे भेरी का एक टुकड़ा दे, तुझे लाख सोनामहोर दूँगा × भेरीपात्लक ने दे दिया × इस प्रकार बहुत टुकड़े होने से भेरी चंदन के घिसाड़े वाली हुई × कृष्ण ने भेरी बजाई तो वह सभा भी नहीं झराई × कंथा भेरी देखी × पात्लक मार डाला × नई भेरी देव को प्रसन्न कर ली × नया भेरी पात्लक रखा।
इस प्रकार जो शिष्य या गुरु परमत से स्वमत को मिश्रकर कंथा कर देते हैं या सूत्रार्थ भूल जाते हैं या अहंकार से किसी को कुछ पूछते नहीं हैं, वे योग्य नहीं हैं।

3. चेटी → वसंतपुर × श्रेष्ठ जीर्णसेठ की पुत्री, नए सेठ की पुत्री × दोनों सखी किंतु जीर्ण सेठ की पुत्री के मन में द्वेष कि हम इनके द्वारा पद भ्रष्ट किए गए × एकदा दोनों सरोवर गई × स्वर्ण अलंकार तट पर रखे × जीर्णसेठपुत्री नई के अलंकार लेकर भागी × नई पुत्री ने माता-पिता को कहा × नए सेठ ने जीर्ण सेठ से मांगे, नहीं दिए × राजसभा में Case गया × न्याय करने वाले ने दोनों को आभूषण पहनने और उतारने को कहा × Practice से नई ने जल्दी और जल्दी पहने, उतारे × जीर्ण ने गलत पहने × निर्णय हो गया
इस प्रकार जो गुरु अन्य अर्थ को अन्यत्र जोड़े, वे योग्य नहीं हैं। जो नई पुत्री की तरह बराबर अर्थ करे वे योग्य।

4. श्रावक उदाहरण Pg. No. 151 पर Same।
उपनय - जो शिष्य चिरपरिचित सूत्र-अर्थ (आर्या की तरह) को भी याद नहीं करता, वह योग्य नहीं है।

5. अस्थिर उदाहरण Pg. No. 150 पर Same।
उपनय - अन्य पूछने पर जो गुरु अन्य जवाब दे, वे अयोग्य। जो शिष्य गुरु के पास अन्य सुनता है और बोलता अन्य है, वह अयोग्य।

6. टंकणव्यवहार - उत्तरापथ में टंकण नामक म्लेच्छ x वे दक्षिणापथ के सुवर्णादि भाजन-किराना खरीदते हैं x परस्पर भाषा नहीं जानते x एक दोनों दगला कर उस पर हाथ रखते हैं जब तक इच्छा पूरी न हो तब तक हाथ नहीं उठाते।
इस प्रकार गुरु भी शिष्य को जब तक अर्थ कहे, तब तक उसकी इच्छा पूरी न हो। शिष्य भी संतोष न होने तक पूछे।

उत्त. शिष्य के दोष-गुणों को विशेष से प्रतिपादन करने के लिए कहते हैं -
गा. 134-5 अनभ्युपगत, निरुपकारी, आत्मप्रेरमतिक, प्रश्नित, गंतुकाम (जाने की इच्छा वाला) शिष्य किस गुरु को द्वेष्य (अप्रीतिकर) न हो। विनय से नतवनत, अंजलि करने वाले, क्रम अनुसार अनुवर्तमान शिष्यों द्वारा आराधित गुरुजन बहुत प्रकार का श्रुत जल्दी देते हैं।

प्र. शिष्य के गुण-दोषों को विशेष से क्यों कहते हैं।
उ. कालांतर में वही गुरु बनने वाला है। यदि अयोग्य को गुरुपद दे तो आज्ञाभंगादि दोष होते हैं।

* श्रुतसंपन्न से अनुपसंपन्न शिष्य गुरु को अप्रीतिकर होते हैं। सभी उपसंपन्न भी गुरु को प्रिय नहीं होते, जो गुरु के कृत्यों में प्रवर्तता नहीं है, वह अप्रिय होता है (निरुपकारी)।
सभी उपकारी भी गुरु को प्रिय नहीं होते, जो स्वच्छंद होते हैं वे अप्रिय। समर्पित मति वाले भी यदि जाने की इच्छा वाले हो (अलग होने की इच्छा वाले) तो अप्रिय होते हैं।
ऐसे शिष्य योग्य नहीं है।

* विनय से झुके हुए, पृच्छादि में अंजलि करने वाले, इंगितज्ञ शिष्यों द्वारा आराधित गुरु जल्दी बहुत श्रुत देते हैं।

अब. शिष्य की परीक्षा -
गा. 136 मृद्गशैल - मेष, कुर (घर), चालणी, सुधरी पक्षी का घोसला, हंस, महिष (भैंस), भेड़ (मेष),

मशक, जलो (जीव विशेष), बिल्ली, जाहक (तिर्यंच विशेष), गाय, भेरी, आभीरी - दृष्टांत हैं।

दृष्टांत २५ - चरित और कल्पित (पिंडनिर्युक्ति गा. 630)

~~मुद्गशैल-मेघ~~ →

1. मुद्गशैल - मेघ → मुद्गशैल = मूंग के दाने जितना पत्थर। पुष्करावर्त मेघ = जंबूद्वीप प्रमाण का महामेघ। कोई नारद जैसा व्यक्ति मुद्गशैल को बोला - तेरा नाम लेने पर पुष्करावर्त मेघ बोलता है कि उसे तो मैं एक धारा से ही भेद दूँगा। शैल - यदि तिल के छिलके के तीसरे भाग जितना भी मुझे गिला कर दे तो मेरा नाम छोड़ दूँगा। फिर मेघ के पास शैल के वचन कहे। मेघ गुस्से में आकर मुसलाधार बरसने लगा। नदिन-रात के बाद सोचा 'बिचारा पिगल गया होगा' सोचकर रुका। पानी उतरने पर चमकता हुआ शैल बोला 'मैं जीत गया'।

→ ऐसे जो शिष्य एक पद भी नहीं समझे, वह अयोग्य है। ऐसे शिष्य को पढ़ाने के दोष

ⓐ आचार्य की अपकीर्ति - 'इन्हें पढ़ाना भी नहीं आता'।

ⓑ सूत्र की निंदा - 'यह अध्ययन बराबर नहीं है' यदि बराबर होता तो यह जानता क्यों नहीं।

ⓒ सूत्रार्थ भ्रष्टता - इसे पढ़ाने में गुरु को अन्य ग्रंथ न पढ़ने - स्वाध्याय करने के अभाव से सूत्रार्थ भ्रष्ट। नए सूत्र की भी हानि।

ⓓ सूत्रार्थ अवगाहन हानि - अन्य पटु शिष्यों को सूत्रार्थ हानि, न पढ़ाने से।

→ प्रतिपक्ष में काली मिट्टी वाला प्रदेश → वहाँ बहुत जल गिरने पर भी नीचे उतर जाता है, थोड़ा भी ~~बी~~ बाहर नहीं जाता। ऐसे जो शिष्य सभी सूत्रार्थ धारण में समर्थ हैं, वह कृष्ण भूमि तुल्य है।

2. कुट (घड़ा) → घट

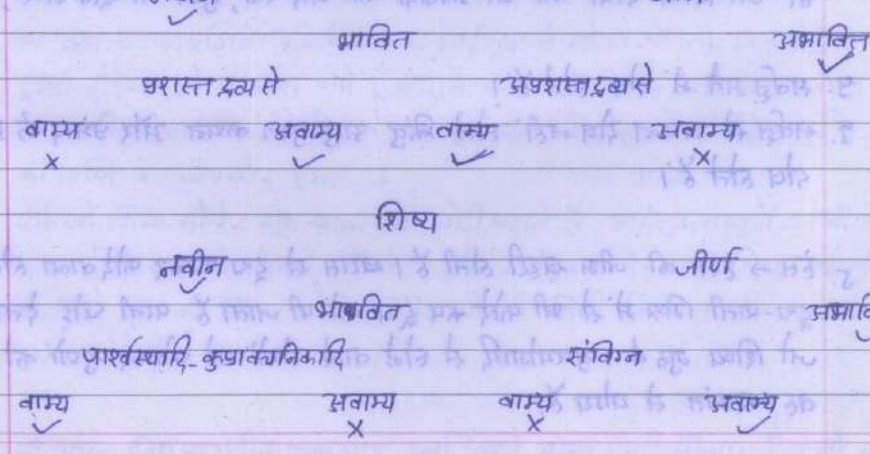

नवीन घड़े - जो अभी पाक से लाए हो।
जीर्ण - पुराने। ~~भावित~~
नवीन शिष्य = जो बालभाव में हो।
अभावित शिष्य = किसी भी दर्शन से भावित न हो।
अथवा अन्य प्रकार से यही दृष्टांत →
घड़ा 4 प्र. - ⓐ छिद्रकुट - जिसके नीचे छेद हो।
ⓑ खंडकुट - जिसके एक ओर में कहीं टूटा हुआ हो।
ⓒ कंठहीनकुट - होठ के मंडल का अभाव हो।
ⓓ संपूर्ण कुट - सर्व अवयव से पूर्ण।
ऐसे शिष्य भी 4 प्र. ⓐ जो वाचना में बैठे-बैठे सब अर्थ समझे, उठने के बाद कुछ भी याद नहीं रखे, वह छिद्रकुट समान (छेद वाले घड़े में जरा भी पानी जगह से उठाने के बाद पानी नहीं रहता)
ⓑ जो ~~व~~ वाचना में बैठा हुआ $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{3}$ समझे वह खंडकुट समान।
ⓒ जो कुछ हीन समझे किंतु बाद में वैसे ही याद रखे, वह कंठहीन समान।
ⓓ जो संपूर्ण धारे और याद रखे, वह संपूर्ण घट समान।
→ छिद्रकुट एकांत से अयोग्य। शेष प्रधान, प्रधानतर, प्रधानतम।

3. चालनी दृष्टांत → चालनी में पानी डालने पर उसी समय पूरा नीचे गिर जाता है, वैसे ही सूत्रार्थ शिष्य जब सुने, तभी भूल जाए।
→ प्रतिपक्ष में बाँस से बना हुआ तापसभाजन, जिसमें से एक भी बूँद पानी नहीं गिरता।

4. परिपूणक = चीड़-दृष्य की छन्नी अथवा सुग्रहा नामक चिड़िया का घोंसला → इस घोंसले से ग्वाले घी छानते हैं। वह छन्नी कचरा रोकती है, घी को निकल जाने देती है। वैसे ही जो शिष्य दोषों को या अपवादों को याद रखे, गुणों को भूल जाए, वह अयोग्य।

5. सर्वज्ञ मतै में दोष होते हैं।
7. सर्वज्ञ से उत्पन्न दोष नहीं होते किंतु अनुपयुक्त कथन और प्रमाद के आश्रय से दोष होते हैं।

5. हंस → हंस की जीभ खुरदरी होती है। खरास से दूध फाड़कर फोड़ वाला होता है। वह दूध-पानी मिश्र में से भी फोड़ रूप दूध को पी जाता है पानी छोड़ देता है। ऐसे ही जो शिष्य गुरु के अनुपयोगादि से होने वाले दोषों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करे, वह एकांत से योग्य है।

6. भैंस → भैंस पूरी पानी में घुसने के बाद सींग से पानी को हिलाती है, जिससे पूरा पानी गंदा होने से स्वयं भी नहीं पी सकती, यूथ भी नहीं। ऐसे ही जो शिष्य वाचना में अवसर पर क्षुद्र प्रश्नों से या कलह-विकथादि से स्वयं और दूसरों को श्रवण में विघात करे, वह एकांत से अयोग्य है।

7. मेष → थोड़ा शरीर होने से मेड़ और खाली चिये में से भी पानी गंदा न करती हुई पीती है, वैसे ही जो शिष्य एक पद भी विनय पूर्वक पूछकर गुरु के चित्त को प्रसन्न करता है, वह एकांत से योग्य है।

8. मशक (मच्छर) → मच्छर खून पीता हुआ पीड़ा करता है, वैसे जो शिष्य गुरु के दुर्गुणों को प्रगट करता हुआ पीड़ा करता है, वह अयोग्य।

9. जलौका (जीव विशेष) → यह पीड़ा नहीं करता हुआ शरीर में से खराब खून पी लेता है, वैसे जो शिष्य गुरु को दुःखी न करता हुआ ज्ञान लेता है, वह योग्य।

10. बिल्ली → बिल्ली दुष्ट स्वभाव से बर्तन में रहे दूध को जमीन पर ढोलकर पीती है, वैसे जो शिष्य विनय करने के भय से गुरु के पास न जाए और वाचना उठने के बाद दूसरे साधुओं के पास जाकर पढ़े, वह अयोग्य।

11. जाहक → (तिर्यंच विशेष) यह जीव धीरे-धीरे दूध पीकर बर्तन के आस-पास से भी पूरा चाट लेता है वैसे शिष्य भी पूर्व गृहीत सूत्र को अतिपरिचित कर नया-नया पढ़ता है, वह योग्य।

12. गाय → किसी कौटुंबिक ने 5 ब्राह्मणों को गाय दी × चारों ने क्रमशः एक-एक दिन दोहने का क्रम बनाया × जिसे पहले दिन गाय आई, उसने सोचा - मैं तो आज दोहूंगा, कल तो दूसरा दोहेगा, तो मैं चारा क्यों दूँ × उसने चारा नहीं दिया × इस प्रकार अन्य 3 ने भी चारा नहीं दिया × वह थोड़े दिन में मर गई × लोक में ब्राह्मणों की निंदा हुई × दानादि की प्राप्ति का व्यवच्छेद हुआ।
ऐसे जो शिष्य सोचे - गुरु खाली हमें थोड़ी पढ़ाते हैं, आगंतुक साधुओं को भी पढ़ाते हैं। अतः वे ही गुरु को संभाले, हमें क्या? और आगंतुक सोचे - इनके शिष्य सब करेंगे, हमें क्या? तो गुरु को विषाद होता है और लोक में शिष्यों की निंदा, अन्य गच्छ में सूत्रार्थ दुर्लभ होते हैं। अतः वे अयोग्य।

→ प्रतिपक्ष → जिसे पहले दिन ~~गाय~~ गाय आई उसने सोचा - यदि मैं चारा नहीं दूँगा तो मरने से

लोक में निंदा होगी, आगे कोई गाय नहीं देगा तथा यहीं मेरे चारे से पुष्ट होकर दूसरे ब्राह्मणों द्वारा यह गाय दोही जाएगी तो मुझे अनुग्रह होगा तथा क्रम से मुझे भी दूध मिलेगा x ~~मैंने~~ चारों ने चारा दिया x जिससे बहुत दिन वह जीई x लोक में प्रशंसा, अन्य भी बहुत गायें कि. मिली।
ऐसे ही जो शिष्य और आगंतुक सभी लाभ सोचकर गुरु की सेवा करे, वे योग्य।

13. ~~मेरी~~ मेरी- पूर्ववत् (Pg. No. 135)

14. आभीरी → आभीर पत्नी के साथ घी बेचने चला x बजार में भीड़ बढ़ने पर घी का माप शुरु होने पर गाड़ी के नीचे रही आभीरी पति से घी के घड़े लेने लगी x एक घड़ा गिरकर टूट गया x पति- अन्य पुरुषों को देखने में घड़ा भी पकड़ती नहीं है x आभीरी- तू स्त्रियों को देखने में इतनी देर भी रुकता नहीं है कि मैं घड़ा पकड़ूँ x केशाकेशि x नीचे पड़ा हुआ घी कुछ सूख गया, कुछ कुत्ते चट गए x गाड़ी में रहा घी लोग उठा गए x अंधारा होने पर दोनों लड़ना बंदकर गाँव की तरफ चले x चोरों ने बैल-गाड़ी, कपड़े, रुपये सब लूट लिया
इस प्रकार कोई शिष्य गलत प्ररूपणा करने पर गुरु द्वारा रोकने पर बोले- आपने ही मुझे ऐसा सिखाया है, अब मुझे क्यों डाँटते हो? इत्यादि। वह स्वयं संसार में भटकता है और यदि गुरु को उसके वचनों से ~~खुश~~ गुस्सा आए तो वे भी भटकते हैं। गुरु तो आलोचना से शुद्ध भी हो जाते हैं किंतु शिष्य तो श्रुत से भी च्युत होता है।

→ प्रतिपक्ष → घड़ा फूटने पर दोनों जल्दी से घी इकट्ठा करते हैं, थोड़ा ही नष्ट हुआ x आभीर- मैंने ही बराबर नहीं दिया x आभीरी- मैंने बराबर नहीं पकड़ा x चोरी भी नहीं हुआ x बाकी घी बेचकर बहुत धन कमाकर उजाले में गाँव आ गए।
इस प्रकार गलत प्ररूपणा करते शिष्य को गुरु कहे- उपयोग से मैंने उस समय ऐसा कह दिया था, तू ऐसा सुधार ले। तो शिष्य- आपने सही कहा था, मेरी दुर्मति से मैंने गलत समझा। ~~इस~~ ऐसे विनय से स्वीकारे। वह योग्य।

अत. व्याख्यान विधि पूर्ण हुई। मंगलत्व भी पूर्ण हुआ। प्रसंग विस्तार पूर्ण हुआ।
उपोद्घात कहते हैं-

गा. 137-8 (द्वार गाथा) 1. उद्देश, 2. निर्देश 3. निर्गम 4. क्षेत्र 5. काल 6. पुरुष 7. कारण 8. प्रत्यय 9. लक्षण 10. नय 11. समवतरण 12. अनुमत 13. कि 14. कतिविध 15. कस्य 16. क्व 17. केषु 18. कथं 19. कियत्काल तक 20. कति 21. सांतर 22. सविरहित 23. भव 24. आकर्ष 25. स्पर्शन 26. निरुक्ति। इन 26 द्वारों से सामायिक अध्ययन कहेंगे।

A. 1. उद्देश = सामान्य कथन, जैसे अध्ययन।
B 2. निर्देश = विशेष अभिधान, जैसे सामायिक।

C 3. निर्गम - कहाँ से सामायिक अध्ययन निकला ?
D-E 4-5 क्षेत्र-काल - किस क्षेत्र-काल में निकला ?
F 6. पुरुष - किस पुरुष से निकला ?
G 7. कारण - किस कारण से गौतमादि सुनते हैं ?
H 8. प्रत्यय - किस प्रत्यय (बोध) से भगवान ने कहा या गौतमादि ने सुना ?
I 9. लक्षण - सामायिक के अनुद्वारि लक्षण कहेंगे ।
J 10. नय - नैगमादि कहेंगे
K 11. समवतरण - वे नय कहाँ उतरते हैं ?
L 12. अनुमत - किस नय को कौन सा सामायिक अनुमत ?
M 13. किं - सामायिक क्या है ?
N 14. कतिविध - कितने प्रकार का है ?
O 15. कस्य - किसे होता है ?
P 16. क्व - कहाँ होता है ?
Q 17. केषु - किस विषयक ?
R 18. कथं - कैसे प्राप्त हो ?
S 19. कितने काल तक ?
T 20. कति - पूर्वप्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान कितने होते हैं ?
U 21. सांतर - कितना अंतर होता है ?
V 22 अविरहित - निरंतर कितने काल तक ?
W 23. भव - कितने भव में प्राप्त होती है ?
X 24. आकर्ष - एक भव में कितनी बार आ-जा सकती है ?
Y 25. स्पर्शना - सामायिकवाले जीव कितना क्षेत्र स्पर्शते हैं ?
Z 26. निरुक्ति = निश्चित उक्ति । इसमें निश्चित वचन कहेंगे ।

★ अवयवार्थ उपक्रम द्वार का निर्युक्तिकार कहेंगे ।

★ द्वारों के स्थापन पर चर्चना →

प्र. सामायिक अध्ययन के ६ अनुयोगद्वार में ओघनिष्पन्न निक्षेप में 'अध्ययन' और नाम निष्पन्न निक्षेप 'सामायिक' कहे गए । अतः उद्देश-निर्देश कहे गए तो पुनः यहाँ कहने से क्या ?

उ. इन द्वारों का पहले अनागत ग्रहण किया था यानि भविष्य में आने वाले का पहले ही ग्रहण कर लिया था ताकि अनुयोग द्वारों का उपन्यास हो सके । यदि वहाँ ग्रहण नहीं करते तो विषय का अभाव होने से अनुयोग द्वारों का न्यास नहीं होता । यहाँ सब क्रम में उन द्वारों का न्यास किया है, अतः पुनः कथन नहीं है ।

अथवा पहले नाममात्र ग्रहण किया था। यहाँ अर्थनिगम द्वार में विधान और लक्षण से व्याख्या करेंगे।

प्र. निर्गम द्वार 'आत्मागम' रूप पहले कहा गया। अतः पुनः कथन नहीं करना चाहिए।
उ. वहाँ सिर्फ तीर्थंकर-गणधर से निर्गम कहा था। यहाँ तीर्थंकर-गणधरों का निर्गम कहेंगे तथा क्षेत्र-काल-पुरुष-पर्याय से विशिष्ट निर्गम कहेंगे।

प्र. उपक्रम द्वार में नाम प्रतिद्वार में क्षायोपशमिक भाव में और प्रमाणद्वार में जीवगुण प्रमाण- आगम में उतारने से लक्षण कहा गया। अतः लक्षण पुनः नहीं कहा गया। कहना चाहिए?
उ. वहाँ केवल नाम कहा था। यहाँ विस्तार से कहेंगे।
अथवा वहाँ श्रुतसामायिक का लक्षण कहा था। यहाँ चारों सामायिक का कहेंगे।

प्र. नय प्रमाणद्वार में भी कहे और चौथे अनुयोगद्वार में भी कहे जाएँगे। तो यहाँ क्यों कहा?
उ. प्रमाण द्वार में कहे गए नय से यहाँ उस द्वार का अधिकार होने से कहे जाएंगे। वहाँ सिर्फ नाम बोला था, यहाँ स्वरूप कहेंगे।
ये नय सामायिक का समुदाय अर्थ कहेंगे, सूत्र द्वार में व्याख्यान कहा जाएगा।

प्र. प्रमाण द्वार में जीवगुण सामायिक और ज्ञान कहा गया सत 'किं सामायिकं' यह द्वार अयुक्त है।
उ. जीवगुण और ज्ञान होने पर भी 'वह जीव ही है या जीव से अन्य है' इस संशय को दूर करने के लिए उपन्यास किया।

प्र. नामद्वार में 'क्षायोपशमिक सामायिक' कहा गया। तो तदावरणकर्म के क्षयोपशम से वह प्राप्त होता है, यह स्पष्ट है। तो 'कथं लभ्यते' द्वार क्यों कहा।
उ. 'क्षयोपशम कैसे होता है' इस प्रकार क्षयोपशम में रहे शेष अंगों की प्राप्ति की विचारणा होने से दोष नहीं है।

प्र. उपक्रम और उपोद्घात, दोनों शास्त्र के उत्थान के लिए कहे जाते हैं। इन दोनों में क्या भेद?
उ. उपक्रम उद्देश मात्र के नियतव्यापार वाला है। उपोद्घात अर्थनिगम होने से शास्त्र में उद्दिष्ट वस्तु के प्रबोधन रूप फल वाला है।

अब A. उद्देश द्वार का अवयवार्थ–

गा-139 नाम-स्थापना-द्रव्य-क्षेत्र-काल-समासोद्देश-भाव : उद्देश द्वार के 8 निक्षेप।

★ नामोद्देश → ⓐ जीवादि का उद्देश नाम करना। नाम्ना उद्देशः।
ⓑ नाम और नामवाले के अभेदोपचार से नाम चासौ उद्देशश्च, नाम ऐसा उद्देश।
ⓒ नाम्नः उद्देशः – नाम का उद्देश यानि कथन।
ⓓ नाम्ना उद्दिश्यते – नाम से जो कहा जाए।

★ स्थापनोद्देश → ⓐ स्थापन किया जाता उद्देश।
ⓑ स्थापना का उद्देश यानि कथन।

★ द्रव्य → द्रव्य विषयक उद्देश। 2 9. भागम और नोआगम से। आगम से ज्ञाता + अनुपयुक्त।
नोआगम से ज्ञशरीर-भव्य शरीर व्यतिरिक्त 3 9. – ⓐ द्रव्यस्य उद्देशः – यथा इदं द्रव्यं।
ⓑ द्रव्येण उद्देशः – हेतुभूत ऐसे द्रव्य से उद्देश ex. यह द्रव्य का स्वामी।
ⓒ द्रव्ये उद्देशः – सिंहासन पर राजा, वन में भोर।

★ क्षेत्रोद्देश – ⓐ क्षेत्रस्य उद्देशः – इदं क्षेत्रम्।
ⓑ क्षेत्रेण उद्देशः – क्षेत्री अयम्।
ⓒ क्षेत्रे उद्देशः – क्षेत्रे जातं क्षेत्रजम्।

★ कालोद्देशः – ⓐ कालस्य – अयं कालः।
ⓑ कालेन – इदं कालातिक्रान्तं वस्तु।
ⓒ काले – काले जातं, काले आगतम्।

★ समासोद्देशः – ~~3 9.~~ ⓐ संक्षेप विषयक उद्देश। 19. –
ⓐ अंगसमासोद्देश – 2 9. अंगसमासस्य उद्देशः – ex. इदं अंगं।
अंगसमासेन उद्देशः – ex. तदज्ञोता, तदर्थज्ञ, अंगी।
ⓑⓒ इसी प्रकार श्रुतस्कंध और अध्ययन के भी 2-2 भेद।

★ उद्देशोद्देशः – ⓐ उद्देशस्य – अध्ययनविशेषस्य उद्देशः ex. अयं उद्देशः।
ⓑ उद्देशेन – उद्दिश्यते – अध्ययन विशेष को जानने से या पढ़ने से अयं उद्देशवान्।

★ भावोद्देशः – ⓐ भावस्य – अयं भावः
ⓑ भावेन – भावी अयं।

अव. उद्देश की व्याख्या से ४. निर्देश का अतिदेश करते हैं -

गा. 140 ऐसे ही निर्देश भी ४ प्र. का. होता है। उद्देश अविशेषित और निर्देश विशेषित होता है

★ नाम निर्देश - जिनभद्र आदि।
स्थापना - कामदेव की स्थापना।
द्रव्य - सचित्त - गाय, अचित्त - दंड, मिश्र - रथ
क्षेत्र - सौराष्ट्रक आदि
काल - शरद, प्रावृषेण्य
समास - अंग - सूत्रकृतांग, श्रुतस्कंध - आचारपद, अध्ययन - सामायिक।
उद्देश का निर्देश - भगवती में पुद्गलोद्देशक।
भाव - अयं कोऽपि आदि।
(सभी निक्षेप में कोई भी एक समास विग्रह से दृष्टांत दिया है, शेष 'उद्देश' के सबंधवार्थ में करे सभी भेद जोड़ लेना)

अव. यहाँ समास उद्देश-निर्देश का अधिकार है - यु. अध्ययनम् = समासोद्देश, सामायिकम् = समासनिर्देश है। यह सामायिक नपुं. है क्योंकि सावद्ययोगविरमण नपुं. लिंग में रूढ है। उसका निर्देश त्रि. - स्त्री. पु. नपुं.। नैगमादि कौन सा नय किस निर्देश का इच्छते हैं -

गा. 145 नैगम नय दोनों प्रकार, संग्रह-व्यवहार निर्दिष्ट के आधार से, ऋजुसूत्र निर्देशक की अपेक्षा से और शब्द समान लिंग वाले दोनों के आश्रय से निर्देश को इच्छते हैं।

★ लोक में निर्देश की प्रवृत्ति 2 प्र. से होती है
1. निर्देश्य के वश से - यु. वासवदत्ता, शिवदर्शना आदि।
2. निर्देशक के वश से - यु. मनुना प्रोक्तः मनुः, अक्षपादेन प्रोक्तः अक्षपादः।

लोकोत्तर में भी 2 प्र. -
1. निर्देश्य वश से - षड्जीवनिकाय निर्देश्य होने से षड्जीवनिका।
आचार क्रिया के कथन से आचारांग।
2. निर्देशक के वश से - जिनवचन, कपिलीय, नन्दसूत्रता।

★ नैगम नय दोनों प्रकार से निर्देश स्वीकारता है।
1. निर्देश्य के वश से - सावद्ययोगविरमण रूप सामायिक द्रव्य से नपुंसक होने से नैगम नय नपुं. मानेगा। अथवा ~~निर्देशक~~ तीनों में हो सकता। उसके परिणाम के साथ अभेद की विवक्षा करने पर सामायिक तीनों लिंग में होगी।
↳ निर्देश्य वाला (सामायिक वाला)

→ परिणाम के साथ अर्थ की अभेद विवक्षा में अर्थ का निर्देश तीनों लिंग में →

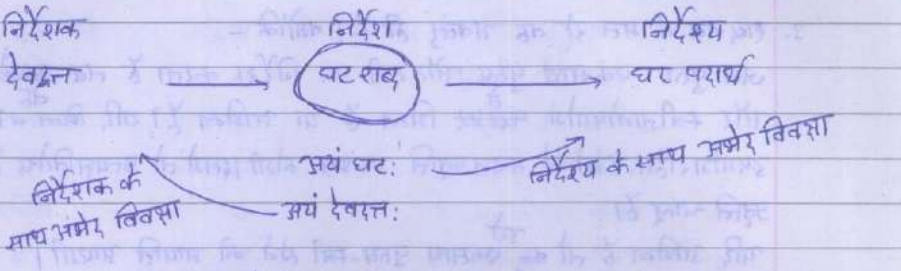

कहीं देवदत्त घूम गया हो। उसे ढूँढने वाले लोगों ने देवदत्त द्वारा बोला गया 'घट शब्द' सुना। वे कहेंगे – 'यह रहा देवदत्त'। यहाँ निर्देश की निर्देशक के साथ अभेद विवक्षा है। इस प्रकार जब स्त्री पुरुष का निर्देश करती है, तब भी विवक्षानुसार स्त्री या पुरुष लिंग हो सकते हैं।

2. निर्देशक के वश से – निर्देशक के साथ अभेद विवक्षा में तीनों लिंग में हो सकती है।

9. नैगमनय दोनों प्रकार से स्वीकारता है, इस प्रकार कहने पर निर्देश्य और निर्देशक दो तो भेद कैसे पता चले?

उ. आगे कहा है संग्रह और व्यवहार निर्देश्य के वश से को स्वीकारते हैं, उससे।

★ संग्रह और व्यवहार निर्देश्य के वश से निर्देश को तीनों लिंग में (निर्देश्यवाले के साथ अभेद से) और नपुंसक लिंग में (रूढ़ि से) स्वीकारता है।
जिस प्रकार दीपक प्रकाश्य वस्तु को प्रकाशित करता हुआ ही आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है, वैसे ही वचन भी अर्थ का प्रतिपादन करता हुआ ही स्वरूप को प्राप्त करता है। अतः सामायिक शब्द का पुरुष सावद्ययोगविरमण है। रूढ़ि से नपुं।
सामायिक वाले के साथ अभेद विवक्षा से तीनों लिंग में।

★ ऋजुसूत्र नय शब्द को वक्ता के मधीन मानता है क्योंकि शब्द वक्ता का पर्याय है। वक्ता की विद्यमानता में ~~शब्द~~ शब्द की विद्यमानता रहती है (तद्भावभावित्वात्)। अतः निर्देशक तीनों लिंग में होने से सामायिक तीनों लिंग में है।

★ शब्दनय दोनों को एक ही मानता है अर्थात् जब निर्देशक निर्देश्य के उपयोग वाला होगा, तब वह अभिन्न ही होगा। जैसे भाणवक अग्नि है। इसलिए जब पुरुष पुरुष का निर्देश करेगा तब पुं., जब स्त्री का निर्देश करेगा तब स्त्री, जब नपुंसक का निर्देश करेगा तब नपुं।

9. निर्देशक असमान लिंग वाले स्त्री-पुरुष का एक साथ निर्देश करेगा, तब क्या होगा?

3. शब्दनय के मत से वह अवस्तु ही है। क्योंकि –
जब पुरुष एकसाथ पुरुष और स्त्री का निर्देश करता है तब ~~उसके~~ पुरुषज्ञानोपयोग और स्त्रीज्ञानोपयोग ~~परस्पर~~ भिन्न है या अभिन्न है। यदि भिन्न ~~न~~ वह हो तो वक्ता उपयोगरहित होने से वचनप्रवृत्ति असंभव होगी। इसमें तो प्रत्यक्षविरोध है क्योंकि वचन प्रवृत्ति चालू है।
यदि अभिन्न है तो ~~वह~~ उसे एकसाथ पुरुष-स्त्री होने की आपत्ति आएगी।
अतः वह अवस्तु ही है। (अधिक स्पष्टता टिप्पणक में)

इस प्रकार सामाजिक रूढ़ि से नपुंसक है। अतः निर्देश भी नपुंसक ही होता है।

इस प्रकार गाथा का संक्षेपार्थ हुआ। ये सब नय यदि एकसाथ मिले तो प्रमाणज्ञान होगा।

टिप्पणक → प्र. शब्दनय में जब पुरुष स्त्री-पुरुष को एकसाथ निर्देश करेगा, तब क्या?
उ. वह ~~वस्तु~~ अवस्तु होगा (निर्देश अनिर्देश होगा)। क्योंकि –
जब वह एकसाथ निर्देश करेगा, तब उसके ~~ज्ञान~~ पुरुषज्ञानोपयोग और स्त्रीज्ञानोपयोग परस्पर भिन्न है या अभिन्न है? यदि भिन्न मानो तो वक्ता पुरुष एकसाथ भिन्न-भिन्न स्त्री और पुरुष रूप होने की आपत्ति आएगी।
यदि अभिन्न हो तो वक्ता पुरुष एकसाथ स्त्री-पुरुषमय बनने की आपत्ति होगी।
अतः इन दोनों विकल्प से असमानलिंग वाला निर्देशक नहीं होता। वह ~~वक्ता~~ निर्देश अवस्तु ही है।

प्र. उस उपयोग को परस्पर भिन्न/अभिन्न मानने से अरुक्ष, उपयोग को वक्ता से ही अलग मान लो? अथवा उपयोग एकसाथ पुरुषस्त्री रूप हो। उससे वक्ता भिन्न होने से, वक्ता को क्या?
उ. [अन्यथा वस्तुत्वभावप्रसङ्गात् – हरिभद्रीय टीका] – उपयोग को वक्ता से भिन्न मानने पर वस्तु (वक्ता) के अभाव का प्रसंग होगा क्योंकि उपयोग से भिन्न होने पर वह जीव नहीं होगा तथा वक्ता होने से अजीव भी नहीं होगा।

मलयगिरीय टीका सह A.-8. उद्देश-निर्देश द्वार पूर्ण। C. निर्गम द्वार – (द्वार गा. 137-8 Pg No. 161)
गा. 142 नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव निर्गम के ये 6 निक्षेप होते हैं।
★ नाम-स्थापना सुगम।
★ द्रव्य – आगम-नोआगम से। आगम और इशरीर-अव्यशरीर सुगम।
तद्व्यतिरिक्त अनेक प्रकार का। – द्रव्य से द्रव्य का निर्गम – द्रव्य – सचित्त-अचित्त-मिश्र 3 प्र/8.

	द्रव्य से	द्रव्य का	निर्गम उदा.
1.	सचित्त	स.	पृथ्वी से अंकुर
2.	स.	स.	भूमि से वाष्प
3.	स	मि.	भूमि से पतंग
4.	अचित्त	स.	काष्ठ से कृमि
5.	अ.	अ.	काष्ठ से चुणचूर्ण
6.	अ.	मि.	काष्ठ से घुणक
7.	मिश्र	स.	देह से कृमि
8.	मि.	अ.	देह से विष्ठा (i)
9.	मि.	मि.	स्त्री से गर्भ

(i) यहाँ अचित्त द्रव्य विष्ठा है। हरिभद्रीय टीका में भी विष्ठा है। किंतु विशेषावश्यक भाष्य में स्त्री से शोणितादि का निर्गम कहा है।

अथवा चतुर्भंगी –

द्रव्य से द्रव्यों का – एक रूपये पर ब्याज चढ़ते-चढ़ते जब बहुत रूपये हो।
द्रव्य से द्रव्य का – एक रूपये पर एक रूपये जितना ब्याज हो।
द्रव्यों से द्रव्य का – बहुत रूपयों पर कुछ ही दिन में एक रूपये का ब्याज।
द्रव्यों से द्रव्यों का – बहुत रूपयों पर बहुत रूपयों का ब्याज।

★ क्षेत्रनिर्गम → क्षेत्र से निर्गम – कोई जीव अधोलोक से तिर्च्छालोक में आए।
क्षेत्र का निर्गम – राजकुल से कुछ क्षेत्र की प्राप्ति।

★ कालनिर्गम → काल से निर्गम – दुर्भिक्ष से निकलना। अथवा खात्यकाल से निकला देवदत्त।
काल का निर्गम – वसंत ऋतु का निर्गम, शुरु होना।

★ भावनिर्गम → भाव का से निर्गम – पुद्गल से वर्णादिविशेष का या जीव से क्रोधादिपरिणामका निर्गम।
भाव से का निर्गम – पुद्गल में पर्याय या जीव में पर्याय की उत्पत्ति।

उत. शिष्य की मति को प्रकाशित करने के लिए अनेक प्र. से निर्गम कहा गया। यहाँ तो प्रशस्त भाव की उत्पत्ति रूप निर्गम और अप्रशस्त के अपगम रूप निर्गम से अधिकार है। अथवा द्रव्यनिर्गमादि का भी अधिकार है क्योंकि वे भाव के अंग हैं। सामायिक रूप प्रशस्त भावनिर्गम के अंग द्रव्य - महावीर भगवान्, क्षेत्र - सहस्रामवन, काल - प्रमाणकाल,

भाव-पुरुष। यह सब महावीर भगवान् रूप द्रव्य के अधीन है। अतः इनका मिथ्यात्वादि से निर्गम कहते हैं-

गा.143 पश्चिमविदेह × ग्रामघात × लकड़ों के लिए अटवी गया × साधु सार्थ से अलग हुए, मार्ग भूले हुए सघन में घूमते-घूमते × उन्हें गोचरी-पानी लेकर मार्ग बताया × आगे चला, पीछे साधु × गुरु ने धर्म कहा × सम्यक्त्व प्राप्त × रास्ता बताकर वापस गया।

पू.भा.गा.1-2 अन्तर्भाष्य की 2 गाथा में यही अर्थ।

गा.144 मरकर सौधर्म कल्प में पल्योपम आयु वाला वैमानिक देव।

गा.145 देवलोक से च्यवकर भारतवर्ष में इक्ष्वाकुकुल में ऋषभ का पौत्र बना।

गा.146 कुलकरवंश पूरा होने पर इक्ष्वाकुकुल की उत्पत्ति हुई। इस वंश में भरत का पुत्र मरीचि हुआ।

गा.147-8 इस अवसर्पिणी के तीसरे आरे के पश्चिम भाग में पल्योपम का आठवां भाग शेष होने पर कुलकर की उत्पत्ति हुई। भरतक्षेत्र के मध्य तीसरे भाग में गंगा-सिंधु के मध्य में ब्रह्ममध्य देश में 7 कुलकर उत्पन्न हुए।

अब. कुलकर वक्तव्यता की द्वार गाथा -

गा.149 (द्वारगाथा) 1. पूर्वभव, 2. जन्म 3. नाम. 4. प्रमाण 5. संघयण 6. संस्थान 7. वर्ण 8. स्त्री 9. आयु 10. भोग 11. भवनोपपात 12. नीति

अब. 1. पूर्वभव - 2. जन्म -

गा.150-1 पश्चिमविदेह × 2 वणिग् - एक भाथी, एक ऋजु × मरकर भरत में × जन्मे × भाथी हाथी बना, ऋजु मनुष्य युगल × देखकर परस्पर स्नेह हुआ × हाथी श्वेत और 4 दाँत वाला × अभियोग निवर्तिक कर्म उदित हुआ × युगल को कंधे पर बिठाया × लोगों ने विमलवाहन नाम रखा × उसे जातिस्मरण हुआ × कालदोष से 7 कुलकर क्रम हुए - भितांगा, भृंगांगा, त्रुटितांगा, चित्रांगा, चित्ररसा, गृहकारा, अनग्ना × कषाय उत्पन्न हुए × 'यह मेरा है, कोई लेना मत' ऐसा लोग कहने लगे × झगड़े होने लगे × 'इससे विमलवाहन अधिक है' अतः उसे अधिपति बनाया × उसने दंड दिए × 'जो भी यह मर्यादा तोड़े उसे मैं दंड दूंगा' विमलवाहन × दंड - हकार - हा! तुने यह गलत किया × अपराधी सोचता है - मेरा सर्वस्व हरण हुआ, अच्छा होता यदि मेरा सिर काट देते' × उसकी चंद्रयशा पत्नी × युगल उत्पन्न हुआ × ऐसे 7 कुलकर एक वंश में हुए।

प्र. दंडनीति उस कुलकर को कैसे पता चली?

उ. जातिस्मरणज्ञान से पूर्वभव वणिग् के वह जानता था। अतः दंड जानता था।

अब. 2 द्वार पूर्ण हुए। शेष द्वार ... Short में कोष्ठक से कहते हैं -

गा.152 -

S.No.	नाम	काया (धनुष)	वर्ण	आयुष्य	उपपात	दंड	स्त्री
1.	विमलवाहन	900	सुवर्ण	पल्योपम का १०वां भाग	सुपर्णकुमार	हक्कार (vii)	चंद्रयशा (vi)
2.	चक्षुष्मान्	800	श्वेतवर्ण (ii)	असंख्य पूर्व (iv) (v)	"	"	चंद्रकांता
3.	यशस्वी	700	श्वेतवर्ण	"	उदधिकुमार	प्रक्कार	सुरूपा
4.	अभिचंद्र	650	गौर (iii)	"	"	"	प्रतिरूपा
5.	प्रसेनजित्	600	श्वेतवर्ण	"	द्वीपकुमार	श्विक्कार	चक्षुःकांता
6.	मरुदेव	550	सुवर्ण (iii)	"	"	"	श्रीकांता
7.	नाभि	525	सुवर्ण	संख्य पूर्व	नागकुमार	"	मरुदेवी

संघयण – सभी कुलकर एवं पत्नी वज्रऋषभनाराच प्रथम संघयण वाले।
संस्थान – सभी कुलकर एवं पत्नी समचतुरस्र प्रथम संस्थान वाले।

(i) श्वेतवर्ण – श्याम। (ii) गौर – चंद्र वत्। (iii) सुवर्ण – निर्मलकनकवत्।
(iv) असंख्य पूर्व भी क्रमशः हीन-हीन जानना।
(v) कुछ अन्य आचार्य कहते हैं कि शेष ६ कुलकरों की समुदित आयु असंख्य वर्ष है, वह गलत है क्योंकि एक पल्योपम के ५० भाग कल्पना करो। इ.प. के ४थे भाग में ही कुलकर की उत्पत्ति हुई। अतः इन ५० में से ६ भाग शेष रहे तब कुलकर की उत्पत्ति हुई। विमलवाहन का प. का १०वां भाग आयुष्य अतः ६ में से १ भाग शेष रहा –

$$\underbrace{\frac{प.}{५०} + \frac{प.}{५०} + \frac{प.}{५०} + \frac{प.}{५०} + \frac{प.}{५०}}_{\frac{प.}{१०} \text{ प्रथम कुलकर}} = \underbrace{\frac{प.}{६}}_{\text{शेष ६ कुलकर}}$$

बीच के ६ कुलकर के असंख्य भागों से मिलकर भी प./५० काल पूर्ण नहीं होगा। अतः ३नाभि की भी असंख्य वर्ष आयु मानना पड़ेगी। और वह नहीं मान सकते क्योंकि नाभि जितनी ही आयु मरुदेवी की थी तथा मरुदेवी को केवलज्ञान होने से असंख्य वर्ष आयु नहीं हो सकती।

(vi) → कुलकरपत्नी की काया भी कुलकर जितनी ही होती है। कुलकर से कुछ न्यून काया होती है' ऐसा एक अन्य मत है। सभी का वर्ण श्वेतवर्ण ही होता है।
→ कुलकर पत्नी और कुलकर के हाथी की आयु कुलकर जितनी ही होती है।
→ कुलकर पत्नी और हाथी नागकुमार देवों में गए। मात्र मरुदेवी सिद्ध हुई।

भाग सभी कुलकर की कुल आयु के १० भाग करो। प्रथम भाग कुमार अवस्था में, मध्यम ८ भाग अकुलकरकाल, अंतिम भाग वृद्धत्व में।

(vii) प्रथम-द्वितीय कुलकर मात्र हकार रूप दंड ही करते थे। तृतीय-चतुर्थ कुलकर लघु अपराध में हकार, गुरु अपराध में मकार। अंतिम 3 कुलकर क्रमशः लघु-मध्यम-गुरु अपराध में हकार-मकार-धिक्कार।

गा.166 भरत महाराजा की 4 दंडनीति-
मू.भा.गा.3 1. परिभाषणा - 'इस स्थान से मत जाना' ऐसा गुस्से में किसी को कहना।
2. मंडलीबंध - अमुक प्रदेश से नहीं जाना।
3. चारक - कैद।
4. छविच्छेद - सिर वि. करना।

इनमें से प्रथम दो ऋषभस्वामी और दो भरत के भाणतक निधि से निकली है।

* ऋषभदेव भगवान् गृहवास में असंस्कृत यानि स्वभाव से संपन्न आहार, देवों द्वारा लाए हुए देवकुरु-उत्तरकुरु के फल वापरते थे। तथा क्षीर समुद्र का पानी।

अब. यह भरत कौन है? ऋषभ के पुत्र। ऋषभ कौन है? -
गा.167 विनीता नगरी में नवां कुलकर नाभि-मरुदेवी। वज्रनाभ का जीव तीर्थंकर नामकर्म बांधकर सर्वार्थसिद्ध में गए। वहाँ से च्यवकर मरुदेवी की कुक्षि में अषाढ़ा नक्षत्र में गए।
प्रक्षिप्त गाथा धन, युगलिक (उत्तरकुरु), सौधर्म कल्प में देव, महाबलराजा, ललितांग (ईशान कल्प में), वज्रजंघ, युगलिक (उत्तरकुरु), सौधर्म में देव, वैद्य, अच्युतकल्प, वज्रनाभ-चक्री, सर्वार्थसिद्ध विमान में, ऋषभदेव
गा.168- धनसार्थवाह x वसंतपुर जाने की घोषणा x साधु मिले x मरवी में रहे x बहुतकाल बाद चिंता x घी दान xx
175 उत्तरकुरु में युगलिक बना xx गंधिलावतीविजय x गंधार देश x गंधसमृद्ध नगर x में अतिबल राजा का पौत्र शतबल राजा का पुत्र महाबल राजा x संभिन्नश्रोत मंत्री को स्वयंबुद्ध मंत्री ने बाद में हराकर। प्रांत आयु शेष होने पर संथारा किया x 22 दिन भक्त प्रत्याख्यान कर काल xx ललितांग देव xx पुष्कलावती विजय x पोहारगिरि नगर x वज्रजंघ राजा x राज्यलोभी पुत्र द्वारा वासघर में रानी के साथ मारा गया xx युगलिक xx सौधर्म में देव xx क्षितिप्रतिष्ठित नगर x वैद्यपुत्र x जीवानंद-राजपुत्र, सेठपुत्र, मंत्रीपुत्र, सार्थवाहपुत्र x घर पर कृमिकुष्ठ रोगी मुनि आए x गोशीर्षचंदन, कंबलरत्न, लक्षपाक तैल से चिकित्सा x तीनों वस्तु देने वाला वणिक दीक्षा लेकर मोक्ष में गया x 3 बार में स्वस्थ - प्रांत x - अग्नि में रहे कृमि निकले x 2 बार श्रावक हुए x फिर दीक्षा लेकर पांचो अच्युत कल्प में गए xx पुंडरिकिणी नगरी x वज्रसेन तीर्थंकर के पुत्र वज्रनाभ चक्री (वैद्य) x शेष 4 क्रमशः पीठ-सुबाहु-पीठ-महापीठ x चक्री का 85 लाख पूर्व आयु - 30 लाख कुमार + 16 लाख मंडलिक राजा + 24 लाख चक्री + 15 लाख साधु x पांचों ने दीक्षा ली x वज्रनाभ 14 पूर्व पढ़े x शेष 4 11 अंग x बाहु वैयावच्च करते हैं, सुबाहु हाथ-पैर आदि दबाते हैं x वज्रनाभ प्रशंसा करते हैं x पीठ-महापीठ ने ईर्षा से स्त्रीत्व बांधा, मिथ्याती हुए x वज्रनाभ ने तीर्थंकर नामकर्म निकाचित किया x x

* Pg- No. 172

अव. 20 स्थानक तीर्थंकर नामकर्म बांधने के –

गा.176-8 1-6 अरिहंत-सिद्ध-प्रवचन-गुरु-स्थविर-बहुश्रुत & तपस्वी में वत्सलता 8. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग 9. दर्शन 10. विनय 11. आवश्यक 12-13. निरतिचार शील-व्रत 14-17. क्षणलव-तप-त्याग-वैयावृत्य में समाधि 18. अपूर्वज्ञान ग्रहण 19. श्रुतभक्ति 20. प्रवचन प्रभावना, इन कारणों से जीव तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है।

★ गुरु- गृणन्ति यथास्थितं शास्त्रार्थं इति।

★ स्थविर – 3 प्र. जाति - 60 वर्ष ↑ | श्रुत - समवायांगधर | पर्याय - 20 वर्ष ↑ |

★ बहुश्रुत → श्रुत 3 प्र. सूत्र, अर्थ, उभय | सूत्रधर से अर्थधर प्रधान, अर्थधर से उभयधर प्रधान।

★ वत्सलता = अनुराग = यथावस्थितगुणोत्कीर्तन + तदनुरूप उपचार।

★ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग = अनवरत ज्ञान में व्यापृत रहना।

★ शील = उत्तरगुण | व्रत = मूलगुण।

★ क्षणलवसमाधि = क्षणलव-कालविशेषों में निरंतर संवेगभावना और ध्यान सातत्य से समाधि।

★ त्याग = 2 प्र. द्रव्य से अप्रायोग्य आहार-उपधि आदि का त्याग, प्रायोग्य का यतियों को वितरण | भाव से क्रोधादि का विवेक और ज्ञानादि का यतियों को वितरण।

★ वैयावृत्त्य - अस्सी आचार्यादि 10 प्र. से | प्रत्येक के 13 प्र. –

1. भक्तदान 2. पानदान 3. आसनप्रदान 4. पादोल्लेहन करना
5. पैर साफ करना 6. वस्त्रदान 7. भैषजदान 8. रास्ते में सहाय करना
9. चोरादि से रक्षण 10. वसति में प्रवेश करते हुए दंड लेना 11. मात्रु का पात्रा देना
12. ठल्ले का पात्रा देना 13. कफ का मात्रक देना।

★ श्रुतभक्ति - श्रुत में बहुमान।

★ प्रवचन प्रभावना = प्रवचनदान - अर्थदान - उपदेश दान।

अव. किस तीर्थंकर ने कितने स्थान सेवे –

गा.179 प्रथम और अंतिम तीर्थंकर (ऋषभ और महावीर स्वामी) ने पूर्वभव में सभी स्थान स्पर्शे। मध्यम जिन में से किसी ने एक, किसी ने दो... किसी ने सभी स्थान स्पर्शे।

अव. तीर्थंकर नाम कर्म का फल और बंध –

गा.180 तीर्थंकर नाम कर्म का उदय कैसे जाना जाए? ज्ञानि बिना धर्मदेशनादि से। वह पूर्व के तीसरे भव में भगवान् को बंधता है।

★ 8 प्रातिहार्यादि से पूजा कराने पर जो खेद बिना धर्मदेशना दे, 34 अतिशय, 35 वाणी गुण।

★ 9. तीर्थंकर नाम कर्म की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तःकोकोसागरोपम है। तो

पूर्व के तीसरे भव में कैसे बांधते हैं?

उ. पूर्व के तीसरे भव में बांधते हैं यानि निकाचित करते हैं। अनिकाचित तो तीसरे भव के पहले भी होता है। उस स्थिति को तीर्थंकर भव प्रमाण करके निकाचित करते हैं।

★ निकाचनारूप बंध तृतीयभव से लेकर तीर्थंकर के भव में अपूर्वकरण के संख्यात भाग तक चालू रहता है। उसके बाद बंध बंद हो जाता है। केवलिकाल में क्षय होता है।

प्रश्न. किस गति में बांधते हैं-

गा. 181 मनु० में से कुछ या भी स्थान जिन्होंने बहुत प्रकार से सेवे हैं, ऐसे स्त्री-पुरुष या नपुं शुभ लेश्या वाले तीर्थंकर नाम कर्म बांधते हैं। अतः ~~निका~~ तियंचा मनुष्यगति में ही बंधता है।

गा. 182 ★ बाहु ने वैयावच्च से चक्रवर्ती पद बांधा। सुबाहु ने बाहुबल बांधा। ~~शेष~~ शेष[2] ने स्त्रीत्व बांधा। पाँचों सर्वार्थसिद्ध में गए। पहले वज्रनाभ इस उत्सर्पिणी में सुषम-सुषम, सुषम व्यतीत होने पर और तीसरे सुषमदुषम के ७५ लाख पूर्व + ८९ पक्ष शेष रहने पर उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में चंद्र का योग आने पर आषाढ़ व. ५ के दिन नाभि कुलकर की मरुदेवी पत्नी की कुक्षि में उत्पन्न हुए। १४ स्वप्न देखे। राजा ने स्वप्नफल कहा। इंद्र का आसन चला। इंद्र ने भी आकर स्वप्नफल कहा। मरुदेवी रूप होकर श्री गर्भ वहन करती है।

गा. 183 (द्वार गाथा) जन्म, नाम, वृद्धि, जातिस्मरण, विवाह, अपत्य, अभिषेक, राज्यसंग्रह।

प्रश्न. प्रथम 'जन्म' द्वार का भावार्थ-

गा. 184 चैत्र वद ८ को आषाढ़ा नक्षत्र में जन्म। जन्म महोत्सव से घोषणा तक जानना।

★ जंबूद्वीपप्रज्ञप्त्यादि के आधार पर यह वितरण जानना।

★ तीर्थंकर की माताएं प्रच्छन्नगर्भा होती हैं। रुधिर-कलमल नहीं होते।

★ मरुदेवी ने 9 माह 7½ दिन पूर्ण होने पर अर्द्धरात्र में ऋषभदेव को जन्म दिया।

★ अधोलोक की ८ दिक्कुमारी सबसे पहले आकर संवर्तक वायु वैक्रियसमुद्घात[2 बार] से विकुर्व कर एक योजन के परिमंडल को साफ करती है। (163 B- 168 B)

★ ~~फिर ऊर्ध्वलोक की~~

→ हृष्ट = विस्मय को प्राप्त 'अहो! भगवान् का जन्म हुआ'
तुष्ट = तोष को करती 'अच्छा हुआ जो भगवान् जन्मे'।
→ संभ्रम = विवक्षित क्रिया में आदर बहुमान पूर्वक प्रवृत्ति (थोड़ी जल्दी)

→ चेक = 72 कला में पंडित।
दक्ष = कार्यों को विलंब बिना करने वाला।
कुशल = सम्यक्क्रिया के परिज्ञान वाला
मेधावी = परस्पर अबाधित धृतपर अनुसंधान में दक्ष।

★ फिर ऊर्ध्वलोक की 8 देवी आकर 2 बार वैक्रियसमुद्घात से बादल विकुर्वती हैं। जल्द ही उन्हें गर्जाती हैं, विद्युत् करती हैं और 1 योजन के परिमंडल में बारिश करती हैं जिससे धूल के उड़ते कण नीचे बैठ जाते हैं।
→ इस बारिश से भूमि कैसी होती है?-
नष्टरज = सर्वथा अदृश्य हो गई है रज जहाँ।
निहतरज = फिर से धूल उठने की संभावना नहीं है जहाँ।
भ्रष्ट रज = हवा के उद्भूतपन से। योजन दूर चली गई है रज जहाँ से।

पुनः तीसरी बार वैक्रियसमुद्घात कर पुष्प के बादल विकुर्वती हैं। उन्हें भी जल्दी गर्जाकर, विद्युत् कर योजन परिमंडल में जल और स्थल में उत्पन्न, डंठलवाले पद्मादि पुष्प जानु प्रमाण बरसाती हैं। पुष्प की बारिश कर कालागुरु वि प्रधान धूप से क्षेत्र को मघमघायमान सुगंध वाला करती हैं, जिससे वह क्षेत्र सुरवर-श्रेष्ठ देवों के आगमन योग्य होता है। (168B-169B)
→ वाः - पानीयं तस्य दलानि वार्दलानि।
अपः बिभ्रति इति अब्भाणि।

★ पूर्व रुचक (वर्तुल) पर्वत पर रहने वाली 8 दिक्कुमारी हाथ में आदर्श (दर्पण) लेकर आती हैं। (169B) पूर्व दिशा में खड़ी रहती हैं

★ दक्षिण रुचक (वर्तुल) पर्वत पर रहने वाली 8 देवी शृंगार (कलश) लेकर आती हैं। दक्षिण दिशा में खड़ी रहती हैं। (170A)

★ पश्चिम रुचक पर्वत पर रहने वाली 8 देवी हाथ में पंखा लेकर पश्चिम दिशा में खड़ी रहती हैं। (170A) (तालवृंत)

★ उत्तर रुचक पर्वत पर रहने वाली 8 देवी हाथ में चामर लेकर उत्तर दिशा में खड़ी

रहती है। (170A)

★ विदिशा में रुचक पर्वत पर रहने वाली 4 देवी हाथ में दीपक लेकर विदिशा में खड़ी रहती है।

★ मध्यम रुचक पर्वत पर रहने वाली 4 देवी भगवान् की 4 अंगुल छोड़कर नाल काटती है, खड्डा खोदती है, उसमें नाभि (नाल) डालती है, फिर रत्न और वज्र से खड्डे को पूरती है। ऊपर हरितालिका की पीठ बांधती है (मिट्टी विशेष)।

★ 9. देवी को 2 बार वैक्रिय समुद्घात क्यों करना पड़ता है।

3. वह पहले समुद्घात से आत्मप्रदेशों को दंड संख्यात योजन तक फेंकती है। वह दंड ऊर्ध्व-अधो लंबा और शरीर की चौड़ाई जितना होता है। उस दंड से तथाविध पुद्गलों को ग्रहण करती है। दूसरी बार बाहर असार पुद्गलों को छोड़ती है तथा सूक्ष्म-सार रूप पुद्गलों को ग्रहण करती है।

→★ फिर ये देवी भवन के पूर्व-दक्षिण-उत्तर 3 दिशा में कदली गृह विकुर्वती है। उसके बहुमध्य भाग में ~~चतुः~~ चंद्रशाला (चतुःशाल) उसके बहुमध्य भाग में सिंहासन विकुर्वती है। (सिंहासन के रूप का वर्णन 170B-171A)

फिर ये देवी तीर्थंकर को हाथ में और माता को बाहु से पकड़कर दक्षिण कदली गृह में सिंहासन पर बैठाकर शतपाक-सहस्रपाक तेल से मालिश करती है। फिर सुगंधी गंध वर्तक से उद्वर्तन करती है। फिर उन्हें पूर्व दिशा में कदली गृह के सिंहासन पर बैठाकर गंधोदक-पुष्पोदक-शुद्धोदक से स्नान कराती है। अलंकार से भूषित करती है। फिर उत्तर कदली गृह के सिंहासन पर बैठाकर आभियोगिक देव से चुल्ल हिमवान् पर्वत से गोशीर्ष चंदन मंगवाती है। अरणी की लकड़ी से अग्नि उत्पन्न कर गोशीर्ष चंदन की लकड़ी अग्नि में डालती है। होम करती है, भूतिकर्म करती है। रक्षापोटली बांधती है। प्रभु के कान के पास 2 पत्थर बजाती है, कान में कहती है - आप पर्वत जितने आयु वाले हो। फिर पुनः प्रभु और माता को जन्मभवन की शय्या में सुला देती है। (171B तक)

★ फिर शक्र का सिंहासन हिलता है, वह 7-8 कदम आगे नीचे बैठकर स्तुति करता है। हरिणेगमैषी को सुघोषा घंटा बजाने का आदेश देकर घोषणा कराता है कि इंद्र की आज्ञा है - प्रथम तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करने जाने के लिए सब जल्दी तैयार होकर आयो। (173B तक)

→ वज्रपाणि = वज्र है हाथ में जिसके।

शतक्रतु = क्रतु (श्रावक की) - प्रतिमा का सौ-शत है जिसे (कार्तिक सेठ के भव में)

सहस्राक्ष = उसके 500 मंत्री हैं। उनकी 1000 आँखें इन्द्र के प्रयोजन में व्यापृत होने से इंद्र की विवक्षा करी है।

मघवान् = महामेघा: यस्य वशे सन्ति स ।
पाकशासन:= पाक नाम वाले शत्रु का निराकरण करने वाला (शासन करने वाला)

★ हरिणेगमैषी 1 योजन के परिमंडल वाला सुघोषा घंटा बजाता है। एक घंट बजने पर शेष 31,99,999 विमानों में 31,99,999 घंटा एक साथ बजने लग जाते हैं। उनके Echo से पूरा सौधर्म कल्प बहरे जैसा हो जाता है फिर हरिणेगमैषी इंद्र का message देता है। सभी देव-देवी एकाग्र मन से सुनते हैं।

प्र. एक घंटा बजाने पर शेष घंटा कैसे बजते हैं?
उ. दिव्यप्रभाव से। यहाँ कोई अन्य युक्ति नहीं है।

प्र. 12 यो. तक ही शब्द सुनाते हैं तो पूरे सौधर्म कल्प में घंटा की आवाज कैसे सुनाती है?
उ. 1. दिव्य प्रभाव।
2. एक घंटा बजने पर सभी दिशाओं में, सभी महाघ के कोनों से आवाज गूँजती है। वह गूँजती हुई आवाज सुनाई देती है।

★ फिर इंद्र के पास सब तैयार होकर पहुँचे। इंद्र पालक आभियोगिक देव को लाख यो. चौड़ा, 500 यो. ऊँचा विमान बनाने की आज्ञा देता है। पालक 2 बार वैक्रिय समुद्घात कर विमान बनाकर इंद्र को कहता है।

→ विमान का वर्णन (175B - 181B) → रत्न, मणि, ~~सोना~~, तोरण, 8 मंगल
वर्णों का वर्णन (177B → 179A)
गंध " (179A → 179B)
स्पर्श " (179B → 179B)
पेक्षा मंडप (179B - 180B) _ सिंहासन (180B - 181A)
84000 सामानिक देवों के भद्रासन
8 अग्रमहिषी के भद्रासन (181B तक)

→ शक्र का आगमन (183B तक)
→ 5 रूप कर प्रभु को ग्रहण कर मेरु पर्वत - पांडुक वन - अभिषेक शिला सिंहासन पर लेगया।

★ वैमानिक इंद्रों की ऋद्धि →
(184B तक)

S.No.	इंद्र (कल्प)	सामानिकदेव	विमान	विमानकारी	पर्षदा के देव		
					सभ्यंतर	मध्यम	बाह्य
1.	शक्र	84000	32 ला.	पालक	12000	14000	16000
2.	ईशान	84000	28 ला.	पुष्पक	10000	12000	14000
3.	सनत्कु.	72000	12 ला.	सोमनस	8000	10000	12000
4.	माहेन्द्र	70000	8 ला.	श्रीवत्स	6000	8000	10000
5.	ब्रह्म	60000	4 ला.	नंदावर्त	4000	6000	8000
6.	लांतक	50000	50 हजार	कामगम	2000	4000	6000
7.	महाशुक्र	40000	40 हजार	प्रीतिगम	1000	2000	4000
8.	सहस्रार	30000	6 हजार	मनोरम	500	1000	2000
9.	आनत-प्राणत	20000	400	विमल	250	500	1000
10.							
11.	आरण-अच्युत	10000	300	सर्वतोभद्र	125	250	500
12.							

→ सौधर्म-सनत्कुमार-ब्रह्म-महाशुक्र-आनत-आरण → सुघोषा घंटा। हरिणेगमैषी सेनाधिपति विमान उत्तर दिशा से कल्प से बाहर निकला। दक्षिण-पूर्व रतिकर पर्वत पर उतरे।

→ ईशान-माहेन्द्र-लांतक-सहस्रार-प्राणत-अच्युत → महाघोषा घंटा। लघुपराक्रम सेनाधिपति। दक्षिण से विमान निकला। उत्तर-पूर्व रतिकर पर्वत पर उतरे।

→ सभी के आत्मरक्षक देव सामानिक देव से 4गुणा।

→ सभी के विमान 12 योजन विस्तीर्ण।

→ इंद्रध्वजा - 1000 यो. ऊँची।

→ शक्र जन्मभवन में उतरता है। शेष सभी वैमानिक-व्यंतर-ज्योतिष्क-भवनपति के इंद्र मेरु पर्वत पर ही उतरते हैं।

★ भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष इंद्रों की ऋद्धि का वर्णन (1848-1855)।

★ पहले अच्युतेंद्र आभियोगिक देवों को आज्ञा करता है। आभियोगिक देव गंगा-सिंधु नदी, नंदनवन वि. वन, प्रभास वि. तीर्थ, क्षीरसमुद्र वि, पद्मद्रह वि. सभी जगह से मिट्टी-पानी फूल-औषधी वि. लाते हैं। (1858-1874)

★ सबसे पहले अच्युतेंद्र अभिषेक - 8 अष्टप्रकारी पूजा वि. करता है। फिर आरणेंद्र... इस क्रम से शक्र सिवाय सभी भवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क इंद्र पूजा करते हैं। सबसे अंत

में ईशान इंद्र प्रभु को रूप कर धारण करता है। और शक्रेन्द्र 4 श्वेतवृषभ का रूप कर श्रृंग में से निकलती धार से अभिषेक - पूजा करता है। सभी इंद्र अपने अपने परिवार, सर्वबल, द्युति, शक्ति से अभिषेक करते हैं।

★ जब ये इंद्र अभिषेक करते हैं, तब अन्य देव हर्ष से कोई 32 प्र. की नाट्यविधि करते हैं (राजप्रश्नीय उपांग की टीका में), कोई बाजा बजाते हैं, कोई गाते हैं, कोई अलग-अलग आवाज करते हैं, कोई अलग-अलग चेष्टाएँ करते हैं इत्यादि।

★ फिर शक्र पुनः पंचरूप से प्रभु को धारण कर जन्मभवन में माता के पास सुलाता है। वैश्रमण (कुबेर) देव को 32 करोड़ हिरण्य-सुवर्णादि की वृष्टि का आदेश देता है।

(192 A तक)

→ घटित सोना = हिरण्य।
अघटित " = सुवर्ण।

★ यह जन्म का वर्णन विशेष से जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, जीवाभिगमादि से जानना।

★ ~~जन्म~~ जन्मद्वार पूर्ण हुआ (गा. 183)। नामद्वार चतुर्विंशति स्तव में कहेंगे।

चूर्णि → जन्माभिषेक के बाद ~~वैमानिक~~ एक शक्र नंदीश्वर द्वीप में पूर्व अंजनक पर्वत पर, ईशान उत्तर अंजनक पर्वत पर, चमर दक्षिण अंजनक पर्वत पर, बली वरुण पश्चिम अंजनक पर्वत पर अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं। उनके लोकपाल दधिमुख पर्वत पर महोत्सव करते हैं।

मलयगिरीय वृ. वंश स्थापना - सभी तीर्थंकर ~~[illegible]~~ स्तनपान नहीं करते किंतु अंगुठे से इंद्र द्वारा संक्रमित रस का आहार करते हैं।
टीका गा. 185-6

शक्र इक्षु की यष्टि हाथ में लेकर आया। ऋषभ देव नाभि राजा की गोद में बैठे थे। एक वर्ष से न्यून उम्र थी। प्रभु की दृष्टि इक्षु पर गई तो शक्र ने पूछा - भगवन्! इक्षु लोगे? प्रभु ने सीधा हाथ फैलाकर इक्षु ली। अतः उनका वंश इक्ष्वाकु वंश कहा गया।

ताड़वृक्ष के फल से एक युगल में से पुरुष मर गया। स्त्री को नाभि राजा ने 'ऋषभ की पत्नी होगी' इस प्रकार सोचकर रखा। वह स्त्री भगवान् और नंदा की समवयस्क थी।

भा. 187-9 भगवान् यौवन को प्राप्त हुए। उनकी कांति बुद्धि आदि तत्कालीन अन्य युगलों से अधिक थी। उनका संघयण संस्थान पूर्व के वैभव जितना ही था।

→ वृद्धि और जातिस्मरण द्वार पूर्ण (गा. 183)

प्रत. विवाह द्वार -

गा.190-1 भगवान् को भोग सामर्थ्य जानकर उनका वरकर्म (दूल्हे की क्रिया) इंद्र ने की और सुनंदा-सुमंगला की वधूकर्म इंद्र की अग्रमहिषियों ने किया।

प्रत. अपत्य द्वार -

गा.192-3 भगवान् की 6 लाख पूर्व आयु होने पर भरत-ब्राह्मी-सुंदरी-बाहुबली 5 संतान हुई।

मू.भा. 1 सुमंगला से ~~बाहुम~~ भरत-ब्राह्मी। सुनंदा से बाहुबली और सुंदरी।
बाहु और पीठ भरत-ब्राह्मी बने। सुबाहु और महापीठ बाहुबली और सुंदरी बने।
फिर सुमंगल से 49 युगल पुत्र के जन्मे।

गा.194-6 काल दोष से लोग इंद्रनीति का उल्लंघन करने लगे। लोगों ने प्रार्थना की। नाभि कुलकर के कहने से ऋषभ को राजा बनाया। इंद्रों ने अभिषेक किया। प्रजाजनों ने लाया हुआ पानी पैर पर डाला। इनके विनय से प्रभावित इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने 12 यो. लंबी 9 यो. चौड़ी विनीता नगरी बनाई। (चूर्णि में 'वीतशोका राजधानी')

~~गा.196-6~~ → विवाह, अपत्य, अभिषेक द्वार वर्ण। (गा. 183)

प्रत. राज्य संग्रह द्वार -

गा.197 राज्य में भगवान् ने हाथी, घोड़े, ऊँट, गाय वि. चतुष्पद का संग्रह किया।

गा.198 द्विपद में 4 व. का संग्रह उग्र = आरक्षक, उग्र दंड करने वाले।
भोग = गुरुस्थानीय
~~क्षत्रिय~~ राजन्य = मित्र
क्षत्रिय = जो शेष अतिरिक्त बचे।

प्रत. विविध लोकस्थिति -

गा.199-202 (द्वार गाथा) 1. आहार 2. शिल्प 3. कर्म 4. आमणा 5. विभूषणा 6. लेख 7. गणित 8. रूप 9. लक्षण 10. मान 11. पीत 12. व्यवहार 13. नीति 14. युद्ध 15. इषुशास्त्र 16. उपासना 17. चिकित्सा 18. अर्थशास्त्र 19. बंध 20. घात 21. मारण 22. यज्ञ 23. उत्सव 24. संमतत्व 25. मंगल्य 26. ~~वस्त्र~~ कौतुक 27. वस्त्र 28. गंध 29. माल्य 30. अलंकार 31. ~~32.~~ चूलोपनयन 33. विवाह 34. पति पत्नि 35. मृतक प्रजना 36. धर्मापना 37. स्तूप 38. शब्द 39. प्रश्नोत्तर 40. प्रश्न, विषयक विधि कथना।

प्रत. 1. आहार द्वार -

गा.203-209 पहले युगलिक कंद, मूल, पत्र, पुष्प, फल खाते थे। क्षत्रिय इक्षु और 17 व. के धान्य

कच्चे खाते थे।
जब वह नहीं पचता तो भगवान् को पूछा। ~~हाथ से घिसना, खल में के पास रखकर~~ हाथ से घिसकर चित्रके निकालकर — पानी में रखकर — घिसना + पानी में रखना — हाथ में रखना — बगल में रखकर — घिसना + पत्ताड़ना + हाथ रखना + बगल में रखना (द्विक संयोग में 3 भांगे, त्रिकसंयोग में 3 भांगे, चतुष्कसंयोग में 1 भांगा) — इसी विधि से खाने लगे।
→ बगल में रखना - मूल में न होने पर भी मूलटीका में होने से लिखा।

प्र. भगवान् को जातिस्मरण होने से अग्नि का उत्पाद क्यों नहीं कहा?
उ. अग्नि एकांत स्निग्ध या रूक्ष काल में उत्पन्न नहीं होती। उस समय एकांत स्निग्ध काल था।

धीरे-धीरे काल स्निग्ध-रूक्ष हुआ, तब वृक्षों के परस्पर घर्षण से अग्नि उत्पन्न हुआ। रत्नबुद्धि से ग्रहण करते हुए जले। धान्य पकाने का उपदेश दिया। धान्य सीधे अग्नि में डालने से जला। हाथी के कुंभ पर मिट्टी से पात्र बनाकर पहला कुंभकार शिल्प का स्थापन हुआ।

अव. 2. शिल्प द्वार -
गा. 210 ६ मूल भूत शिल्प - कुंभकार, लोहकार, चित्रकार, वस्त्रकार, नापित। प्रत्येक के २० भेद, कुल १०० शिल्प निकले।
→ काल दोष से प्राणियों के केश-नख-रोम बढ़े, अतः नापित की उत्पत्ति।

अव. 3-5 कर्म - भामणा - विभूषणा द्वार -
गा. 211 अग्नि उत्पन्न होने पर कृषि - वाणिज्यादि कर्म हुए। भामणा = भ्रमना, परिग्रह उस काल में हुआ। इंद्रों ने भगवान् को सजाया था, तो लोक में भी विभूषणा प्रवृत्त हुई।

अव. 6-7. लेख - गणित द्वार -
गा. 212 ऋषभदेव ने ब्राह्मी को सीधे हाथ से लिपि बताई। सुंदरी को उल्टे हाथ से संख्या बताई।

अव. 8-10. रूप - लक्षण - मान द्वार -
गा. 213 भरत को काष्ठकर्म - पुस्तककर्म इत्यादि रूप बताए। पुरुषादि लक्षण बाहुबली को कहे।
मान - 5 ① मान ② उन्मान ③ अवमान ④ प्रमाण ⑤ गणित।
① मान - 2 प्र. धान्यमान, रसमान। धान्यमान में भाजन रूप भावविशेष - 2 असई = 1 पसई

2 पसई = 1 सेतिका, 4 सेतिका = 1 कुलप | 4 कुलप = 1 प्रस्थक | इत्यादि |
रसमान में प्रस्थ के माप - चउसठिया, 32, 16 इत्यादि |
⑥ उन्मान = वजन का माप - कर्ष, पल इत्यादि |
⑦ प्रतिमान = लंबाई के माप - हाथ, दंड आदि |
⑧ प्रमाण = सोने वि के माप - गुंजादि |
⑨ गणित = 1, 2, 3 वि. घरदार में कहा |

अत. 11. पोत - 12. व्यवहार -
भा. 214 पोत के 2 अर्थ 1. पोतक → मणि, मोती आदि का संग्रह |
2. पोत → समुद्र में जहाज वि. |
व्यवहार 2 प्र. - 1. झगड़ा होने पर राजसभा में लेखन देना वि.)
2. लेन-देन का व्यवहार (उधार-व्याज)

अत. 13.14. नीति - युद्ध -
भा. 215 नीति - → प्र. की दंडनीति अथवा साम-दाम-दंड-भेद रूप नीति |
युद्ध - बाहु युद्ध वि. या पक्षी के युद्ध |

अत. 15.16. इषुशास्त्र - उपासना →
भा. 216 इषुशास्त्र = धनुर्वेद | वह ~~सजसम~~ राजधर्म में हुआ |
उपासना = सही-शुद्ध बनाना वि. | अथवा गुरु, राजा वि की उपासना |

अत. 17.-20. चिकित्सा - अर्थशास्त्र - बंध - घात →
भा. 217 बंध = बेड़ी पहनाना वि. | घात = दंडादि से मारना |

अत. 21-23. प्रारण - यज्ञ - उत्सव →
भा. 218 प्रारण - जीव का वध भरतकाल से चालू हुआ |
यज्ञ - सर्प वि. की पूजा |
उत्सव - इंद्रमहोत्सव वि. |

प्र. पूजा और उत्सव में क्या अंतर -
उ. पूजा - अनियतकाल में होने वाली |
उत्सव - नियत दिन में ही होने वाले |

अत. 24.-25. समवाय - मंगल →

गा.219 समवाय - गोष्ठियों का मिलना।
मंगल - 8मंगल देवों ने भगवान के आगे किए थे, लोक में भी चालू हुए।

अव. 26-30. कौतुक - वस्त्र - गंध - माल्य - अलंकार →
गा.220 पूर्व में देवों ने भगवान को कौतुकादि किए थे, वैसे ही लोक में प्रवृत्त हुए

अव. 31. चूला →
गा.221 चूडा = शुभ नक्षत्र - तिथि - मुहूर्त वि. में बच्चे की भान उतारना।

अव. 32. उपनयन →
गा.222 बच्चे को कला सीखने गुरु के पास या धर्म सुनने साधु के पास ले जाना।

अव. 33-34. विवाह - दत्ति →
गा.223-4 भगवान के विवाह को देखकर लोगों ने भी संतान के विवाह किए।
दत्ति - 3अर्थ 1. युगलिक धर्म के व्यवच्छेद के लिए भगवान ने भरत के साथ जन्मी ब्राह्मी बाहुबली को दी, बाहुबली के साथ जन्मी सुंदरी भरत को दी। तबसे कन्यादान शुरु हुआ।
2. भगवान को सांवत्सरिक दान देते हुए देखने पर लोक में भी दान चालू हुआ।
1. श्रेयांस को आहारदान देखकर लोगों ने भी आहार दान किया।

अव. 35-38. मृतक पूजा - धूपना - स्तूप - शब्द →
गा.225-6 मरुदेवी प्रथम सिद्ध हुई इसलिए देवों ने उनकी मृतक पूजा की तो लोक में भी मृतक पूजा शुरु हुई। धूपना यानि अग्निसंस्कार देवों द्वारा भगवान के अग्नि संस्कार से शुरु हुआ। भगवान के अग्नि संस्कार की जगह भरत ने स्तूप बनवाया तो लोक में भी चालू हुआ। शब्द = रोने का शब्द। भरत का दुःख दूर करने के लिए शक्र ने रोना चालू किया, तो लोक में भी चालू हुआ।

अव. 39-40. क्रीडापनक - पृच्छा →
गा.227-8 क्रीडापनक यानि खुशी से हँसना, सिंहनाद वि. अथवा बालक्रीडा अथवा संगीतादि।
पृच्छा - यक्ष वि. को प्रश्न पूछना, जिससे वह उत्तर दे।
- निमित्त-स्वप्नफलादि पूछना।
- सुख-दुःख रूप पूछना।

गा.229 इनमें से पातादि भरत काल में, हक्कारादि कृतयुगकाल में, शिल्पादि प्रभु से उत्पन्न हुए

चूर्णि → आचार्य से सीखने योग्य शिल्प, स्वयं करने वाले कर्म।

द्वार गाथा 199-202 पूर्ण॥

मलधारीय टीका अव. संबोधनादि द्वार सभी तीर्थंकरों के सामान्य से जानना –

गा.230 यहाँ ऋषभदेव का चरित्र कहते हैं। उनमें संबोधनादि द्वार सभी तीर्थंकरों के सामान्य जानना।

अव. संबोधनादि द्वार –

गा.231-3 द्वार गाथा 1. संबोधन 2. परित्याग 3. प्रत्येक 4. उपधि 5. अन्यलिंग 6. कुलिंग 7. गृहस्थाचार 8. परीषह 9. जीतोपपंभ 10. श्रुततंभ 11. प्रत्याख्यान 12. संयम 13. छद्मस्थ 14. तपकर्म 15. ज्ञानोत्पाद 16. संघ 17. तीर्थ 18. गण 19. गणधर 20. धर्मोपाय के देशक 21. पर्याय 22. अंतक्रिया ~~23. किसे कौन सा तप~~

अव. 1. संबोधन –

गा.234-7 सारस्वतादि 9 लोकांतिक देव स्वयंबुद्ध ऐसे तीर्थंकरों को विनंती करते हैं। तीर्थ प्रवर्तन

अव. 2. परित्याग –

गा.238-45 दीक्षा के पहले एक वर्ष तक तीर्थप्रभावना और अनुकंपा की बुद्धि से (कीर्ति की बुद्धि से नहीं) प्रतिदिन सूर्योदय से मध्याह्न काल तक 1 करोड़ 8 लाख सुवर्ण त्रिक-चतुष्क-चत्वर-नगर द्वार वि. में तीर्थंकर दान देते हैं।

'तुम माँगो, तुम माँगो' ऐसी घोषणा को वरवरिका कहते हैं। वह सभी जगह की जाती है। 'किमिच्छक' जो इच्छा हो, वह इसे दे।

पूरे वर्ष में 3 अरब 88 करोड़ 80 लाख सुवर्ण का दान।

अथवा परित्याग का अर्थ राज्यत्याग → महावीरस्वामी, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, मल्लि, वासुपूज्य, ये 5 तीर्थंकर कुमारवास में प्रव्रजित हुए। शांति-कुंथु-अर ये 3 चक्रवर्ती हुए। शेष 16 मांडलिक राजा थे।

अव. 3. प्रत्येक –

गा.246-7 महावीर स्वामी – अकेले

पार्श्वनाथ + मल्लिनाथ – 300 के साथ

वासुपूज्य – 600 के साथ

ऋषभदेव – 4000 के साथ

शेष सभी 1000 के साथ दीक्षित हुए।

अव. इसी द्वार में प्रसंग से वय भी कहते हैं –
गा. 248 महावीर स्वामी – नेमिनाथ – पार्श्वनाथ – मल्लिनाथ – वासुपूज्य ये 5 प्रथम वय कुमारत्व में 5, शेष प्रथम यौवन वय में दीक्षित हुए।

अव. 4. उपधि – 5–6 सन्यलिंग – कुलिंग →
गा. 249 सभी तीर्थंकर एक दूष्य सहित दीक्षा लेते हैं।
सभी तीर्थंकर तीर्थंकरलिंग में दीक्षा लेते हैं, अन्यथा कुलिंग में नहीं।

अव. प्रसंग से आए अन्य द्वार –
गा. 250–4 ~~दीक्षा~~ दीक्षा तप – सुमतिनाथ – एकासना
वासुपूज्य – चौथ भक्त
पार्श्वनाथ-मल्लि – अट्ठम
शेष – छट्ठ
दीक्षा नगर – ऋषभदेव – विनीता
नेमिनाथ – द्वारिका
शेष – जन्मभूमि
दीक्षा उद्यान – ऋषभदेव – सिद्धार्थवन वासुपूज्य – विहारगृहक
धर्मनाथ – वप्रगा मुनिसुव्रत – नीलगुफा
पार्श्वनाथ – आश्रमपद वीर – ज्ञातखंड
शेष – सहस्राम्रवन
दीक्षा काल – पार्श्वनाथ-नेमि-श्रेयांस-सुमति-मल्लि → पूर्वाह्णे।
शेष – पश्चिमाह्न में।

अव. 7. ग्रामाचार –
गा. 255–6 वासुपूज्य-मल्लि-पार्श्व-नेमि सिवाय सबने विषय सेवे।
अथवा किनका किस गाँव में विहार हुआ – सभी भगवान् मगधादि देश, राजगृहादि नगर आर्य क्षेत्र में विचरे। ऋषभदेव-नेमि-पार्श्व-वीर अनार्य क्षेत्रों में भी गए।

अव. 8. परीषह + 9. जीवोपलंभ –
गा. 257 सभी उदित परीषह सभी तीर्थंकरों ने जीते।
जीवादि 9 तत्त्व सभी समझकर दीक्षित हुए।

अव. 10.–12. श्रुतलंभ – पच्चक्खान – संयम →

गा. 258-9 सभी तीर्थंकरों को पूर्वभव का श्रुत होता है। ऋषभदेव को द्वादशांग, शेष को 11 अंग। ऋषभ-महावीर को 5 महाव्रत, शेष 22 को 4 महाव्रत। संयम भी ऋषभ-महावीर को छेदोपस्थापनीय और छेदोपस्थापनीय, शेष को यावत्कथिक सामायिक व यथा सभी को 17 प्र. का संयम।

गा. 260-334

~~गत. उ. स. ~~

तीर्थंकर No.	कुमार पर्याय	राज्य पर्याय	श्रमण पर्याय	छद्मस्थ पर्याय	आयु	गण
1.	20 लाख पूर्व	63 लाख पूर्व	1 लाख पूर्व	1000 वर्ष	84 लाख पूर्व	84
2.	18 "	53 ला.पू. + 1 पूर्वांग	1 ला.पू. - 1 पूर्वांग	12 "	72 "	95
3.	15 "	44 " + 4 "	1 " - 4 "	14 "	60 "	102
4.	12½ "	36½ " + 8 "	1 " - 8 "	18 "	50 "	116
5.	10 "	29 " + 12 "	1 " - 12 "	20 "	40 "	100
6.	7½ "	21½ " + 16 "	1 " - 16 "	6 मास	30 "	107
7.	5 "	14 " + 20 "	1 " - 20 "	9 "	20 "	95
8.	2½ "	6½ " + 24 "	1 " - 24 "	3 "	10 "	93
9.	50000 पूर्व	50000 पूर्व + 28 "	1 " - 28 "	4 "	2 "	88
10.	25000 पूर्व	50000 पूर्व	25000 पूर्व	3 "	1 "	81
11.	21 ला.वर्ष	42 ला.वर्ष	21 ला.वर्ष	2 "	84 ला.वर्ष	76
12.	18 "	—	54 "	1 "	72 "	66
13.	15 "	30 "	15 "	2 "	60 "	57
14.	7½ "	15 "	7½ "	3 वर्ष	30 "	50
15.	2½ "	5 "	2½ "	2 "	10 "	43
16.	25000 वर्ष	25000 + 25000 (मंडलिक) (चक्री)	25000 "	1 "	1 "	36
17.	23750 "	23750 + 23750	23750 "	16 "	95000 ला.	35
18.	21000 "	21000 + 21000	21000 "	3 दिन	84000	33
19.	100 "	—	54900 "	1 "	55000	28
20.	7500 "	15000 "	7500 "	11 मास	30000	18
21.	2500 "	5000 "	2500 "	"	10000	17
22.	300 "	—	700 "	54 दिन	1000	11
23.	30 "	—	70 "	84 दिन	100	10
24.	30 "	—	42 "	12 वर्ष	72	9

* पार्श्व-ऋषभ-मल्लि-नेमि को अट्ठम, वासुपूज्य को चौथ, शेष को छट्ठ भक्त पूर्वक केवलज्ञान हुआ। 15 ज्ञानोत्पाद - केवलज्ञान-तिथि-नक्षत्र वि.कहा।

* प्रत्यंगिरीय टीका में ~~xx. xx xxx~~ निर्युक्ति और भाष्य की गाथाएँ ~~आगे पीछे~~ Mix हो गई हैं। अतः निर्युक्ति No. आगे-पीछे Repeat होता है।

Page Date 185

★ ~~3600~~ तप महावीर स्वामी का विशिष्ट उग्र था।
14. तप ★ 23 तीर्थंकरों को दूसरे में केवलज्ञान हुआ, महावीर स्वामी को अंतिम प्रहर के अंत में हुआ। (अन्य मत मल्लि-वीर को पश्चिमाह्न में)
★ ऋषभदेव को पुरिमताल नगर में, वीर को ऋजुवालिका नदी के किनारे, शेष को जहाँ दीक्षित हुए उसी उद्यान में केवलज्ञान हुआ।

गा. 323-30**

निर्वाण (साधु साध्वी)	केवलज्ञान तिथि-नक्षत्र	साधु	साध्वी	प्रथम पारणे का नगर	दाता
10000	फा.व.11 उत्तराषाढा	84हजार	3लाख	हस्तिनापुर	श्रेयांस
1000	पो.सु.11 रोहिणी	1लाख	3.30"	अयोध्या	ब्रह्मदत्त
1000	का.व.5 मृगशिर	2"	3.36"	श्रावस्ती	सुरेन्द्रदत्त
1000	पो.सु.14 अभिजित्	3"	6.30"	साकेत	इन्द्रदत्त
1000	चै.सु.11 मघा	3.20"	5.30"	विजयपुर	पद्म
~~308~~ 324	चैत्री पूनम चित्रा	3.30"	4.20"	ब्रह्मस्थल	सोमदेव
500	फा.व.6 विशाखा	3"	4.30"	पाटलिखंड	महेन्द्र
1000	फा.व.7 अनुराधा	2½"	3.80"	पद्मखंड	सोमदत्त
1000	का.सु.3 मूल	2"	3"	श्रेयःपुर	पुष्य
1000	पो.व.14 पूर्वाषाढा	1"	1.20"	रिष्ठपुर	पुनर्वसु
1000	म.व.30 श्रवण	84हजार	1.06"	सिद्धार्थपुर	नंद
600	म.सु.2 शतभिषा	72"	1.03"	महापुर	सुनंद
6000	पो.सु.6 उत्तराभाद्रपद	68"	1"	धान्यकर	जय
7000	~~पो.सु.9~~ चै.व.14 रेवती	66"	1लाख 800	वर्धमान	विजय
800	पो.सु.15 पुष्य	64"	62400	सौमनस	धर्मसिंह
900	पो.सु.9 भरणी	62"	61600	मंदिरपुर	सुमित्र
1000	चै.सु.3 कृत्तिका	60"	60600	चक्रपुर	व्याघ्रसिंह
1000	का.सु.12 रेवती	50"	60000	राजपुर	अपराजित
500	मा.सु.11 अश्विनी	40"	55000	मिथिला	विश्वसेन
1000	फा.व.12 रेवती	30"	50000	राजगृह	ब्रह्मदत्त
1000	मा.सु.11 अश्विनी	20"	41000	वीरपुर	दिन्न
536	आ.व.30 चित्रा	18"	40000	द्वारावती	वरदिन्न
33	चै.व.4 विशाखा	16"	38000	कोपकड	धन्य
—	ढै.सु.10 उत्तराफाल्गुनी	14"	36000	कोल्लाकग्राम	बहुल

16. संग्रह - साधु-साध्वी - 14 पूर्वी वि. कहे। (गा. 278-86)
17. तीर्थ - तीर्थ यानि चतुर्वर्ण संघ। वह ऋषभादि के पहले समवसरण में हुआ, वीर के

द्वितीय समवसरण में हुआ। (गा. 287)

18. गण - गण = एक वाचना-आचार-क्रिया में रहे साधुओं का समूह / (कुल का समुदाय नहीं) / गण की संख्या कही। (गा. 288-90)

19. गणधर - जिनके जितने गण, उतने ही गणधर। मात्र वीर के 11 गणधर / (गा. 291)

20. देशक - जिन स्वयं, 14 वीं वि. / (गा. 292-3)

21. पर्यायद्वार - गा. 294 - गा. 327 कुमार - राज्य - श्रामण्य - सर्व आयु कही।

22. अंतक्रिया - ऋषभ - 6 उपवास, अष्टापद वासुपूज्य - चंपा
वीर - 2 उपवास, अपापा नेमि - उज्जयंत
शेष 22 - 1 मास उपवास / शेष 20 - संमेत शिखर /
साधु की संख्या कही। (गा. 328-34)

अब आनुसंगिक कहकर प्रकृत कहते हैं - (गा. 142)

गा. 334 सामायिक का निर्गम अधिकृत है। उसका निर्गम महावीर स्वामी से। महावीर स्वामी के पूर्वभव का अधिकार - मरीचि का भव। मरीचि का उत्थान ऋषभदेव से अतः ऋषभचरित्र कहूँगा। (गा. 196 से आगे Pg. No. 178)

गा. 335-6 विनीता नगरी के बाहर से आने वाले लोग विनीता के नगरजनों को कला में कुशल देखकर कहते हैं - अहो! ये लोग तो कुशल हैं, नगरी भी कुशल है।
उस कुशला नगरी के राजा होने से भगवान् 'कौशालिक' कहलाए (तत्र भवे)। वे ऋषभ भरत को विनीता, बाहुबली को बहली आदि 99 पुत्रों को भी राज्य देकर चैत्र व. 8 को प्रव्रजित हुए। कच्छ-महाकच्छ वि. 4000 राजा के साथ दीक्षा ली। (अन्य मत से कच्छ-महाकच्छ को राज्य दिया) सिद्धार्थवन में अशोकवृक्ष के नीचे पंचमुष्टि लोच किया, इंद्र की प्रार्थना से एक मुष्टि रहने दी। 'करेमि सामाइयं...' बोले। 'अरंत' तीर्थंकर नहीं बोलते। एक वर्ष तक भगवान् वस्त्रधारी रहे।
कच्छ महाकच्छ के पुत्र नमि-विनमि प्रभु के पास आकर राज्य माँगने लगे। प्रभु को वंदन करने आया हुआ धरणेंद्र इन्हें 48000 विद्या देता है। इनमें 5 महाविद्या - गौरी, गंधारी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति। विनमि वैताढ्य की उत्तरश्रेणि में 60 नगर और नमि दक्षिण श्रेणि में 50 नगर बसाकर रहा। विद्याधरों के 16 निकाय स्थापे।

टिप्पणक → 14 वां तपःकर्मद्वार - महावीर प्रभु का तप विशेष उग्र था क्योंकि वह 1. उपसर्ग सहित था 2. पानी सहित था 3. बहुत ज्यादा था। 12 वर्ष से अधिक काल में एक वर्ष में 11 दि. न्यून (349 दिन) पारणा किया। बाकी चौविहार उपवास और उपसर्ग सहित।

→ 16 वां संग्रह द्वार - यह साधु-साध्वी की संख्या भगवान् के स्वहस्त से दीक्षितों की

है, गणधरादि द्वारा दीक्षितों की नहीं, इस प्रकार गुरु कहते हैं।
श्रावक-श्राविका-पूर्वधरादि की संख्या प्रथमानुयोग से जानना। उनमें विसंवाद होने से मैंने यहाँ नहीं लिखी।

चूर्णि → कच्छ-महाकच्छ को प्रभु ने राज्य दिया। ५००० राजाओं के साथ दि दीक्षा ली।
(अन्य मत- प्रभु ने कच्छ-महाकच्छ वि. ५००० राजाओं के साथ दीक्षा ली।)

तत्पश्चात्
टीका अत- भगवान् ने ५००० के साथ दीक्षा ली। तो क्या ५००० को भगवान् ने दीक्षा दी?-
गा ७५१ ५००० लोगों ने स्वयं का पंचमुष्टि लोच कर प्रतिज्ञा ली कि जैसा ये भगवान् करेंगे, वैसा मैं भी करूंगा।
गा ७५२ प्रथम- उत्कृष्ट देवत्वया विचरने लगे।
गा ७५३-५५ वे जानते भी नहीं भिक्षाचर कैसे होते हैं? एक भगवान् तो मौन रहे। सबने कच्छ-महाकच्छ को पूछा, उन्होंने कहा हमें भी नहीं पता। वे सब गंगा नदी के दक्षिण किनारे पर वन में वल्कलवस्त्र धारी तापस हुए। नमि-विनमि ने कहा हमसे यह कष्ट सहन नहीं होता। कच्छ-महाकच्छ ने कहा प्रभु के पास जाओ। कलत: वे विद्याधर बने।

अत. भगवान् का प्रथम पारणा -
गा ७५६-६५ इस देश गजपुर सोमप्रभ राजा का पुत्र श्रेयांस युवराज (बाहुबली का पौत्र) श्रेयांस- सुबुद्धि नगरसेठ- राजा द्वारा मेरुपर्वत का अभिषेक- सूर्य की किरणों को जोड़ना- शत्रु से युद्ध करते पुरुष को श्रेयांस की सहाय के स्वप्न क्रमशः देखे गए। प्रभु वेश देखकर श्रेयांस को जातिस्मरण इक्षुरस का दान दिया दिव्य उत्पन्न हुए- वसुधारा, वस्त्रोत्क्षेप, दुंदुभि, संघचि जय ध्वनि तापस और लोग पूछते हैं- तूने कैसे जाना? श्रे.- जातिस्मरण से पूर्वभव में ९ भव का* संबंध है। इन ९ भवों का वर्णन 'वसुदेवहिंडी' में है।
श्रेयांस के पूर्वभव → यहाँ से छठे भव में मैं युगलिक स्त्री थी और भगवान् पुरुष थे। हम ह्रद के किनारे बैठे थे। तभी एक देव ह्रद में उतरा। जो पुरुष था, वह मोह को प्राप्त हुआ और बोला- हे! स्वयंप्रभा! तू कहाँ है? यह सुनकर मैं भी मोह को प्राप्त हुई। संज्ञा आने पर बोली- मैं ही स्वयंप्रभा हूँ। इसने ऐसा कैसे? मैं बोली →
ईशान कल्प श्रीप्रभ विमान ललितांग देव, स्वयंप्रभा देवी देव च्यवने पर बोला- पूर्वभव में मैंने तप कम किया, अतः तुमसे अलग होऊँगा देवी- कैसे तप कम किया? देव → जंबूद्वीप पश्चिम महाविदेह गंधिलावती विजय, गंधसमृद्ध नगर महाबल राजा स्वयंबुद्ध मंत्री द्वारा आयु शेष होने पर प्रतिबोध किया गया दीक्षा लेकर ललितांग मैं यहाँ आया कि ललितांग देव नंदीश्वरद्वीप गया वहाँ पर इसका च्यवन हुआ मैं स्वयंबुद्ध देव द्वारा प्रतिबोध कराई वहाँ से च्यवकर मैं वज्रसेन चक्री की श्रीमती पुत्रीबनी देव को देखकर जाति स्मरण

हुआ x ललितांग का पतन होने से मौन लिया x एकदा धात्री ने एकांत में पूछा - तू मौन क्यों है x मैंने कहा →

धातकीखंड, पूर्वविदेह, गंधलावती विजय x नंदीग्राम x 'निर्नामिका' नामक दरिद्र कन्या थी x माँ को तड़पते मरते देखा x मामा के यहाँ गई x पुरंधर आचार्य चार ज्ञानवाले, 14 पूर्वी मिले x 5 अणुव्रत स्वीकारे x अंत में ललितांग के कहने से निदान कर पुनः स्वयंप्रभा बनी x वहाँ से यहाँ श्रीमती बनी x ललितांग से न बोलने से मौन अच्छा है अतः मौन लिया x धात्री ने पूरा चरित्र पट पर बनाया x चक्री की राजसभा में पट दिखाया, कोई नहीं पहचाना x धातकीखंड गई x राजमार्ग पर चित्र देखकर वज्रजंघ ने पहचाना x धात्री ने आकर बात की x चक्री ने वज्रजंघ को बुलाकर विवाह कराया x चक्री ने पोट्ठिलपाल को राज्य देकर दीक्षा ली x मुझे भी पुत्र हुआ x एकदा पोट्ठिलपाल के सामंत में झगड़ा हुआ x हमें बुलाया x हम गए x वापस आते हुए बीच में सागरसेन - मुनिसेन मुनि (केवली) भाई मुनि मिले x देशना सुनकर वैराग्यवासित मन सहित हम घर आए x हम घर नहीं थे तब तक राज्यलोभी हमारे पुत्र ने नौकरों को भेजा लिया x हम आए तब चूँए से पटककर मार दिया x वहाँ से मैं यहाँ आई (पृ. 10, 88 पर नीचे से तीसरी लाईन की बात यहाँ पूर्ण हुई)

वह पुंडलिक उप. रहकर सौधर्म देव बने x पद्म सुविधि वैद्य के पुत्र बने x मैं उनका छोटा मित्र श्रेष्ठिपुत्र था x वहाँ से प्रभु वज्रनाभ चक्री बने, मैं उनका सुयश नामक सारथि था x फिर सभी सर्वार्थसिद्ध में देव बने x यहाँ मैं सर्वार्थसिद्ध से से आया।

इस संक्षेप में - 1. ललितांग देव - स्वयंप्रभा 2. वज्रजंघ - श्रीमती 3. पुंडलिक 4. सौधर्म कल्प में देव 5. वैद्य - श्रेष्ठिपुत्र 6. अच्युत देव 7. वज्रनाभ चक्री - सारथि 8. सर्वार्थसिद्ध में देव।

इस प्रकार सारथि के भव में वज्रसेन तीर्थंकर का वेश देखा था, जो यहाँ ऋषभ के वेश देखकर याद आया।

अब वसुधारा का जघन्य - उत्कृष्ट परिणाम -

गा. 332 जघन्य साढ़े बारह लाख, उत्कृष्ट साढ़े बारह करोड़।

अब भगवान् को प्रथम भिक्षा देने का फल -

गा. 333-40 तीर्थंकरों को प्रथम भिक्षा देने वाले, ये प्रतनुकषाय रागद्वेष वाले, दिव्य पराक्रम वाले होते हैं कुछ उसी भव में, तृतीय भव में सिद्ध होते हैं।

अब ऋषभ को केवलज्ञान -

गा. 335-40 एकदा भगवान् तक्षशिला गए। वहाँ के उद्यानपाल ने बाहुबलि को निवेदन किया। उसने सोचा - कल वंदन करूँगा। दूसरे दिन भगवान् ने विहार किया। प्रभु के चरण

के पास इयो. ऊँचा दंड और उसके ऊपर त्रियो. विध्वंभ छत्रा धर्मचक्र बनाया। ये सब रत्न का था।

प्रभु विचरते हुए पुरिमतात्व पधारे। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे अट्ठम पूर्वक फा.व. ११ को उत्तराषाढा नक्षत्र में केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

चूर्णि → 'धर्म चक्र' के संबंध में चूर्णिकार का कोई अपना मत नहीं है। उन्होंने उपरोक्त मत को 'एवं केइ इच्चंति' कर प्रस्तुत किया। उन्होंने 'दसन्नविभासा' का अतिदेश भी किया है। तथा दंड की ऊँचाई इयो. लिखी है।

अन्य मत में लिखा है कि प्रभु केवलज्ञान के बाद पधारे थे। (Pg. No. 181)

मलयगिरीय टीका सा.पृ.५१

केवलज्ञान के बाद उन्हें जरा नहीं होती, देवादि पूजा करते हैं, देव नख लोम अवस्थित करते हैं।

सा.पृ.-५१ प्र. पेज-६१

उसी दिन भरत को २ निवेदन किए - प्रभु को केवलज्ञान और चक्र उत्पन्न हुआ। 'किसकी पहली पूजा करूँ?' पिता की पूजा में चक्र पूजा हो ही जाती है। मरुदेवी को लेकर वह ऋषभ पुत्र के शोक से रोती हुई उसकी आँखे बंद हो गई थी। भरत ऋद्धि का वर्णन करता है। आँखे खुल जाती है। भगवान् को समवसरण में बैठे देखते-देखते ही उसे केवलज्ञान हुआ। उसी समय निर्वाण हुआ। देवों ने प्रथम सिद्ध की पूजा कर शरीर क्षीरोदधि समुद्र में डाला।

भरतपुत्र ऋषभसेन गणधर बने। ब्राह्मी साध्वी, भरत - सुंदरी श्रावक - श्राविका।

जो तापस थे, कच्छ - महाकच्छ (सिवाय सब आगए। सबने दीक्षा ली।

भरत का दिग्विजय, बाहुबली के साथ युद्ध, बाहुबली की दीक्षा - केवलज्ञान।

मरीचि ने प्रभु के पास दीक्षा ली और ११ अंग पढ़े।

चूर्णि → दिग्विजय में नवनिधि के स्वरूप के लिए १५ गाथा -

1. णेसप्प - निवेश, ग्राम, आकर, नगर, पत्तन, द्रोणमुख, मडंब, स्कंधावार, आपेण, गृह।
2. पांडुय - गणित, मान-उन्मान-प्रमाण, धान्य-बीज
3. पिंगलय - पुरुष-महिलाओं के आभरण, अश्व, हाथी
4. सर्वरत्न - सर्व प्रकार के रत्न, चक्रवर्ती के १४ रत्न।
5. महापद्म - वस्त्र, रंग, धोवण, वि.।
6. काल - कालज्ञान, भव्य पुराण, १०० शिल्प, कर्म वि.।
7. महाकाल - लोह, चांदी-सोना, मणि, मुक्ति, शिला, प्रवाल, खदान वि.।
8. माणवक - योद्धा, कवच, हथियार, युद्धनीति, दंडनीति।
9. शंख महानिधि - नाट्य, नाटक विधि, ४९ के काव्य।

प्रत्येक निधि ४ यो. ऊँची, ९ यो. चौड़ी, १२ यो. लंबी पेटी रूप में गंगा के किनारे होती है।

प्रत्येक निधि वैडूर्य मणि के ऊपर बनी, सुवर्णमय होती है।

→ छत्र-दंड-खड्ग-चक्र रत्न, ये ४ एकेंद्रिय रत्न आयुध शाला में उत्पन्न हुए।
चर्म-मणि-काकिणी रत्न, + 9 महानिधि श्रीगृह में उत्पन्न हुई।
सेनापति-गाथापति-वर्द्धकि-पुरोहित रत्न, ये ५ मनुष्य रत्न विनीता राजधानी में उत्पन्न हुए। अश्वरत्न-हस्तिरत्न, ये दो वैताढ्य गिरि की तलेटी में उत्पन्न हुए। स्त्री रत्न वैताढ्य की उत्तरश्रेणि के राजा विनमि ने दिया। इस प्रकार भरत को १४ रत्न हुए।

→ 'बत्तीसाए वि पसत्थपत्थिवगुणेहिं जुत्तो' - भरत राजा के ३२ गुणों से युक्त था।

→ 99 भाई प्रभु के पास गए। तब प्रभु ने अंगारदाहक का दृष्टांत दिया - एक अंगारदाहक, वह पानी लेकर जंगल गया x ऊपर सूर्य, पास में अग्नि, लकड़ी काटने का श्रम x पानी खत्म हुआ x घर गया x मूर्च्छित हुआ x स्वप्न में सभी तालाब-नदी-समुद्र पीए तो भी प्यास न बुझी x फिर ढूँढते हुए एक पुराना कुँआ मिला x तृणगुच्छे को रस्सी से बांधकर कुए में डाला x पानी टपका x चाटा, वह कपड़ा भीगा x कुए की दूंद बची थी, वह जीभ पर लगाता है x इस प्रकार तुमने भी अनुत्तर विमान में सभी अनुभूतपूर्व शब्दादि भोगे तो भी तुम्हें तृप्ति न हुई।
इस प्रकार वैतालीय अध्ययन (सूत्रकृतांग का दूसरा अध्ययन)
[यह दृष्टांत मलयगिरीय, हरिभद्रीय, शिष्यबोध्य सभी टीका में है।]

मलयगिरीय टीका अ. अब. मरीचि द्वारा त्रिदंडी वेश का चिंतन -
गा. 350 गर्मी में स्नान परीषह से पराजित मरीचि ने सोचा -
गा. 351-2 मेरु पर्वत जैसे भार वाले श्रमण गुणों को मैं नहीं पाल सकता, गृहस्थ बनना भी अनुचित है। अतः उसने कुलिंग बनाया -
गा. 353 श्रमण मन-व-काया के ३ दंड से विरत है, मैं समर्थ नहीं हूँ अतः याद रखने के लिए त्रिदंड रखूँगा।
गा. 354 श्रमण लोच - इंद्रिय रूप द्रव्य-भाव से मुंड हैं, मैं इंद्रिय से भावमुंड नहीं हूँ अतः उस्तरे से मुंड होऊँगा और चोटी रखूँगा।
श्रमण: सर्व जीव वध से विरत हैं, मैं स्थूल प्राणातिपात से विरत रहूँगा।
गा. 355 श्रमण अकिंचन हैं, मैं जनोई वि. रखूँगा। वे शील से सुगंधी हैं, मैं चंदन करूँगा।
गा. 356 श्रमण मोह रहित हैं, मैं छत्र से आच्छादित रहूँगा। वे चंपल नहीं पहनते, मैं उपानह रखूँगा।
गा. 357 वे श्वेत वस्त्र वाले या जिनकल्पिकादि निर्वस्त्र हैं, मैं कषाय से कलुष होने के कारण भगवा वस्त्र पहनूँगा।
गा. 358 वे अत्यारंभ के त्यागी हैं, मैं समर्थ नहीं हूँ अतः परिमित जल से स्नान और

* याज्ञवल्क्य-सुलसा की कथा टिप्पणक में Pg. No. 194 पर।

Page
Date 191

पान करेंगा।

गा. 355-61 इस प्रकार उसने निजमति के कल्पित वेश से परिव्राजक मत शुरु किया। भगवान् के साथ विहार करता और भिन्न वेश देखकर पूछते लोगों को धर्मोपदेश देकर भगवान् के पास भेजता।

गा. 362-5 एकदा भगवान् अष्टापद पर समवसरे। भरत रथ गाड़ी भरकर ले गया। आधाकर्म-आहृत-राजपिंड होने से साधुओं ने ना पाड़ी। अतः भरत बहुत खेद करता है। उसके दुःख कम करने के लिए इंद्र ने पूछा भगवान् अवग्रह कितने प्रकार? भगवान् उ. 1. देवेन्द्र का 2. राजा का 3. गृहपति का (मांडलिक राजा) 4. सागारिक (शय्यातर) का 5. साधर्मिक (साधु) का। ये अवग्रहों में उत्तर-उत्तर के अवग्रह से पूर्व-पूर्व का अवग्रह बाधित है। (अर्थात् इंद्र की अवग्रह की अनुज्ञा होने पर भी राजा वि. को भी सूचना पड़ता है।

तब इंद्र बोला- प्रभु! मैं अवग्रह की अनुज्ञा देता हूँ। भरत को लगा- अहो! अवग्रह का लाभ मिले। अतः उसने भी अवग्रह की अनुज्ञा दी।

भरत ने शक्र को पूछा इतनी भक्तपान का क्या करूँ? शक्र - श्रावकों की भक्ति करो भरत ने भक्ति की।

भरत ने शक्र का अरिस्वरूप देखकर पूछा- क्या आप स्वर्ग में भी इसी रूप में रहते हो? शक्र - नहीं। भरत - तो असली रूप दिखाओ। शक्र - आप प्रथम पुरुष हो इसलिए एक भंग दिखाता हूँ। शक्र ने एक उंगली बताई। देखकर भरत को बहुत खुश हुआ। उसने उंगली की स्थापना कर महोत्सव किया। तब से इंद्र महोत्सव शुरु हुआ।

भरत ने श्रावकों को कहा तुम सब मेरे रसोई में जीमना, स्वाध्याय में तत्पर रहना और रोज मेरे महल के दरवाजे पर बोलना 'जितो भवान् वर्द्धते भयं तस्मान्मा हन मा हन'। लोगों की भीड़ बहुत बढ़ गई। रसोईए ने कहा कि खबर नहीं पड़ती कौन श्रावक है। अतः भरत उनकी परीक्षा कर काकिणीरत्न से चिह्न बनाता है। हर 6 महीने में परीक्षा करता है। इस प्रकार ब्राह्मण हुए। आदित्ययशा के पास काकिणीरत्न नहीं था, अतः उसने सोने के जनोई, उसके बार चांदी, उसके बार ताम्बे के जनोई आए। प्रायः भरत के घर 8 राजाओं तक 8 तीर्थंकर तक वे धर्म में प्रवृत्त रहे, उसके बार वे 9वें तीर्थंकर के अंतर में मिथ्यात्व को प्राप्त हुए क्योंकि साधु का विच्छेद हुआ। अथवा 8 राजाओं तक जैन रहे - आदित्ययशा महायश अतिबल बलभद्र बलवीर्य कार्तवीर्य जलवीर्य दंडवीर्य। इन 8 राजाओं ने इंद्र द्वारा लगाया हुआ प्रभु का मुकुट पहना, फिर मुकुट बड़ा होने से नहीं पहन पाए। इन 8 राजाओं ने सह भरत का राज्य किया।

साधुओं को लोगों ने दान देना शुरु किया क्योंकि भरत भी उनकी पूजा करता था।

तीर्थंकरस्तुति रूप और श्रावक धर्म के प्रतिपादक चार वेदों को भरत ने किया, उनके स्वाध्याय के लिए। अनर्थ वेद तो याज्ञवल्क्य-सुलसा** द्वारा किए गए।

भगवान् का अष्टापद पर निर्वाण हुआ, स्तूप किए, अग्निकुंड किए, भरत ने मंदिर

वज्रतप्या।

गा. 367-8 प्रश्न ने भगवान् को पूछा - तीर्थंकर, चक्री, वासुदेव कि. पूछे। जिसप्रकार भगवान् चक्री कि.
प्रश्न 98 कहे, उस प्रकार मैं यहाँ कहूँगा

गा. 369-415

S.No.	तीर्थंकर	ऊँचाई	नगर	माता	पिता
1.	ऋषभ	500 धनु	इक्ष्वाकुभूमि	मरुदेवी	नाभि
2.	अजित	450	अयोध्या	विजया	जितशत्रु
3.	संभव	400	श्रावस्ती	सेना	जितारि
4.	अभिनंदन	350	विनीता	सिद्धार्था	संवर
5.	सुमति	300	कौशलपुर	मंगला	मेघ
6.	पद्मप्रभ	250	कौशांबी	सुसीमा	धर
7.	सुपार्श्व	200	वाणारसी	पृथ्वी	प्रतिष्ठ
8.	चंद्रप्रभ	150	चंद्रानन	लक्ष्मणा	महासेन
9.	सुविधि	100	काकंदी	रामा	सुग्रीव
10.	शीतल	90	भद्रिलपुर	नंदा	दृढरथ
11.	श्रेयांस	80	सिंहपुर	विष्णु	विष्णु
12.	वासुपूज्य	70	चंपा	जया	वसुपूज्य
13.	विमल	60	कंपिल	श्यामा	कृतवर्मा
14.	अनंत	50	अयोध्या	सुयशा	सिंहसेन
15.	धर्म	45	रत्नपुर	सुव्रता	भानु
16.	शांति	40	गजपुर	अचिरा	विश्वसेन
17.	कुंथु	35	"	श्री	सूर
18.	अर	30	"	देवी	सुदर्शन
19.	मल्लि	25	मिथिला	प्रभावती	कुंभ
20.	मुनिसुव्रत	20	राजगृह	पद्मावती	सुमित्र
21.	नमि	15	मिथिला	वप्रा	विजय
22.	नेमि	10	शौरीपुर	शिवा	समुद्रविजय
23.	पार्श्व	9 हा.	वाणारसी	वामा	अश्वसेन
24.	महावीर	7	कुंडपुर	त्रिशला	सिद्धार्थ

* पद्मप्रभ-वासुपूज्य → रक्त वर्ण। चंद्रप्रभ-सुविधि → गौर। सुव्रत-नेमि → श्याम। पार्श्व-मल्लि → नील (शिवपुर)
शेष 16 जिन सुवर्ण वर्ण।

* मुनिसुव्रत-नेमि → गौतम गोत्र। शेष काश्यप गोत्र।

Page
Date 153

S.No.	चक्री	ऊँचाई	आयु	नगर	माता - पिता
1.	भरत	500 धनु	84 लाख पू.	विनीता	सुमंगला - ऋषभ
2.	सगर	450	72 "	अयोध्या	यशवती - सुमित्रविजय
3.	मघवा	42½	5 लाख वर्ष	श्रावस्ती	भद्रा - समुद्रविजय
4.	सनत्कुमार	41½	3 "	हस्तिनापुर	सहदेवी - अश्वसेन
5.	शांति	40	1 "	"	अचिरा - विश्वसेन
6.	कुंथु	35	95000	"	श्री - सूर
7.	अर	30	84000	"	देवी - सुदर्शन
8.	सुभूम	28	60000	"	तारा - कार्तवीर्य
9.	महापद्म	20	30000	वाराणसी	ज्वाला - पद्मोत्तर
10.	हरिसेन	15	10000	कंपिल्य	मेरा - महाहरि
11.	जय	12	3000	राजगृह	वप्रका - विजयराजा
12.	ब्रह्मदत्त	7	700	कंपिल्य	चूलणी - ब्रह्म

★ सभी - सुवर्ण वर्ण वाले।
★ सभी काश्यप गोत्र।
★ सुभूम - ब्रह्मदत्त के नहीं नरक। मघवा - सनत्कुमार → सनत्कुमार कल्प। शेष 8 मोक्ष में गए।

S.No.	वासुदेव	बलदेव	प्रतिवासुदेव	ऊँचाई	आयु	बलदेव	निवास	गति	पिता
1.	त्रिपृष्ठ	अचल	अश्वग्रीव	80 धनु	84 लाख	85 लाख	पोतनपुर	नरकी	प्रजापति
2.	द्विपृष्ठ	विजय	तारक	70	72 "	75 "	द्वारिका	छठी	ब्रह्म
3.	स्वयंभू	भद्र	मेरक	60	60 "	65 "	"	"	रुद्र
4.	पुरुषोत्तम	सुप्रभ	मधुकैटभ	50	30 "	55 "	"	"	सोम
5.	पुरुषसिंह	सुदर्शन	निशुंभ	45	10 "	17 "	अश्वपुर	"	शिव
6.	पुरुषपुंडरिक	आनंद	बलि	29	65 हजार	85 हजार	चक्रपुर	"	महाशिव
7.	दत्त	नंदन	प्रह्लाद	26	52 हजार	65 हजार	वाणारसी	5वीं	अग्निसिंह
8.	नारायण	पद्म	रावण	16	12 हजार	15 हजार	राजगृह	6ठी	दशरथ
9.	कृष्ण	बलराम	जरासिंधु	10	1000	1200	मथुरा	3री	वसुदेव

★ बलदेव नील वस्त्र वाले, वासुदेव पीत वस्त्र वाले।
★ बलदेव - रत्न और मुशल योधी, वासुदेव - चक्र योधी।
★ ताल - गरुड चिह्न वाली ध्वजा।
★ सभी वासुदेव नीलवर्ण, बलदेव शुक्लवर्ण।
★ नारायण - पद्म काश्यप गोत्र। शेष गौतम गोत्र।
★ माता के नाम -
वासुदेव → मृगावती, उमा, पृथ्वी, सीता, अमृता, लक्ष्मीमती, शेषमती, केतुमती, देवकी
बलदेव → भद्रा, सुभद्रा, सुप्रभा, सुदर्शना, विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता, रोहिणी।

★ वासुदेव-बलदेव के पिता एक ही होते हैं, माता अलग होती है।
★ बलदेव की गति- बलदेव मोक्ष में जाएँगे। बलदेव सभी देवलोक में जाएँगे, वहाँ से मनुष्य गति प्राप्त कर मोक्ष में जाएँगे।
★ सभी वासुदेव निदान से ही बनते हैं। अतः वे अधोगामी होते हैं।
सभी बलदेव निदान से नहीं होते। वे ऊर्ध्वगामी होते हैं।

टिप्पणक → सुलसा-याज्ञवल्क्य से अनार्य वेद की उत्पत्ति → सुलसा और सुभद्रा २ परिव्राजिका, सुलसा शास्त्र में विद्वान्, याज्ञवल्क्य नामक परिव्राजक ने वाद बजवाया, जो वाद में मुझे हराए, उसका मैं शिष्य बनूँगा, सुलसा ने स्वीकारा, वाद में जीती, परिव्राजक शिष्य बना, अतिपरिचय से अकार्य हुआ, सुलसा को गर्भ रहा, सुभद्रा ने उपालंभ दिया, गुप्तता से गर्भ पालन, रात्रि में पुत्र को जन्म देकर, पीपल के वृक्ष नीचे छोड़कर परिव्राजक के साथ भाग गई, पद के अनुसार ढूँढती सुभद्रा ने बालक देखा, पीपल के पेड़ से गिरे पीपलफल को वह चखता था अतः 'पिप्पलाद' नाम रखा, सुभद्रा ने पढ़ाया, विद्वान् हुआ, माता-पिता के संबंध से उनके ऊपर गुस्सा आया, अनार्य वेद बनाए, उनमें प्ररूपणा की - शांति के लिए और स्वर्ग के लिए पशु वि. का होम करना चाहिए, पर्वतक नामक मित्र हुआ, मधु नामक एक राजपुत्र, राजसभा में स्वयंवर में आए राजाओं से अपमानित करके अंतर बना, उसने भी सभी राजाओं को नरक भेजने के लिए पिप्पलाद को सहाय करी, सभी जगह रोग उत्पन्न किए, परिव्राजक ने राजाओं को कहा पशु वि. के यज्ञ कराओ तो ठीक होगा, यज्ञ में होमने से पशु भी स्वर्ग जाते हैं। राजाओं ने यज्ञ किए तब अंतर ने रोग बंद किए और यज्ञ में मरते पशुओं को विमान से स्वर्ग जाते हुए दिखाया, पिप्पलाद ने माता-पिता को राजा की आज्ञा तक 'ये मोक्ष में जाएँगे' इस बहाने से होम दिया, वे तबसे अनार्य वेद हुए। यह संक्षेप में कहा, विस्तार से तो हरिवंश में देखना।

→ चौथा वासुदेव मधुकैटभ → वह मधु ही था, कैटभ उसका भाई था।
कैटभेन उपलक्षितः मधुः मधुकैटभः।

मलयगिरीय टीका
तीर्थंकरों के अंतर - (१७ गाथा में)
ऋषभ के ५० लाख करोड़ सागरोपम बाद अजितनाथ भगवान् उत्पन्न हुए।
अजितनाथ के बाद ३० ला.क.सा. बाद संभवनाथ।
संभवनाथ के बाद १० ला.क.सा. बाद अभिनंदन स्वामी। अभिनंदन स्वामी के ९ ला.क.सा. बाद सुमतिनाथ। सुमतिनाथ के ९०००० क.सा. बाद पद्मप्रभस्वामी। पद्मप्रभस्वामी के ९००० क.सा. बाद सुपार्श्वनाथ। सुपार्श्वनाथ के ९०० क.सा. बाद चंद्रप्रभस्वामी। चंद्रप्रभ स्वामी के ९० क.सा. बाद सुविधिनाथ। सुविधिनाथ के ९ क.सा. बाद शीतलनाथ।

~~शीतलनाथ के 100सा. + उसमें कई जाते वर्षों से न्यून एक सा. बाद~~
शीतलनाथ के 100सा. + ८६ला. २८६. वर्ष न्यून १ क.सा. बाद श्रेयांसनाथ।
श्रेयांसनाथ के ५४सा. बाद वासुपूज्य। वासुपूज्य स्वामी के ३०सा. बाद विमलनाथ।
विमलनाथ के बाद ९सा. अनंतनाथ। अनंतनाथ के ४सा. बाद धर्मनाथ। धर्मनाथ के
३/४ पा. न्यून ३सा. बाद शांतिनाथ। शांतिनाथ के १/४ प. बाद कुंथुनाथ। कुंथुनाथ
के ½ हजार करोड़ वर्ष न्यून पा. के चौथे भाग बाद अरनाथ। अरनाथ के
१ हजार करोड़ वर्ष बाद मल्लिनाथ। मल्लिनाथ के ५४लाख वर्ष बाद मुनिसुव्रत स्वामी।
मुनिसुव्रत स्वामी बाद ६लाख वर्ष बाद नमिनाथ। नमिनाथ के ५लाख वर्ष बाद
नेमिनाथ। नेमिनाथ के ८३००० वर्ष बाद पार्श्वनाथ भगवान्। पार्श्वनाथ के २५० वर्ष
बाद वीर स्वामी उत्पन्न हुए। 750

[ये अंतरे तीर्थंकरों के जन्म के आश्रय से लिखे हैं किंतु निर्वाण अनुसार होने पर काल बराबर होता है]

~~अजितनाथ चक्री- वासुदेव वि. सबके मित्र अंतरे~~

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमति पद्मप्र सुपार्श्व चंद्रप्रभ सुविधि शीतल
भरत सगर — — — — — — — — — —

श्रेयांस वासुपूज्य विमल अनंत धर्म — शांति कुंथु अर
— — — — — — मघवा सनत्कुमार शांति कुंथु अर
त्रिपृष्ठ द्विपृष्ठ स्वयंभू पुरुषोत्तम पुरुषसिंह — — — —

— — — मल्लि मुनिसुव्रत — नमि — नेमि
सुमूम — महापद्म — हरिसेन जय कृष्ण
पुरुषपुंडरिक — दत्त — नारायण — कृष्ण

पार्श्व वर्द्धमान
ब्रह्मदत्त —

★ ५२। की गाथा ~~चक्किदुगं हरिपणगं पणगं चक्कीण केसवो चक्की।~~
केसव चक्की केसव दु चक्कि केसी य चक्की य ॥५२॥
पू. हरिभद्रसूरि म. ने इसी गाथा का अर्थ न समझाने से याकिनी महत्तरा को धर्म माता रूप में स्वीकारा।

* अर्थभेद चूर्णि में Pg. No. 200 पर

गा. 422-32 भा. 44 भरत ने पूछा - भगवान्! इस सभा में कोई ऐसा है जो यहाँ भरत क्षेत्र में 24 तीर्थंकर होगा। भगवान् ने सीधे बताया - यह अंतिम तीर्थंकर होगा। यह प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठ होगा, तथा विदेह में मूका नगरी में प्रियमित्र चक्री होगा। भरत उसे तीन प्रदक्षिणा देकर कहता है - मैं परिव्राजक वेश को वंदन नहीं करता हूँ किंतु तू तीर्थंकर होगा, इसलिए वंदन करता हूँ। यह सुनकर उसने सोचा - अहो! मेरा कुल उत्तम है, मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर, पिता प्रथम चक्री, मैं प्रथम वासुदेव और अंतिम तीर्थंकर।

इस प्रकार भरत ने अष्टापद को जो-जो पूछा, वह चूर्णि द्वार पूर्ण। (## द्वार गा. 366)

गा. 433-35 भा. 45 अष्टापद पर 10000 साधुओं के साथ भगवान् का निर्वाण हुआ, उपवास पूर्वक। देवों ने उचित किया। पूर्व दिशा में भगवान् के लिए गोल, दक्षिण में त्रिकोण चिता इक्ष्वाकु वंश के साधुओं के लिए, पश्चिम में चौकोर शेष साधुओं के लिए। अग्निकुमार देवों ने मुख से अग्नि डाली जिससे लोगों में प्रसिद्ध हुआ कि देव अग्नि मुख वाले होते हैं। मांस-खून जलने के बाद मेघकुमार देवों ने क्षीरोदधि के जल से आग बुझाई।

नीचे हाथ में ऊपर की दाढ़ शक्र ने, नीचे की चमरेंद्र ने, उल्टे हाथ में ऊपर की दाढ़ ईशान ने, नीचे की बलि ने ग्रहण की। शेष देवों ने शेष अंग ग्रहण किए। राजा वि. ने मस्तक ग्रहण करी। शेष लोकों ने मस्तक से सिर पर 3 तिलक किए, तबसे ब्राह्मणों की तरह 3 तिलक प्रसिद्ध हुए।

भरत ने सौ योजन लंबा, पचास ऊँचा सिंहनिषद्या नामक मंदिर बनवाया। सभी तीर्थंकरों की उनके वर्ण-प्रमाण से युक्त और जीवाभिगम सूत्र में कहे वर्णनानुसार प्रतिमाएँ रत्नों से बनवाई। सौ भाईओं की प्रतिमा, स्वयं की प्रतिमा 100 स्वरूप बनवाए। द्वारपाल रूप में लोहे के यंत्रमय पुरुष बनाए। अष्टापद पर्वत को सभी ओर से खोदा। 8 योजन पर 8 चढ़ाव पंक्तिरूप से बनाए। सगर के पुत्रों द्वारा भवनराग से गंगा को उतारा वि. अन्य ग्रंथों से जानो।

देवों ने दाढ़ वि. ली तो श्रावक उनसे मांगने लगे। उनके अतिशय यत्न से उपद्रुत हुए देव बोले - अहो! याचक, तब से याचक शब्द रूढ़ हुआ।

वे लोग चिताओं में से अग्नि घर पर ले गए। तब से अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रसिद्ध हुए। उन अग्नियों के संक्रमण का नियम - भगवान् के कुंड की अग्नि सभी कुंडों में जाती है। इक्ष्वाकु साधुओं के कुंड की अग्नि शेष कुंडों में जाती है, भगवान् के कुंड में नहीं। शेष साधुओं के कुंड की अग्नि का अन्य जगह संक्रमण नहीं होता।

सत. भरत को केवलज्ञान - निर्वाण →

गा.436 भरत को भोग भोगते हुए 1 लाख पूर्व हुए। तब एकदा वह आरीसा भवन में गया। उंगली से अंगुठी निकली हुए देखी। फिर एक-एक आभूषण उतारते हुए सोचा- अनंतुक द्रव्यों से मेरी शोभा है, स्वाभाविक नहीं। इस प्रकार सोचते हुए केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। शक्र आया- रजोहरणादि दिए*। 10000 राजा के साथ दीक्षा ली। पंच मुष्टि लोच किया। शक्र ने आदित्ययश का अभिषेक किया। 1 लाख पूर्व बाद निर्वाण हुआ।*

अब आनुषंगिक कहा गया। गा.146 में मरीचि के उत्थान का अधिकार था। अतः अब मरीचि की वक्तव्यता कहते हैं-

गा.431-9 एकदा मरीचि बीमार हुआ। साधुओं ने असंयत होने से सेवा न की। अतः उसने शिष्य बनाने का सोचा। कपिल नामक राजपुत्र धर्म स्वीकारने तैयार हुआ किंतु कर्मोदय से साधु बनने की इच्छा नहीं थी। अतः उसने पूछा- क्या आपके मार्ग में धर्म नहीं ही है? मरीचि ने सोचा यह भारी कर्म वाला होने से साधु बनने की इच्छा नहीं करता है अतः कहा- साधु मार्ग में ही धर्म है, किंतु स्वल्पमात्र यहां भी है। यह सुनकर वह रीझित हुआ। इस उत्सूत्र से मरीचि ने कोड़ा कोड़ी सागरोपम का संसार बढ़ाया तथा कुलमद के समय भी नीचगोत्र कर्म बांधा।

कपिल ग्रंथों के ज्ञान से शून्य था। मात्र मरीचि द्वारा बताई हुई क्रिया करता था। उसने आसुरि नामक शिष्य हुआ। उसे भी सिर्फ आचार ही सिखाया।

मरीचि 84 लाख पूर्व आयु पूर्णकर ब्रह्मकल्प में 10 सा. स्थिति वाला देव बना। कपिल भी ब्रह्मलोक में ही देव बना। च्यवन होने के बाद अवधि से पूर्वभव देखा। फिर सोचा शिष्य को तत्त्व बताऊँ। उसने आकाश में रहकर तत्त्व कहा। अतः 'अव्यक्त से व्यक्त उत्पन्न होता है' इस प्रकार षष्टितंत्र शुरु हुआ।

अब महावीर स्वामी के पूर्वभव-

गा.4450 मरीचि 84 ला.पू. आयु पूर्णकर ब्रह्मदेवलोक में देव बना। वहाँ से कोल्लाक संनिवेश में कौशिक ब्राह्मण बना। 80 ला.पू. आयु पूर्णकर संसार में भटका।

गा.44 फिर स्थूणा नगरी में पुष्पमित्र ब्राह्मण बना। 72 ला.पू. आयु पूर्णकर परिव्राजक दीक्षा ली। 70 ला.पू. आयु पूर्णकर सौधर्म कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना। वहाँ से चैत्य संनिवेश में अग्निद्योत ब्राह्मण बना, परिव्राजक दीक्षा ली।

गा.4422 64 ला.पू. आयु पूर्णकर ईशान कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना। वहाँ से मंदिर संनिवेश में अग्निभूति ब्राह्मण बना, परिव्राजक दीक्षा ली। 58 ला.पू. आयु पूर्णकर सनत्कुमार कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना। वहाँ से श्वेतांबी नगरी में भारद्वाज ब्राह्मण बना, परिव्राजक दीक्षा ली। 54 ला.पू. आयु पूर्णकर

माहेन्द्र कल्प में मध्यम स्थिति वाला देव बना।

भा.४४५ वहाँ से कुछ काल संसार में भटककर राजगृह में स्थावर नाम का ब्राह्मण बने पारिव्राजक दीक्षा ली। ३५ ला.पू. आयु पूर्णकर ६ठें कल्प में मध्यम स्थिति वाले देव बने। फिर बहुत काल तक संसार में भटके।

भा.४४५-7 वहाँ से विश्वभूति का भव – राजगृह × विश्वनंदी राजा, विशाखानंदी पुत्र × भाई विशाखा भूति युवराज, धारिणी युवरानी × विश्वभूति युवराज का पुत्र × पुष्पकरंडक उद्यान में अंतःपुर के साथ विश्वभूति क्रीड़ा करता है × विशाखानंदी की माता की दासी पुष्प लेने जाती है क्रीड़ा करते हुए देख ईर्ष्या होती है × जाकर कहा - राज्य से क्या? सुख तो वह भोगता है × रानी कोपघर में गई × राजा मनाता है, वह नहीं मानी × मंत्री की सलाह से उपाय किया कि सीमापर अमुक राजा आया है, विश्वभूति लड़नेजाए, देखा कोई नहीं है × वापस उद्यान में जाते हुए सेवक कहा - अंदर विशाखानंदी कुमार है × वह समझ गया कि कपट है × गुस्से में कपित्थवृक्ष पर मुट्ठी से प्रहार तो नीचे भूमि कपित्थफलों से भर गई फिर जोर से बोला - दादे भाई का गौरव नहीं करता तो तुम सबके सिर इसी तरह गेरा देना × फिर आर्यसंभूत के पास दीक्षा ली × विचरते हुए मथुरानगर में आए × मथुरा की रानी विशाखानंदी की सुता थी × उसकी पुत्री से विशाखानंदी की सगाई हुई थी × अतः वह मथुरा में आया था × मासक्षपण के पारणे विश्वभूति मुनि राजमार्ग पर निकले × विशाखानंदी को सेवकों ने कहा - यह विश्वभूति मुनि है × सुनकर विशाखानंदी को पुनः रोष हुआ × तभी विश्वभूति मुनि गाय से टकराकर गिरे × तब विशाखानंदी और उसके सेवक जोर से हँसे, बोले - कपित्थफलों को गिराने वाला तेरा बाप कहाँ गया? × सुनकर विश्वभूति ने गुस्से में गाय को सींगड़े से उछाला, बोला - दुर्बल सिंह को भी सिंहार नहीं जीत सकते × यहाँ से निकलकर निदान किया - यदि तप-नियम का कोई फल हो तो मैं अपरिमित बल वाला होऊँ × मरकर महाशुक्र कल्प में देव बने × उत्कृष्ट स्थिति वाले देव बने ×

वहाँ से पोतनपुर में प्रजापति राजा की मृगावती रानी से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ ××

प्रजापति का पहले का रिपुप्रतिशत्रु नाम था × भद्रा रानी × अचल पुत्र, मृगावती पुत्री × एकदा पौत्र को पाप × उसकी पुत्री पिता को वंदन करने गई × उसके रूप से वह मूर्च्छित हुआ × उसने सामंतों को पूछा - यहाँ कोई रत्न जन्मे, तो वह किसका है? × सामंत - आपका है × ऐसे उच्चार पूर्वक उसने पुत्री को रानी बनाया × अचल पुत्र भद्रा रानी माहेश्वरी नगर चले गए × वे सब सामंत भी लज्जित हुए × अतः लोगों ने 'प्रजापति' नाम रखा ××

इस मृगावती से स्वप्न देखकर यह उत्पन्न हुआ × पीठ में उपसती होने से त्रिपृष्ठ नाम रखा

उस समय एक मांडलिक अश्वग्रीव राजा नैमित्तिक को पूछता है - मुझे किससे भय है × नै. - जो चंडमेघ दूत को और महाबलवान् सिंह को मारेगा, उससे × उसने सुना कि प्रजापति राजा के पुत्र बहुत बलवान् हैं × अतः उसने दूत भेजा × जब दूत पहुँचा तब नाटक चल रहा था × दूत के आने से नाटक रुक गया × अतः कुमारों ने कहा 'यह यहाँ से जाए, तब कहना' × राजा ने दूत का सत्कार कर भेजा × दूत वापस जा रहा था तब आदमियों ने कुमारों को कहा × कुमारों ने उसे रास्ते में

पकड़कर लाए x उसके साथ रहे आदमी सभी और भाग गए x अतः प्रजापति को संदेश भिजवाया x उसने अश्वग्रीव के भय से दूत को पुनः बुलाकर २-३ गुना सम्मान कर कहा कि राजा को कुछ मत कहना x किंतु अश्वग्रीव को पहले ही पता चल गया था x उसने दूसरा दूत भेजा - मेरे खेतों का रक्षण करो x प्रजापति ने कुमारों को डाँटा x कुमार जबरजस्ती प्रजापति की ना होने पर भी रक्षा करने गए x किसान को पूछा - अन्य राजा कैसे रक्षा करते हैं x किसान - किल्ला बनाकर सेना के साथ यहीं रहते हैं x कुमार - कब तक? x किसान - जब तक कढ़ाई न हो x कुमार - इतने समय कौन यहाँ रहेगा, मुझे तो वह भय स्थान बताओ x किसान - उस गुफा में सिंह है x कुमार त्रिपृष्ठ अकेला रथ पर वहाँ गया x सिंह जंभाई खाते हुए बाहर आया x कुमार ने सोचा - यह नीचे है, मैं रथ पर हूँ अतः रथ छोड़कर तलवार और ढाल ली x फिर सोचा - इसके पंजे और नाखून हैं, मेरे पास तलवार-ढाल है, यह अयोग्य है x अतः वह भी छोड़ दी x सिंह ने सोचा मुझे देखकर शस्त्र भी छोड़ दिए अतः अभी ही मार देता हूँ x उसने छलांग मारी x त्रिपृष्ठ ने दोनों होंठ पकड़कर चीर दिया x देवों ने आभूषण-वस्त्र वि. की वृष्टि करी x कुमार ने मुझे मार दिया' ऐसे गुस्से से सिंह कोप रहा था x गौतमस्वामी का जीव उसका सारथि था x सारथि ने कहा - हे सिंह! तू नरों में सिंह समान पुरुष से मरा है अतः गुस्सा मत कर' x सिंह नरक में गया x कुमार ने लोगों को कहा - अश्वग्रीव राजा को कह दो कि शांति से रहे x राजा ने दूत भेजकर कुमारों को बुलाया x प्रजापति ने कुमारों को नहीं भेजा x राजा ने दूत भेजकर युद्ध करने के लिए कहा x कुमारों ने दूत को मार-मारा x वह युद्ध करने आया x बहुत समय तक युद्ध चला फिर कुमार ने कहा मात्र हम दोनों युद्ध करें x अंत में अश्वग्रीव ने चक्र छोड़ा, उसी चक्र से त्रिपृष्ठ ने अश्वग्रीव को मारा x अर्ध भरत जीता x कोटिशिला को दंड और हाथ से ऊँची करी x ८४ लाख वर्ष आयु पूर्णकर वह ७वीं नरक में ३३ सा. वाला नारक हुआ।

वासुदेव - अश्वग्रीव का पुत्र रथावर्तपर्वत के पास हुआ था।
कृष्ण वासुदेव ने कोटिशिला घुटने तक उठाई थी।

गा. ४४८-९ नरक से निकलकर तिर्यंच-मनुष्य में कुछ भव कर पश्चिम विदेह में मूका नगरी में धनंजय राजा की धारिणी रानी से प्रियमित्र रूप बना, चक्री हुआ, अंत में पोट्टिल आचार्य के पास दीक्षा ली। ८४००० पूर्व आयु पूर्णकर महाशुक्र कल्प में सर्वार्थ विमान में १७ सा. स्थिति वाला देव बना। १ करोड़ वर्ष दीक्षा पाली चक्री के भव में।

गा. ४५० वहाँ से छत्रा नगरी में जितशत्रु राजा की भद्रा रानी से नंदन कुमार बने। २५ लाख वर्ष राज्य कर पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ली। २५ लाख वर्ष दीक्षा पाली, सतत मासखमण के पारणे मासखमण। २० स्थानों से तीर्थंकर नाम निकाचित किया। १ माह की संलेखना की। २५ लाख वर्ष आयु पूर्ण कर प्राणत कल्प में पुष्पोत्तर विमान में २० सा. स्थिति वाले देव बने। (नंदन मुनि के भव में राज्य बचपन में ही किया था)

गा. ४५१-६ २० स्थानकों गा. ८८-१८१ तक समान है।

गा. 48-1 पुष्पोत्तर विमान से च्यव कर ब्राह्मणकुंड ग्राम नगर में कोडालसगोत्र वाले 'सोमित्त' (?)
ब्राह्मण के घर में देवानंदा की कुक्षि में उत्पन्न हुए।

गा. 49 तब वर्द्धमान स्वामी संबंधी वक्तव्यता की द्वारगाथा -
स्वप्न, स्वप्न-पाठक 3. गर्भ 4. अभिग्रह 5. वृद्धि 6. जातिस्मरण 7. देव ले डरना
8. विवाह 9. अपत्य 10. दान 11. संबोध 12. निष्क्रमण।

गा. 51-62 देवानंदा की कुक्षि में आए तब देवानंदा ने 14 स्वप्न देखे।
82 दिवस के बाद 83वीं रात में आसो वद 13 के दिन भगवान् का गर्भ संक्रमण हरिणैगमेषी देव इंद्र की आज्ञा से करता है।
माता-पिता की अनुकंपा से तब से गर्भ में ही माता-पिता जीवित हैं तब तक अभिग्रह दीक्षा नहीं लूँगा ऐसा अभिग्रह लिया।
चैत्र शुक्ल 13 के दिन मध्य रात्रि को कुंडग्राम में प्रभु का जन्म हुआ।

गा. 63-71 जन्माभिषेक का वृत्तांत ऋषभ चरित्र की तरह जानना।
दास-दासी वि. से युक्त प्रभु वृद्धि पाते हैं। (जातिस्मरण भी पूर्ववत् भगवान् 3 ज्ञान पूर्व भव से ही लेकर आते हैं।)
68 द्वार पूर्ण हुए।

चूर्णि → ऋषभ देव प्रभु का निर्वाण बाद चिता (Pg. No. 198 पर) → कुचिता पहली स्वामी के लिए, दूसरी गणधरों की, तीसरी साधुओं की।
पुनः अग्नि संक्रमण की विधि में 'इक्ष्वाकु साधुओं की चिता की भक्ति' 'उत्तरगाणं' लिखा है।

→ अष्टापद पर भरत निर्मित चैत्य का लंबा वर्णन।
→ शक्र ने भरत को दीक्षा की विनंती की। फिर देवता ने भरत को वेश दिया, इसमें
मतांतर चूर्णि → 'संनिहिताए वाणमंतरीए देवताए लिंगग्गहणं'
मलयगिरीय → 'देवयाए रयहरण पडिग्गहादि उवकरण मुवणीयं'
हरिभद्रीय → 'देवयाए रयहरणपडिग्गहादि'
→ भरत निर्वाण भाष्य के रूपवास सहित, अष्टापद पर निर्वाण हुआ।
→ मरीचि द्वारा शिष्य बनाने की विचारणा का वर्णन यहाँ Negative
मलयगिरीय, हरिभद्रीय टीका में Positive

मलयगिरीय टीका
उक्त. 72-87 पू.

इंद्र ने प्रभु वीर की वीरता की प्रशंसा की। अतः एक देव परीक्षा करने आया। पहले सर्प रूप फिर खात्यक का रूप कर भगवान् को डराया मगर वे डरे नहीं।
भगवान् 8 साल के हुए तब माता-पिता लेखाचार्य के पास ले गए। इंद्र का आसन कंपा। वह आया। उसने शब्द का लक्षण पूछा। ऐन्द्र व्याकरण शुरू हुआ।
1. भीषण द्वार पूर्ण।

भा. 78-79
भा. 80

विवाह द्वार - यशोदा राजकुमारी से विवाह किया
अपत्य - प्रियदर्शना पुत्री उत्पन्न हुई।

गा. 459-60

भगवान् 28 वर्ष के हुए तब माता-पिता की मृत्यु हुई। उन्होंने स्वजनों से दीक्षा की अनुमति मांगी। स्वजनों ने 2 वर्ष रुकने को कहा। तबसे भगवान् प्रासुक-एषणीय आहार ही वापरते, प्रासुक जल से भी स्नान नहीं करते किंतु लोकस्थिति से मात्र हाथ-पैर-मुँह धोते, सुविशुद्ध ब्रह्मचर्य पालते।
कुल 30 वर्ष घर में रहे।

भा. 81-88

दान-संबोधन द्वार ऋषभदेव के चरित्र में कहे गए।

प्र. ऋषभ के चरित्र में पहले संबोधन द्वार फिर दान द्वार रखा था 'संबोहणपरिच्चाए' (गा. 231)। यहाँ पहले दान फिर संबोधन रखा। ऐसा क्यों?
उ. सभी तीर्थंकरों में यह नियम नहीं है। किसी तीर्थंकर को पहले संबोधन, फिर दान होता है। किसी को पहले दान फिर संबोधन होता है।

अथवा

यदि नियम मानो तो वह 2 प्र. से चलता है - 1. संबोधन फिर दान
2. दान फिर संबोधन।
यदि पहला नियम मानो तो (प्रश्न होगा कि यहाँ पहले दान क्यों रखा? उ:-) दान द्वार में बहुत वक्तव्य होने से यह न्याय बताने के लिए दान द्वार पहले रखा।
यदि दूसरा नियम मानो तो (प्रश्न होगा कि ऋषभ-चरित्र में पहले संबोधन क्यों रखा? उ.-) अल्प वक्तव्य होने से, ऐसा न्याय बताने संबोधन पहले रखा।

यहाँ सभी संभव पक्ष रखे हैं। तत्त्व तो बहुश्रुत जाने।

भा. 89-108

चंद्रप्रभा शिविका में पूर्वाभिमुख भगवान् बैठे।
शिविका 50 धनुष लंबी, 25 ध. चौड़ी, 36 ध. ऊँची, अंदर में सिंहासन।
भगवान् पूर्वाभिमुख बैठे। नीचे हाथ पर कुलमहत्तरिका हंस चिह्न वाले वस्त्र लेकर भद्रासन पर बैठी। उल्टे हाथ पर भंडधात्री उपकरण लेकर भद्रासन पर बैठी। भगवान् के

पीछे एक तरुणी श्वेत पत्र लेकर खड़ी रही। उत्तर-पूर्व में एक तरुणी जल से भरे कलश लेकर खड़ी रही। आग्नेय कोण में एक तरुणी सुवर्ण दंड वाला मोर मणि से विचित्र चामर लेकर खड़ी रही। भगवान् के दोनों ओर शक्र-ईशान चामर वींजते हैं। (अन्य मत- ऊपर तरुणी की जगह देवी मानना)

शक्र → दक्षिण - ऊपर की बाहा। ईशान → उत्तर - ऊपर की बाहा।
चमर → दक्षिण - नीचे " । बलि → उत्तर - नीचे " ग्रहण करते हैं।
पहले मनुष्य, फिर देव शिबिका को उठाते हैं।
ज्ञातखंडवन में जाते हैं। भगवान् उतरकर अशोक वृक्ष के नीचे गए। स्वयं खुद के अलंकार उतारते हैं। कुत्तमहत्तरिक हंस चिह्न वाले कपड़े में ग्रहण करती है और आशीर्वाद देती है।
भगवान् इमुष्टि लोच करते हैं। इंद्र-शक्र हंस चिह्न वाले कपड़े में ग्रहण करता है और लेजाकर क्षीरसमुद्र में डालता है। फिर शक्र के भेरा वाजित्र आदि सबकी आवाज बंद होती है।

आ.चू.9-11 सिद्धों को नमस्कार कर भगवान् सामायिक उच्चरते हैं।
इंद्र ने देवदूष्य दिया। तभी पत्नी से भिक्षा तिरस्कृत ब्राह्मण माँगने आया तो भगवान् ने आधा दिया। वह वणकर के पास गया तो वणकर बोला आधा आगे ले आ, अल्प मूल्य हो जाएगा। उसमें से आधा तेरा, आधा मेरा।
भगवान् को चारित्र स्वीकारने के बाद मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ। (आ.व.10)
स्वजनों को पूछकर भगवान् कर्मार ग्राम गए। वहाँ जाने के २ मार्ग थे- एक जल, स्थल। भगवान् स्थल मार्ग से गए। दिन में एक मुहूर्त शेष रहने पर भगवान् पहुँचे।

चूर्णि → भगवान् के स्वजन- भगवान् की माता चेटक राजा की बहन थी। काका सुपार्श्व भाई नंदिवर्धन। बहन सुदर्शना। पत्नी यशोदा। पुत्री- प्रियदर्शना। नप्त्री- यशोमती अथवा शेषवती।

निक्षेपनिर्युक्ति टीका अव. गा. 461
प्रभु के उपसर्ग →
कर्मार ग्राम पहुँचकर सीमा पर भगवान् प्रतिमा में रहे। शाम को एक ग्वाला गाएँ चराता हुआ, वहाँ आया। गायों को छोड़कर वह दूध दोहने गया। तब तक चरती चरती गाएँ जंगल में चली गई। उसने भग. को देखा, वे मौन रहे। वह ढूंढने निकला। सुबह पुनः भ. के पास आया तब गाएँ वहीं बैठी थी। उसने सोचा भ. ने बैल चोरे अतः दोरडे से मारने दौड़ा। उसी समय शक्र ने सोचा- पहले प्रि भ. क्या कर रहे हैं? गोवाले को दौड़ते हुए तुरंत रोका और समझाया।

* स्पष्टता - Pg. No. 208 पर।

शक्र भगवान् को बोले - प्रभु! आपको बहुत उपसर्ग हैं। मैं 12 वर्ष आपकी वैयावच्च करूँ। प्रभु - ऐसा। कभी ऐसा नहीं हुआ कि कोई तीर्थंकर इंद्र की सहाय से केवलज्ञान प्राप्त करे। शक्र सिद्धार्थ को बोला - भ. को जो मारणांतिक उपसर्ग आए उसे वारण करना। सिद्धार्थ भ. की मासी का पुत्र था जो वाणमंतर बना था।
कोल्लाक संनिवेश में बहुल ब्राह्मण ने घी-शक्कर युक्त खीर से भ. को छट्ठ का पारणा कराया। दिव्य प्रगट हुए (Pg No. 187 पर)

आ. 462-3 भग. मोराक संनिवेश में आए। वहाँ दुइज्जंत नामक पाखंडी रहते थे। उनका कुलपति भ. के पिता का मित्र था। उसने वसति की विनंति की। भगवान् एक दिन रुककर निकल गए। निकलते हुए उसने चौमासे की विनंति की। शेष काल पूर्ण होने पर पुनः चौमासे में भगवान् वहाँ पधारे। एक कुटिर में रहे। गाय घास न मिलने पर कुटिर की घास खाती हैं। तापस रोकते हैं, कुलपति को कहते हैं। कुलपति ने भ. को कहा - पक्षी भी घोंसले की रक्षा करते हैं। भ. अप्रीति जानकर निकल गए और 5 अभिग्रह किए
1. अप्रीति वाले स्थान में नहीं रहना।
2. व्युत्सृष्टकाय वाला रहना।
3. मौन
4. हाथ में वापरना
5. गृहस्थ का अभिवादन नहीं करना।

भ. ने सपात्र धर्म कहा अतः उन्होंने प्रथम पारणा गृहस्थ पात्र में किया। गोशाले ने कहा था पात्र में भोजन लाऊँ तो भग. ने स्वीकारा नहीं। केवलज्ञान के बाद खोहार्थ लाए थे, तब भी भ. ने हाथ में वापरा।

प्र. केवलज्ञान के बाद भ. भिक्षा क्यों नहीं जाते? उ. वचन लाघव संभव होने से।

वहाँ से भ. अस्थिक ग्राम गए। वह अस्थिक ग्राम पहले वर्धमान ग्राम था। उसका नाम 'अस्थिक' कैसे हुआ? -
धनदेव वणिक् x 500 गाड़ी लाया x वेगवती नदी एक ही बैल ने 500 गाड़ी उल्लू कराई x उसकी हड्डी-पसली ढ़ीली हो गई x वह गिर गया x वणिक् पास-पानी उसके आगे डालकर गया x गाँव के लोग वहाँ से निकलते हैं किंतु कोई उसे पानी नहीं देता x बैल को गुस्सा आया x मारकर शूलपाणि यक्ष बना x अवधि से पूर्व भव देखा x गुस्से में गाँव में महामारी फैलाई x उपायों से भी शांत न हुई तो त्यागा। गाँव छोड़कर गए x गाँव उजड़

हो गया × अन्य गाँव में भी मारी नहीं फैलती × तब लोग समझे कि कोई देव का उपसर्ग है × अतः गाँव में आकर विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम तैयार कर, उपहार रखकर जोर से कहते हैं "हम आपके शरण में हैं, हमारी भूल माफ करो" × देव ऊपर से बोला "तुम लोग दयारहित हो, पापी हो, तुम बचने वाले नहीं हो" × लोग- "हम पर कृपा कर प्रसन्न हो" × यक्ष - मनुष्य की हड्डियों के ढाचे पर शूलपाणि यक्ष का मंदिर बनाओ और पास में बैल रखो (अन्य मत - शूलपाणि यक्ष की प्रतिमा बैल रूप करो और प्रतिमा के नीचे बैल की हड्डि रखो) × लोगों ने तथा किया × मुसाफिर कोई पूछते तुम कहाँ से आए ?, तो लोग कहते - हड्डी वाले गाँव से × अतः गाँव का नाम अस्थिक पड़ा × यक्ष मंदिर में जो भी रात रहता उसे यक्ष मार डालता × अतः लोग रात को वहाँ से अन्यत्र चले जाते × इंद्रशर्मा पूजारी भी अन्यत्र जाता × भ. वहाँ आए × मंदिर में रहने की आज्ञा मांगी × लोग मना करते हैं ×, अन्य बस्ति देते हैं × किंतु भ. अनुज्ञा लेकर वहीं रहे × प्रतिमा स्वीकारी × पूजारी सब लोगों को कहता है- अब सब जाओ नहीं तो मर जाओगे × भ. मौन रहे

भा. 464
भा. 112-4

शूलपाणि गुस्से से अट्टहास्य करता है × भ. नहीं डरे × बाहर सभी लोग बात करते हैं- आज देवार्य मर जाएँगे × वहाँ बाहर उत्पल नामक अष्टांग निमित्तिक भी आया था जिसने पार्श्वनाथ प्रभु के शासन में दीक्षा लेकर छोड़ दी थी × भ. चलित नहीं हुए तो यक्ष ने क्रमशः हाथी, पिशाच, सर्प के रूप में उपसर्ग किए × फिर ७ वेदना की- मस्तक, कर्ण, आँख, नाक, दाँत, पीठ, नख में × ~~से एक वेद~~ इन ७ में से एक भी वेदना से सामान्य मनुष्य के प्राणों का संक्रमण हो जाता है तो एक साथ ७ की तो क्या बात? × देव से भ. चलित नहीं हुए तो पैर में गिरकर क्षमा माँगता है × तभी सिद्धार्थ व्यंतर आकर उसे मारने दौड़ता है × सिद्धार्थ उपदेश देते हैं × वह शांत हुआ × वह महिमा करता है × बाहर लोग आवाज सुनकर सोचते हैं कि भ. को मारके आनंद कर रहा है" ×

भ. को सतत कुल कुल काल न्यून ५ प्रहर तक उपसर्ग हुए अतः सुबह मुहूर्त तक भ. ने निद्रा ली × निद्रा में भ. ने १० स्वप्न देखे × -

1. भ. ने ताल पिशाच को मारा
2-3. सफेद पक्षी और कोकिल एक साथ सेवा करते हैं
4. सुगंधी फुल की २ माला
5. सेवा करती गायों का समूह
6. विकसित कमल वाला पद्म सरोवर
7. भ. ने सागर तैरा
8. चोतरफा किरण वाला सूर्य उगा
9. भ. के आंतों से मानुषोत्तर पर्वत लपेटा
10. भ. मेरु पर्वत पर चढ़े

सुबह लोग वहाँ आए × दिव्य पूजा सामग्री और भ. को स्वस्थ देखकर खुश हुए × भ. की महिमा की × उत्पल ने १० स्वप्न के फल कहे -

1. शीघ्र मोहनीय कर्म को आप क्षय करोगे

2. सफेद पक्षी से आप शुक्ल ध्यान करोगे
3. कोयल से आप द्वादशांगी प्ररूपेंगे। (५?)
~~4. मणों के समूह से देवों का समूह आपकी सेवा करेगा।~~
4. गायों के समूह से चतुर्विध संघ होगा
5. 6. पद्म सरोवर से देवों का समूह आपकी सेवा करेगा।
6. समुद्र तैरने से संसार तिरोगे।
7. सूर्य से केवलज्ञान होगा। 8. मानुषोत्तर से आपकी यश-कीर्ति चोतरफा फैलेगी
9. मेरु से सिंहासन पर बैठकर आप देशना दोगे।
10. ५ वें २ माला वाले स्वप्न का फल मैं नहीं जानता।
प्रभु - मैं २ माला २४ का धर्म देश-सर्वविरति प्ररूपूँगा।
उत्पल वंदन कर गया x भ. ने ४५ दिन उपवास किए। प्रथम चौमासा पूर्ण हुआ।

चूर्णि → प्रथम पारणा भ. ने गृहस्थ के पात्र में किया क्योंकि उन्हें सपात्र धर्म की प्ररूपणा करना थी, इस प्रकार अन्य मत है।

मलयगिरीय टीका

शरद् ऋतु में भ. मोराक संनिवेश गए x वहाँ अच्छंदक नामक पाखंडी मंत्र तंत्र वि. से जीता था x वहाँ भ. की पूजा न होने से सिद्धार्थ दुःखी था x अतः उसने भ. के शरीर में प्रवेश कर एक ग्वाले को उसका भूत-भविष्य-वर्तमान कहता है x गाँव में खबर फैली x अन्य लोग आए x सिद्धार्थ सबके जवाब देता है x तब लोग अच्छंदक का नाम लेते हैं कि वह भी सब कुछ जानता है x सि. - वह कुछ नहीं जानता x अच्छंदक को खबर पड़ी x वह भी ध्यान में आया x एक तिनके को हाथ में लेकर पूछा - मैं इसे तोड़ूँगा या नहीं? x उसने सोचा - यदि हाँ कहेंगे तो मैं नहीं तोड़ूँगा, यदि ना कहे तो मैं तोड़ूँगा x सि. - नहीं तोड़ेगा x अच्छंदक तोड़ने लगा उतनी देर में ही शक्र ने अवधि का उपयोग रखा और वज्र फेंका, उसकी १० अंगुली कट गई x लोग उसके ऊपर हँसे x सि. गुस्सा हुआ x
गा. ५६५
सि. लोगों को बोला - यह चोर है x लोग - कैसे? x सि. - यहाँ वीरघोष नामका कोई मजदूर है? x वीरघोष आगे आया x सि. - तेरे पास कोई १० पल का वर्तुल (पात्र) था, वो चुरा गया है? x वीरघोष - हाँ x सि. - वह इसने चोरा है और उसके घर में खजूर का पेड़ है, उससे पूर्व दिशा में एक हाथ बाद जमीन में गाड़ा है, जाओ ले आओ x लोग गए x बात सही निकली x लोग कोलाहल करते हुए आए x सि. - कोई इंद्रशर्मा नाम का गृहपति है x इंद्रशर्मा आगे आया x सि. - तेरे पास एक भेड़ थी, जो खो गई है x इंद्रशर्मा - हाँ x सि. - वह इसने मार दी है, माँस खा गया, हड्डी बदरी पेड़ की दक्षिण दिशा में उकरड़े में डाले हैं x लोग देखने गए x हड्डी मिलने पर आवाज करते हुए आए x दूसरी चोरी पकड़ाई
गा. ५६६
सि. - तीसरा अपराध मैं नहीं कहूँगा x लोगों ने आग्रह किया तो सि. - उसकी पत्नी बोली x उसी दिन अच्छंदक ने पत्नी को पीटा था, अतः वह गुस्से में थी x लोग गए तो वह बोली -

यह तो उसकी बहन का पति है, मुझे इच्छता नहीं है × लोगों में अपयश हुआ × उसे कोई भिक्षा नहीं देता × वह भ. को बोला- आपकी तो दूसरी जगह भी पूजा होगी, मैं कहाँ जाऊँगा? × अतः भ. अप्रीतिवाला स्थान जानकर निकले ××

वहाँ दो गाँव थे - उत्तर वाचाल, दक्षिण वाचाल × दोनों के बीच 2 नदी - सुवर्णबालुका, रूप्यबालुका × भ. दक्षिणवाचाल से उत्तरवाचाल की ओर जा रहे थे × तभी सुवर्ण बालुका नदी के किनारे कौरे में दूध्य फँस गया × भ. ने आगे जाकर पीछे देखा और आगे चले × इस प्रकार ~13 महीने भ. सचेल रहे, फिर अचेलक ×

वह ब्राह्मण ~~~ कपड़ा लेकर वणिक को देता है × दोनों 100-100 ह. मूल्य प्राप्त करते हैं (Pg. No. 202 पर भा. ~~~ 109-11 में)

प्र. भ. ने पीछे क्यों देखा?

उ. भिन्न-भिन्न मत हैं - 1. ममत्व से

2. 'स्थंडिल में गिरा या अस्थंडिल में' यह देखने के लिए

3. सहसाकार से

4. 'मेरे शिष्यों को वस्त्र-पात्र सुलभ होंगे या नहीं' यह देखने

[सहसाकार वाला मत चूर्णि में नहीं]

टिप्पणक → प्र. पीछे देखने से यह कैसे पता चले कि मेरे शिष्यों वस्त्र सुलभ होंगे या दुर्लभ?

उ. यदि स्निग्ध भूमि में गिरे तो सुलभ, अन्यथा दुर्लभ।

प्रत्यक्षगिरीय टीका गा. 467

भ. उत्तरवाचाल जाते हैं × बीच में कनकखल आश्रम × 2 मार्ग हैं - सीधे मार्ग में आश्रम आता है, वक्र मार्ग में आश्रम नहीं आता × भ. सीधे मार्ग पर चले × ग्वाले मना करते हैं: यहाँ दृष्टिविष सर्प है × भ. गए × यक्षगृह के मंडप में प्रतिमा स्वीकारी ××

सर्प का पूर्वभव - वह तपस्वी था × सूखा दौरने गए तब मेंढकी की विराधना हुई × क्षुल्लक मुनि ने याद कराया × गुस्से हुए × शाप को प्रतिक्रमण में पुनः याद कराया × गुस्से में मारने दौड़ने × स्तंभ से टकराकर मरे × ज्योतिष देव बने × वहाँ से कनकखल आश्रम में 500 तापस के कुलपति के पुत्र बने × कौशिक नाम × कोधी × आश्रम में अन्य भी कौशिक थे अतः इसे अलग करने के लिए चंडकौशिक नाम रखा × वह कुलपति बना × तापसों को मूर्च्छा के कारण फल दि, नहीं देता × तापस चले गए × ग्वाले दि. जो भी वहाँ आते उन्हें साकर भगा देता × पास में श्वेतांबिका नगर × चंडकौशिक नहीं था तब राजपुत्र फल खाने आए × ग्वालों से उसे खबर पड़ने पर कुल्हाड़ी लेकर दौड़ा × कुमार आते हुए को देख भागे × उनके पीछे भागते हुए खड्डे में गिरा × कुल्हाड़ी उसके सिर पर गिरी मरकर सर्प बना × सर्प 3 समय वन में फिरता × पक्षी वि. को भी मार देता ××

भ. को देख गुस्सा हुआ × सूर्य की ओर देखकर फिर भ. की ओर देखा × भ. जले नहीं × 2-3 बार काने पर भी नहीं मरे तो डंख मारा × 2-3 बार डँसा × नहीं मरने पर आँखें देखी × सौम्यता से क्रोध शांत हुआ × भ. - हे चंडकौशिक! शांत हो × सोचते हुए जातिस्मरण हुआ × उबार प्रदक्षिणा कर मन से भक्त प्रत्याख्यान करता है × बिल में मुख रखकर रहता है × भ. अनुकंपा से वहाँ रहे × भ. को वहाँ देख खाले आते हैं × वृक्ष के पीछे छुपकर सर्प पर पत्थर फेंकते हैं, लकड़ी से हिलाते हैं × फिर लोगों की चहल-पहल शुरु होती है × घी लगाते हैं × कीड़ी होती है × वेदना सहन करता 15 दिन बाद मरकर 8वें कल्प में गया।

गा. 468 वहाँ से प्रभु उत्तरवाचाल गए × नागसेन ने खीर से पारणा कराया × दिव्य प्रगट हुए × वहाँ से श्वेतांबिका नगरी गए × प्रदेशी राजा ने पूजा की × वहाँ से सुरभिपुर गए × रास्ते में रथों से आते प्रदेशी राजा के गोत्र वाले राजाओं ने वंदन-पूजा की ×

गा. 469 बीच में गंगा नदी उतरना पड़ती है × वहाँ सिद्धयात्र नाविक और क्षेमिल नैमित्तिक था × जब लोग नाव में चढ़ते हैं तभी उल्लू आवाज करता है × क्षेमिल - पक्षी के आवाज से पता चला कि हमें मरणांतिक उपसर्ग आएगा × लोग - हमारा क्या होगा? × क्षे. - इन महर्षि के कारण हम बच जाएँगे × नाव चली × सुदंष्ट्र नागेन्द्र ने देखा तो गुस्सा हुआ क्योंकि त्रिपृष्ठ के भव में भ. ने जिस सिंह को मारा था, वही सुदंष्ट्र था × अतः उसने संवर्तक वायु विकुर्वी × तभी कंबल-शंबल देवों का आसन कंपा

गा. 470-1 कंबल-शंबल देव की उत्पत्ति - मथुरा × जिनदास श्रावक × सोमदासी श्राविका × परिग्रह परिमाण में चतुष्पद का पच्चक्खाण था × रोज गोरस वाहन से लेते हैं × एक आभीरी गोरस लाती × उसे श्राविका ने कहा - तुझे दूसरी जगह जाने की जरूरत नहीं, तू जितना लाएगी उतना मैं ले लूँगी × ऐसे उन दोनों का संबंध हुआ × श्राविका उसे गंधपुटिका देती, आभीरी कूलिका देती (कूलिका ~~दूध~~ दही पर डालने वाली पंचधान चीज़, जिसमें जीरा वि. डालकर संस्कार करने पर स्वादिष्ट होता है, लोक में माथु शब्द से प्रसिद्ध है - दिप्पणक) × गायों में एकदा विवाह आया × उन्होंने श्रावक-श्राविका को बुलाया × वे नहीं गए परंतु सभी मधुरान्न वि. दिए × विवाह महोत्सव अच्छा हुआ × आभीर ने 3 साल की उम्र के हृष्ट-पुष्ट कंबल-शंबल नामक 2 बैल श्रावक को खुश होकर भेंट दिए × उन्होंने बहुत मना करने पर भी बांधकर चले गए × श्रावक ने सोचा यदि छोड़ दूँगा तो लोग खेती करेंगे, अतः संभाल लिए × श्रावक का स्वाध्याय वि. सुन वे भी सम्यक्त्वी हुए × एकदा गाँव में भंडी नामक यज्ञ का महोत्सव होता है × उसमें बैलगाड़ी की Race होती है × श्रावक का मित्र पूछे बिना ही बैल ले गया × गाड़ी में दौड़ाया × [illegible] न होने से बैलों की हड्डी टूट गई × मित्र ने वापस लाकर बांध दिए × श्रावक ने भक्त प्रत्याख्यान कराया × बैल मरकर नागकुमार देव बने ×

उसी समय अवधि का उपयोग दिया × अतः भ. को उपसर्ग से बचाने आए × सुदंष्ट्र इंद्र था

और वे दोनों देव थे किंतु खुदंष्ट्र का च्यवन काल नजदीक होने से वे दोनों जीत गए x एक ने नाव संभाली, एक ने युद्ध जीता x फिर भ. की पूजा की x भ. नाव में से उतरे तब उन्होंने पानी और पुष्पों की वर्षा की x x

* [अनुसंधान पृ.No २०३ पर] ६०० गाड़ी गणिम-धरिम-मेय पदार्थों से भरी थी। गणिम - जो गिनी जा सके eg. फल - वि.
धरिम - जो तोल कर लेते हैं eg. कंकु, गुड़ वि.
मेय - जो माप कर लेते हैं eg. घी, तेल वि.।
६०० गाड़ी एक बैल ने cross कराई यानि उसने एक बैल सबसे आगे रखा और सभी गाड़ी एक के पीछे एक जोड़ दी।

भ. नदी के किनारे पर प्रतिमा धारण करके आगे चले x नदी के किनारे रेती में पैर के लक्षण दूरे उपस जाते हैं x पुष्य नामक एक सामुद्रिक सोचता है कि यहाँ से कोई चक्री भाग गया है x पीछे-पीछे चलकर भ. को देखकर सोचा यह तो साधु है, अतः यह शास्त्र गलत है x तभी ईंद्र अवधि से देखता है तो नीचे आकर पुष्य को सही बात कहता है x x

गा. ५७२ स्थूणाक संनिवेश के बाहर भ. प्रतिमा में रहे x फिर राजगृही गए x बाहर नालंदा नगर में वणकर की शाला में वसति की अनुज्ञा लेकर मासक्षमण में रहे x यह प्रथम मासक्षमण x

रिप्पणक → नदी के किनारे की रेती में भ. के पैर के लक्षण उपस जाते हैं। ऐसी रेती को 'चिक्खल्ल' कहते हैं। वह ३प्र. -
1. मध्युसिक्थक चिक्खल्लप - सजाने के लिए पैरों में स्त्रियाँ जितनी जगह में मेहंदी लगाती है, उतना भाग ही जहाँ मिट्टी में खूँपे वह मध्युसिक्थक।
2. पिंडक - आधा सूखा हुआ, पिंड बनाने के योग्य।
3. चिक्खल्ल - जहाँ पैर बहुत अंदर तक खूँपे।
यहाँ मध्युसिक्थक लेना)

मत्यवतीरिय टीका - गा. ५७३ वहाँ मंखली नामक मंख रहता था। (मंख यानि जो लोगों को अलग-अलग चित्र दिखाकर आजीविका चलाए) उसकी गर्भवती पत्नी ने सरवण नामक संनिवेश में गोशाला में पुत्र को जन्म दिया x पुत्र का नाम भी गोशालक रखा x मंख की कला सीखा x चित्रपट बनाता है x अकेला घूमता हुआ जहाँ भ. थे वहाँ आया x चौमासा शुरू हुआ x भ. ने मासखमण का पारणा विजय नामक गृहस्थ के घर अनेक द्रव्यों से किया x देवता प्रगट हुए x गोशालक सुनकर आया x देखे x भ. को कहा मैं आपका शिष्य हूँ x भ. मौन रहे x दूसरे मासखमण का पारणा आनंद के घर अनेक द्रव्यों से

* सिद्धार्थ व्यंतर भ. के शरीर में प्रवेश कर बोलता है।

किया x तीसरे मासखमण का पारणा सर्वकामगुणित (सभी प्र. के रस से युक्त) भोजन से किया x चौथा मासखमण शुरु कर भ. विचरे x

गोशाला कार्तिक पूनम को सोचता है - मुझे आज क्या मिलेगा? x सि.** - कोदव कूर और नमली रुपये x पूरे दिन उसे कुछ नहीं मिला x शाम को मजदूर ने कोदव कूर दिए और एक रुपया दिया x check काने पर वह नकली निकला x उसने सोचा - जो होना है, वही होता है xx

गा. 474 भ. चौथे मासखमण के पारणे कोल्लाक संनिवेश में गए x बहुल ब्राह्मण x खीर से पारणा x दिव्य x गोशाला स्वयं का सामान ब्राह्मणों को देकर भ. के पास सिर-दाढ़ी-मूछ मुंडाकर गया x

सुवर्णखल पधारे x गो - भ.! यहाँ बीच में ग्वाले खीर बना रहे थे x गो - भ.! यहाँ पधारे, हम भोजन करेंगे x सि - यह खीर नहीं बनेगी, हांडली दूर जाएगी x गो. ने ग्वालों को रुकने कहा तो भी फूट गई x गो. को कुछ नहीं मिला x नियति की प्रधानता दृढ़ हुई xx

गा. 475 फिर ब्राह्मण गाँव गए x नंद-उपनंद 2 भाई x गाँव में दो घोष x एक-एक दोनों भाई की x भ. नंद के घर गए x नंद ने रूखा आहार वोराया x गो. उपनंद के घर गया x भिक्षा लोगी x गोचरी का काल नहीं था अतः दासी सुबह के ठंडे चावल लाई x गो. ने मना किया x उपनंद ने दासी को कहा उसके ऊपर डाल दे x दासी ने चावल गो. पर डाले x गो. ने गुस्से से कहा - मेरे धर्माचार्य का तप-तेज हो तो इसका घर जले x पास में रहे व्यंतरों ने घर जला दिया x

चंपा नगरी गए x चौमासे में द्विमासिक तप में उकुरुक आसन वि. सहित भ. प्रतिमा में रहे x यह तीसरा चौमासा हुआ।

गा. 476 पारणा कर कालाक संनिवेश गए x भ. ने शून्यघर में प्रतिमा स्वीकारी x गो. द्वार के पास रहा x रात को सिंह नामक सुखिया का पुत्र विद्युन्मति दासी के साथ आया x पहले पूछा - जो यहाँ कोई हो तो हमें कहे जिससे हम अन्यत्र जाएँ x भ. मौन रहे x गो. भी मौन रहा x जब वे निकल रहे थे तभी गो. ने स्त्री का स्पर्श किया x स्त्री ने कहा - यहाँ कोई है x सिंह ने गो. को मारा x गो. - भ. मुझे बचाते क्यों नहीं हो? x भ. - सि. दूर शील रखा क्यों नहीं करता है xx

भ. पात्रालक गाँव गए x शून्य गृह में रहे x गो. भी अंदर रहा x वहाँ भी स्कंदक नामक सुखियापुत्र पत्तिलिका दासी के साथ आया x उसने भी पूछा x भ. और गो. मौन रहे x वे दोनों जब निकल रहे थे तब गो. हँसा x अतः स्कंदक ने मारा x गो. - आप मुझे बचाते नहीं हो तो आपकी सेवा क्यों करूँ x सि. - तेरा मुँह बंध क्यों नहीं रखता।

गा. 477 कुमाराक संनिवेश पधारे x चंपारमणीय उद्यान में भ. ने प्रतिमा स्वीकारी xx उसी संनिवेश में

पार्श्वनाथ प्रभु के संतानीय मुनिचंद्र स्थविर, बहुश्रुत और बहुत शिष्य वाले कूपनक नामक कुंभकार की शाला में रहे थे × वो आचार्य खुद के एक शिष्य को गच्छ सौंपकर स्वयं को जिनकल्प की सत्त्वादि भावनाओं से भावित करते थे ××

गो.-भ! चलते भिक्षा काल है × सि.- आज मुझे उपवास है × गो. संकेत्या गया × इन साधुओं को देखकर पूछा - तुम कौन हो? × वे बोले - हम निर्ग्रंथ हैं × गो. - तुम्हारे पास तो इतना ग्रंथ (परिग्र) है तो भी तुम निर्ग्रंथ? मेरे धर्माचार्य के पास कुछ नहीं है × साधु - जैसा तू है वैसे तेरे गुरु होंगे × गो. - मेरे गुरु की तुम निंदा करते हो, यदि मेरे गुरु का तप हो तो तुम्हारा उपाश्र जल जाओ × साधु - तेरे कहने से होने वाला नहीं है × गो. ने आकर भ. को कहा × सि. - पार्श्वनाथ भ. के साधु हैं, वे जलेंगे नहीं ××

रात में मुनिचंद्र सूरि उपाश्रय के बाहर प्रतिमा में रहे × कुंभकार दारु के नशे में चूर आया × चोर समझकर आचार्य भ. की श्वास बंद करी × उन्हें अवधिज्ञान हुआ और काल धर्म (मृत्यु) निर्वाण देवों ने अग्नि की × प्रकाश देखकर गो. बोला - देवो! उनका उपाश्रय जल रहा है × सि. ने सत्य बात कही × गो. वहाँ गया, खुश हुआ × और उनके साधुओं को उठाया × साधुओं ने शोक किया ××

भ. चोराक संन्निवेश पधारे × कोतवाल चोर समझकर गोशाले को तो उल्टे सिर कूएँ में डालते हैं भ. को डालते थे तब तक ही उत्पल की 2 बहनें सोमा और उत्पल ने वहाँ आकर बचा × वे दोनों दीक्षा के लिए असमर्थ होने से परिव्राजिका बनी थी × उन्होंने सुना कि ऐसे 2 व्यक्तियों को कुएँ में डाल रहे हैं × अतः तीर्थंकर को पहचान कर तुरंत बचाने आई ××

गा. पत्र 8 भ. पृष्ठचंपा पधारे × चौथा चौमासा किया × चौमासी तप में विविध प्रतिमा × पारणा कर कृतांगल सन्निवेश में गए × वहाँ परिव्र स्थविर नामक पाखंडी महिलासहित, परिग्रह सहित थे × उनके महोत्सव में एकदम में भ. प्रतिमा में रहे × उस दिन बहुत ठंडी थी × उसदिन उनका जागरण था × वे महिला सहित गाते-नाचते थे × गो. बोला - ऐसा भी संन्यास होता है जिसमें आश्रम-स्त्री सहित नाचते हैं × उन लोगों ने उसे बाहर निकाल दिया × वह बिखरने लगा तो पु अंदर लाए × ऐसा 2 बार बोला, 3 बार निकाला, 3 बार अंदर लाए × फिर वे बोले - अब यदि त बोला तो बाहर ही कर देंगे × तब अन्य ने कहा - यह देवार्य की आलिशकरने वाला या पत्रधर है अतः मौन रहो × फिर वाजिंत्र जोर से बजाए जिससे उसकी आवाज न सुनाए।

हरिभद्रीय टीका → मुनिचंद्र सूरि म. को अवधिज्ञान हुआ और काल धर्म कर देवलोक गए।

मलयगिरीय टीका गा. पत्र 9 भ. श्रावस्ती गए × भ. बाहर प्रतिमा में रहे × गो. - आप खा रहे हो? × सि. - आज उपवास है × गो. आज मुझे क्या मिलेगा? × सि. - मनुष्य मांस × गो. - आज तो मांस ही नहीं खाऊँगा, फिर मनु मांस की तो क्या बात ××

पितृदत्त गाथापति × श्रीभद्रा पत्नी × वह निंदु थी, निंदु यानि मृतबालक को जन्म देने वाली × उसने शिवदत्त नैमित्तिक को पूछा × शिवदत्त - तेरे मृत बालक का मांस संस्कारित कर तपस्वी को खिलाना और घर का द्वार बदल देना, जिससे तेरा घर नहीं जले × श्रीभद्रा ने घी युक्त खीर बनाकर गोशाले को खिलाई × सि. को बोला - आज तुम्हारा कथन गलत निकला × सि. - तू उल्टी कर × गो. ने उल्टी की × उसमें नग्न बि. बनाए × गो. गुस्से में आया × द्वार बदलने से घर नहीं पहचाना × बोला - वह जो भी घर था, वह जल जाए × बाहर का प्रदेश जल गया ××

भ. हरिद्रक गाँव गए × हरिद्रक वृक्ष था × वहाँ श्रावस्ती के लोगों का सार्थ था × भ. प्रतिमा में रहे × ठंडी होने से सार्थ के लोगों ने रात को अग्नि जलाई × सुबह लोग चले गए किंतु आग बुझाई नहीं × आग भ. के पास पहुँची × भ. के पैर जले, गो. भाग गया ।

गा. 480 भ. नंगला गाँव गए × वासुदेव के मंदिर में प्रतिमा में रहे × बच्चे खेलते हैं × गो. आँख निकाल कर डराता है × बच्चे डरकर भागे × कोई गिर गया, किसी को लग गई × माता-पिता गो. को पीटते हैं × कुंड कहते हैं - यह देवार्य का दास है इसलिए छोड़ दो × गो. - अप्प मुझे बचाते क्यों नहीं हो ? × सि. - तू सीधा क्यों नहीं रहता ××

आवर्त गाँव गए × बलदेव के मंदिर में रहे × वहाँ भी बच्चों को डराने से गो. को पीटा × फिर लोग बोले - इसे मारने से क्या ? इसके स्वामी को मारो जो इसे रोकते नहीं हैं × भ. को मारने आए तभी बलदेव की प्रतिमा हल लेकर खड़ी हुई × देखकर लोग पैर में पड़े ।

गा. 481 चोराक सन्निवेश में गए × वहाँ गोष्ठी का भोजन बन रहा था × भ. प्रतिमा में रहे × गो. - आज यहाँ से भिक्षा लाएँ × सि. - आज मुझे उपवास है × गो. नीचे झुक-झुककर देखता था कि भोजन बना या नहीं × वहाँ चोर भय था × भोजन बनाने वालों ने गो. को पकड़कर मारा × गो. - मेरे गुरु का तप-तेज हो तो मंडप जल जाए × मंडप जल गया ×

कलंबुक सन्निवेश में गए × वहाँ 2 भाई - मेघ और कालहस्ति × कालहस्ति चोरों के साथ निकला × रास्ते में दोनों मिले × कालहस्ति - तुम कौन हो ? × दोनों मौन रहे × उसने दोनों को बहुत मारा × फिर भी नहीं बोले तो बांधकर मेघ के पास भेजा × मेघ ने कुंडग्राम में पहले भ. को देखा था × अतः देखते ही पूजा कर क्षमा माँगी ××

गा. 482 भ. ने सोचा अभी बहुत कर्म निर्जरा करना है × अतः ~~लाढ~~ लाट देश में गए × हीलना-निंदा से बहुत निर्जरा हुई × फिर वहाँ से निकले × पूर्णकलश गाँव अनार्य था × रास्ते में 2 चोर जा रहे थे × भ. को अपशकुन मानकर तलवार खींचकर मारने दौड़े × तभी शक्र ने अवधि से जानकर वज्र से दोनों को मारा × (अन्यमत - सिद्धार्थ ने वह तलवार उनके ऊपर डाल दी, जिससे वे मर गए) ××

भद्रिक नगर गए × वहाँ छवा चौमासा × विचित्र अभिग्रहों के साथ चौमासी तप किया ××

चूर्णि- → स्वामी को आते लोग आए, तब वत्सदेव की प्रतिमा हल लेकर खड़ी हुई, यह अन्य मत है) गो. को पकड़कर मारा और स्वामी के गुण से घोड़ा (गा. 480 में आवर्त्त गाँव का उपसर्ग)।

→ (गा. 482 में पूर्णकलश गाँव में उपसर्ग)- सिद्धार्थ ने वह तलवार उनपर ही छोड़ी, उनका माथा फट गया। अन्य मत- इंद्र ने वज्र से मारा।

मलयगिरीय टीका गा. 483 पारणा कर कदली गाँव गए × वहाँ शरद् ऋतु में कराई करते मजदूरों को दही-चावल भोजन देते थे × गो.- चलो वहाँ जाएँ × सि.- मुझे नहीं × गो. अपना, बहुत खाया मगर मेरा नहीं हुआ × कर्मचारी- बड़ा भोजन आकर इसे दो × बहुत दूर देने पर नहीं खा सकता अतः वे हुआ उस पर ही डाला × कूदते हुए वह जाता है ××
जंबूसंड गाँव में गए × वहाँ भी ऐसा ही हुआ बस वहाँ भोजन दूध-चावल था ××

गा. 484 तंबाक गाँव गए × पार्श्वनाथ प्रभु के बहुश्रुत, बहुत परिवार वाले संविग्न आचार्य पधारे × वे भी जिन कल्प का परिकर्म करते हैं × उस दिन वे चतुष्क पर प्रतिमा में रहे × शेष कथा मुनिचंद्र सूरि की तरह (Fig. No. 210) × उन्हें भी केवलज्ञान, निर्वाण ××
(हरिभद्रीय टीका में अवधिज्ञान, देवलोक)
कूपिक संनिवेश × वहाँ भी मारक्कों ने चोर समझकर पकड़ा लिए (कथा चोराक संनिवेश की तरह Fig. No. 210) × विरोध पार्श्वनाथ भ. की 2 साध्वी जो परिव्राजिका बनी थी वे विजया और पगल्भा।

वहाँ से विहार करने पर 2 रास्ते × गो.- आप मेरी रक्षा नहीं करते, आपके साथ बहुत उपसर्ग आते हैं और पहले मुझे मार पड़ती है अतः मैं अकेला जाऊँगा × सि.- जैसी तेरी इच्छा × भ. वैशाली तरफ चले ×
गो. अकेला चला × आगे चिन्नस्थान आया (टिप्पणक → चिन्नस्थान- जहाँ भय से लोग नहीं आते-जाते) × एक चोर वृक्ष पर से देख रहा था × साथियों को कहा- एक नग्न साधु आ रहा है × साथी- इसके पास कुछ नहीं है इसलिए डरना नहीं है ×

गा. 485 500 चोरों द्वारा मामा-मामा कहकर परेशान कराया × वह सोचता है भ. के साथ रहना अच्छा, उनके साथ मैं भी दूर जाता हूँ ×
भ. वैशाली में कर्मकर की शाला में प्रतिमा में रहे थे × वह शाला साधारण (बहुत यात्रियों) की थी × सबकी अनुज्ञा ली × एक दिन एक कर्मकर 6 मास के रोग से ठीक होकर अच्छे दिन भोजन ग्रहण कर वहाँ आया × भ. को अमंगल मानकर हथोड़ा मारने दौड़ा × इंद्र ने अवधि से देखकर पत्तक मात्र में आया × वही हथोड़ा मारा × कर्मकर मर गया ××

गा.486 ग्रामाक संनिवेश × विप्रेत्यक ~~ग्राम~~ × उद्यान में विप्रेत्यक यक्ष × ने प्रतिमा स्थित भ. की महिमा की ×
शालिशीर्ष गाँव × उद्यान में प्रतिमा की × महा मास चल रहा था × कटपूतना, वाणव्यंतरी ने भ. का तेज सहन न होने से तापसी का रूप कर, छाल के वस्त्र पहन कर स्वयं की जटा से पूरा शरीर लपेटकर भ. के ऊपर रहकर शरीर हिलाती है, जिससे ठंडे पानी के छींटे भ. पर गिरे × वायु विकुर्वती है × यदि अन्य कोई हो तो मर जाए × तीव्र वेदना को सहन करते भ. को लोकावधिज्ञान पूगर हुआ × अभी तक ११ अंग और देवलोक का अवधि था × हारकर देवी शांत हुई और पूजा की ××× (यहाँ छट्ठ तप था)

चूर्णि → कटपूतना वाणव्यंतरी त्रिपृष्ठ के भव में भ. की रानी थी | भ. प्रति प्रद्वेष करती है ||

भद्दलपुरीय भ. भद्रिक नगर गए × ६ठ्ठ चौमासा शुरू हुआ × गो. पुनः मिला × ६ मास अलग रहे × भ. ने
टीका चौमासी तप किया और विविध अभिग्रह धारण किए × गाँव के बाहर पारणा कर भ.
गा. 487 ने मगध देश में ४ मास उपसर्ग बिना विचरे ××

आ. 488 आलंभिक नगर में गए × नवां चौमासा × चार मास तप × पारणा कर कुंडाग संनिवेश में गए × वासुदेव मंदिर में प्रतिमा की × गो. वासुदेव की प्रतिमा के मुख में लिंग रखकर खड़ा रहा × पूजारी आया × देखकर अन्य लोगों को बुला लाया × लोग आए, देखा, मारा × पागल समझकर छोड़ा ××
मर्दन गाँव में गए × यहाँ भी वत्सदेव के मंदिर में वैसी ही पूजा बनी ××
(चूर्णि में → मर्दन गाँव में भ. को भी मारने आए, तब वत्सदेव प्रतिमा हल लेकर खड़ी हुई, अतः छोड़ा)

गा.489 बहुशालक गाँव में गए × शालवन उद्यान × शालार्या वाणव्यंतरी ने पूजा × अन्य भाचार्य-उपसर्ग कर हारकर व्यंतरी ने पूजा की ××
लोहार्गला राजधानी में गए × जितशत्रु राजा × अन्य राजा ने नगर घेरा × गुप्तचर मानकर पकड़ा × पूछने पर कुछ नहीं बोले × राजसभा में ले गए × अस्थिक ग्राम वाला उत्पल (Pg. No. 205) वहाँ था × उसने छुड़ाया

गा.490 पुरिमताल नगर में गए × वग्गुर सेठ × भद्रा सेठानी, वंध्या × देवों की मान्यताओं से वे दंपती थक गए थे × एकदा शकटमुख उद्यान में महोत्सव में गए × जीर्ण मंदिर देखा × मल्लिनाथ भ. की प्रतिमा देखी × नमस्कार कर प्रार्थना करी और कहा कि यदि बालक/बालिका होगा तो देवकुल बनाएँगे × आस-पास रही वाणव्यंतरी ने सुना की × गर्भ हुआ × जबसे गर्भ हुआ तब से ही मंदिर बनना शुरू × तीन Time पूजा × श्रावक बना ××

* स्पष्टता टिप्पणक में.

भ. विचरते हुए शकट मुख उद्यान और नगर के बीच प्रतिमा में रहे x वग्गुर न्हाकर गीले वस्त्र पहनकर ऋद्धि सहित मंदिर जाता है x तब ईशानेंद्र भ. की पूजा कर रहा था, तभी वग्गुर को देखा x कहा - वग्गुर! तू साक्षात् तीर्थंकर की पूजा नहीं करता और प्रतिमा को पूजने जा रहा है x वग्गुर भ. क्षमा मांगकर पूजा करता है xx

ऊर्णाक गाँव गए x सामने से वर-वधू आते हैं x वे विरूप और दाँत बाहर निकले हुए थे x भ. गोशाला बोला - कि यह कैसा सुसंयोग है, इत्यादि x लोग भागते हैं और पास में रहे बाँस के समूह में फेंक देते हैं x वह भ. को कुचलता है x सि. - तेरा किया हुआ तू जा x भ. पास में जाकर खड़े रहे x लोग - यह देवार्य का पीठमर्दक (मालिश करने वाला) या दास है अतः छोड़ दो x

अन्य मत - लोगों ने उसे बाहर निकाला।

टिप्पणक → जानुकूर्परमाता - बंध्या स्त्री के लिए यह लौकिक संज्ञा है कि वह घुटने और कोहनी की माता है। (भद्रा सेठानी बंध्या होने से विशेषण)

→ लौकिक रूढ़ि है कि गीले वस्त्र पहनकर ही अंतरायादि की आराधना करना चाहिए इस प्रकार ही उनकी परितुष्टि होती है।

मत्यप्रगीतिय टीका गा. ५१। भ. गोभूमि गए x बीच में भरवी x उसमें गायें चरती थी अतः गोभूमि नाम पड़ा x गो. ने गुस्से से ग्वालों को पूछा - अो म्लेच्छो! यह मार्ग कहाँ जाता है? x ग्वाले - गुस्सा क्यों करता है x गो. - दासीपुत्रों! हजाम के पुत्रों! मेरा गुस्सा बराबर है x सबने मिलकर मारा और बाँस में फेंक दिया x अन्य पथिकों ने भ. के उपशम को देखकर निकाला x

राजगृही गए x ७वां चौमासा किया x चौमासी तप, पारणा x

भ. बहुत निर्जरा करने के लिए लाढ़, वज्र, शुद्ध भूमि वि. अनार्य देशों में विचरे x वे अनार्य निरनुकंप, निर्दय हीलना करते हैं, निंदा करते हैं, कुत्तों को 'छू, छू' कर भड़काते हैं x कुत्ते काटते हैं x इस प्रकार बहुत उपसर्ग हुए x ७वां चौमासा किया x भक्त पान - वसति भी नहीं मिली x भ. वसति न होने से अनित्य जागरिका कर ६ मास विचरे xx (६ मास उपवास हुए)

टिप्पणक → बंभचेरेसु [हरिभद्रीय टीका, चूर्णि] - आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के ९ अध्ययन ब्रह्मचर्य अध्ययन कहे जाते हैं। उनमें उपधान श्रुत नामक अध्ययन में जैसे उपसर्ग का वर्णन किया है, वैसे उपसर्ग यहाँ जानना। उन उपसर्गों में से एक उपसर्ग दृष्टांत के लिए यहाँ बताया है - कुत्तों को छू-छू करना, कुत्तों का काटना।

* स्पष्टता टिप्पणक में Pg. No. 216 पर

प्रत्यक्षगिरीय टीका गा. 492

भ. अनार्य देशों से सिद्धार्थपुर गए x वहाँ कूर्म गाँव की ओर चले x रास्ते में एक तल के ~~पौधे~~ पौधे को देखकर गो. बोला- भगवन्! यह पौधा उगेगा या नहीं? भ.- पकेगा और उसके ७ पुष्प के जीव मरकर उसी पौधे के फल में नवीन रूप में उत्पन्न होंगे x गो. ने वचन गलत करने के लिए पौधे को उखाड़कर एक ढाल में रख दिया x आस-पास के वाणव्यंतरों ने सोचा- भ. का वचन गलत नहीं होना चाहिए अतः वारिश की x वह पौधा खराब हुआ x फिर बहुत सारी गाय निकली x एक गाय के खुर से उस पौधे की जड़ पुनः जमीन में प्रतिष्ठित हुई और उस पर फूल आए x ७ फूलों के जीव बीज बने xx

कूर्म ग्राम गए x गाँव के बाहर वैश्यायन बालतपस्वी आतापना लेता था x

गा. 493 वैश्यायन बालतपस्वी की उत्पत्ति → चंपा और राजगृही के बीच गोबर गाँव था x गोशंखी कौटुंबिक x वह ग्वालों का स्वामी था x बंधुमती पत्नी x पुत्र जन्म नहीं होता था x पास के गाँव में चोरों ने लूटा x बहुत लोगों को चोरों ने बंदी बनाया x एक स्त्री के पति को मारकर पुत्र सहित स्त्री को पकड़ा x पुत्र को छुड़ाकर जंगल में छोड़ दिया, स्त्री को ले गए x बालक को गोशंखी ने देखा और लाकर पत्नी को दिया x लकड़ी मारकर पुत्र को खूनवाला किया और प्रसूति की सर्व क्रिया की x तथा कहा कि मेरी पत्नी गुप्त गर्भ वाली थी x बालक की सच्ची माता को चोरों ने चंपा नगरी में वृद्ध वेश्या को बेची x वह प्रसिद्ध गणिका हुई x गोशंखी का पुत्र युवा हुआ x पीने का गाढ़ा भरकर चंपा गया x क्रीड़ा की इच्छा हुई x स्वयं की माता को पसंद किया x शाम को नहाकर जाता है x रास्ते में विष्ठा से पैर खराब हुआ x उसकी कुलदेवी 'यह कुकर्म न करे' ऐसा सोचकर वेश्या बाड़े के पास गाय और बछड़े का रूप कर खड़ी रही x वह पैर को बछड़े पर साफ करता है x बछड़ा- हे माता! यह मुझ पर विष्ठा के पैर को साफ क्यों कर रहा है x गाय- बेटा! यह इसकी माता के साथ संवास करने जा रहा है, अतः ऐसा अकार्य करने वाला तो कुछ भी कर सकता है x उसे सुनकर चिंता हुई x जाकर वेश्या को भूतकाल पूछा x उसने मना किया x उसने दुगुना मूल्य देने का कहा तब वेश्या ने पूरी घटना कही x घर जाकर माता-पिता को पूछा x वे मौन रहे x खाना-पीना बंद करने पर उन्होंने सच्ची बात कही x
संसार असार जानकर माता को वेश्यापन से छुड़ाकर तापसी दीक्षा ली xx

यह वैश्यायन तापस आतापना ले रहा था x जूं में से जू नीचे गिरती तो उठाकर पुनः सिर में डालता x गो.- तू ~~मुनि~~ मुनि है या घूका शय्यातर है! अथवा स्त्री है या पुरुष है! x खा-खा बोलने पर ऋषि ने गुस्से से तेजोलेश्या छोड़ी x भ. ने शीत लेश्या छोड़ी x
~~भ~~ की शीतलेश्या ने जंबूद्वीप को अंदर से व्याप्त किया और तेजोलेश्या ने बाहर से x ऐसे प्रक्षेप करती हुई वह पूरी बुझ गई x भ. की ऋद्धि देख ऋषि बोला- भ.! मुझे पता चल गया कि यह

आपका शिष्य है, ४ माफ करना x वह चला गया x गो.- भ. तेजोलेश्या कैसे प्रकटती है? x भ.- छट्ठ के पारणे छट्ठ, पारणे में नख सहित मुट्ठी में जितने उड़द आए, उतनी उड़द पारणे में ले, आतापना ले तो तेजोलेश्या होती है x

भ. सिद्धार्थपुर गए x पुनः तिल के पौधे के पास से निकले x गो.- ये तिल पके नहीं x भ.- तिल पके हैं, इन वनस्पति जीवों का प्रवृत्त परिहार हुआ है x (प्रवृत्त परिहार यानि जीव मरकर पुनः उसी शरीर में उत्पन्न हो) x गो. ने तिल का सींग चीरा, तो ७ तिल निकले x उसे श्रद्धा हुई xx निपतिलए को उसने दृढ़ता से पकड़ा x वह श्रावस्ती में कुंभकार शाला में आतापना लेकर, तप करके तेजोलेश्या प्राप्त करता है x कुएँ की पाल पर दासी को तेजोलेश्या से जलाता है x उसे ६ दिशाचरों मिले x उन्होंने निमित्त सिखाएँ x 'मैं जिन हूँ' ऐसा कहकर वह घूमने लगा xx उसने कंकर से दासी का घड़ा फोड़ा x वह गुस्सा करती है x तब वह तेजोलेश्या से जला देता है, उसे विश्वास हुआ कि तेजोलेश्या सिद्ध हुई xx

टिप्पणक → तेजोलेश्या किसी को भी गौतम-गौतम लपेटकर जलाती है। अतः ऋषि की तेजोलेश्या ने जंबूद्वीप को बाहर से लपेटा। शीतलेश्या अंदर से लपेटती है। अतः दोनों परस्पर विरुद्ध दिशा में होने से शीतलेश्या से तेजोलेश्या बुझ जाती है।

→ तेजोलेश्या में एक मुट्ठी उड़द और गर्म पानी का चुल्लक ही पारणे में लेना।

→ कुएँ के तट पर गया x कोई दासी ने अनिष्ट कहा x उसे तेजोलेश्या से जला दिया x

→ ६ दिशाचर पार्श्वनाथ भ. के शिष्य थे। उन्होंने उसे अष्टांगनिमित्त सिखाया।

→ संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या ⇒ कारण बिना नहीं छोड़ने से संक्षिप्त।
अन्तर्वावस्थापिता- स्वतां कृता विपुला तेजोलेश्या येन स - अंदर व्यवस्थापी है विपुल तेजोलेश्या जिसने।

मलयगिरीय टीका भग.५७५ भ. वैशाली गए x शंख राजा, सिद्धार्थ राजा के मित्र x पूजने हैं x
वणिक् गाँव x गंडिका नदी बीच में x नाव से पार की x फिर नाविक मूल्य माँगकर भ. की हीलना करता है x वहाँ शंख राजा का भानजा मित्र शरीर चिंता के लिए गया था, वह नाव में बैठकर आया x उसने भ. को सुख पूछा और पूजा।

हरिभद्रीय टीका वैशाली में पहले प्रतिमा में रहे भ. को बालकों ने पिशाच समझकर परेशान किया।

अन्यधर्मीय टीका

वणिक् गाँव गए x प्रतिमा में रहे x आनंद श्रावक छट्ठ के पारणे छट्ठ आतापना ले रहा था x
गा.495 अवधिज्ञान हुआ x तीर्थंकर को देखकर वंदन-पूजा करता है xx
श्रावस्ती गए x 10 वां चौमासा विचित्र तप

गा.496 सानुलिष्ठ गाँव गए x भद्र प्रतिमा की x
भद्र प्रतिमा → इसमें पहले दिन पूर्वाभिमुख कायोत्सर्ग, रात में दक्षिणाभिमुख, दूसरे दिन पश्चिमाभिमुख, रात में उत्तराभिमुख x इस प्रकार छट्ठ तप के साथ प्रतिमा पूर्ण की x
पारणा किए बिना महाभद्रा प्रतिमा की x इसमें चारों दिशा में एक अहोरात्र रहना x
5 उपवास x पारणा किए बिना सर्वतोभद्र प्रतिमा की x इसमें, पूर्व, अग्निकोण, याम्य (दक्षिण), नैऋत्य, वारुणी (पश्चिम), वायव्य, सौम्य (उत्तर), ईशान, ऊर्ध्व, अधो (तमा) (विमल) 10 दिशा में एक-एक अहोरात्र ध्यान करना x
पहली प्रतिमा पूर्वादि 4 दिशा में 4-4 प्रहर, दूसरी प्रतिमा में 2 चतुष्क (8 प्रहर), तीसरी में 10 चतुष्क (10 दिशा में 2-2 चतुष्क) x
इस प्रकार तीनों प्रतिमा पूर्ण कर आनंद श्रावक के घर बहुलिका दासी से सूखा भोजन (कोरका) पारणा किया x 4 दिव्य प्रगट हुए xx

गा.497 भ. म्लेच्छों की दृढ़भूमि गए x पेढाल उद्यान x पोलास चैत्य में अट्ठम के साथ एक रात्रिकी प्रतिमा की x भ. ने अनिमेष नेत्र से एक पुद्गल (अचित्त) पर दृष्टि स्थापी x
भ. कुछ झुकी हुई काया वाले रहे

गा.498-501 भ. को अवधि से जानकर सुधर्मा सभा में शक्र प्रशंसा करता है कि भ. किसी से चलित नहीं होंगे x संगम नामका अभव्य देव ने इंद्र को कहा - आप तो राग से बोलते हो, कोई मानुष क्या देव से चलित नहीं होगा? x शक्र उसे रोकता नहीं है ताकि उसे ऐसा न लगे कि भ. दूसरे की मदद से तप करते हैं। वह नीचे आया।

गा.502-5 संगम ने धूलवृष्टि की जिससे आँख-कान बिल बंद हो गए x श्वास रुक गई x फिर वज्र जैसे मुख वाली कीड़ी विकुर्वी x वे एक द्वार से निकलकर द्वार से शरीर में घुसती हैं x फिर वज्र जैसे मुख वाले मच्छर विकुर्वे x शरीर में से खून निकलता है x फिर तेल पीने वाली घीमेल विकुर्वता है x वींछी x (बिच्छु) x नेवले x - मांस के टुकड़े शरीर में से खींचते हैं x सर्प - उग्र विष, दाहज्वर करने वाले x चूहे - शरीर में से मांस निकाल कर मूत्र-विष्ठा वहाँ करते हैं x हाथी - सूंढ से 7-8 ताड़वृक्ष प्रमाण उछालकर दाँत पर झेलकर नीचे पटकता है x हाथीनी - दाँत से फाड़कर मूत्र करती है x पिशाच x बाघ x सिद्धार्थ राजा, त्रिशला का विलाप x रसोईया भ. के पैरों के बीच अग्नि जलाता है x चंडाल वाद्य, गला, कान पर पिंजरे लटकाता है, उनमें रहे पक्षी शरीर को खाते हैं x हवा x तूफान

कालचक्र के प्रहार से मेरु के भी टुकड़े हो जाएँ ऐसे कालचक्र का प्रहार किया जिस
भ. हाथ के अग्र नख तक जमीन में धँस गए ×
अनुकूल उपसर्ग → प्रभात विकुर्वी × लोग कहते हैं - हे देवार्य! अभीतक यहीं हो × भ. ने
ज्ञान से देखा यह स्वाभाविक प्रभात नहीं है × देव ऋद्धि दिखाता है × कहा - भ.! मैं खुश
हूँ, आप कहो तो सशरीर स्वर्ग ले जाऊँ।
अन्य मत - अनुकूल उपसर्ग में अन्य आचार्य कहते हैं कि देवी विकुर्वता है, हावभाव
उद्दीपक के नाट्य दिखाता है, आलिंगन-चुंबन वि. करता है।

हरिभद्रीय टीका → यहाँ एक ५०६ वीं गाथा दिखाई है, जो निर्युक्ति में-चूर्णि में भी है किंतु मलयगिरीय टीका में नहीं है। अतः यहाँ से मलयगिरीय टीका में क्रमांक अलग होगा।
उसका अर्थ - [अतः यह गाथा भी अन्य मत से आएगी]

→ हरिभद्र सूरि भ. के मत में देव ऋद्धि दिखाना, खुश होना, यह उपसर्ग अन्य मत में है।

→ वह कहकर अवधिज्ञान से देखता है कि भ. क्या सोच रहे हैं? तब भ. ६ जीव निकाय का हित सोच रहे थे।

मलयगिरीय टीका गा. ५०६ भ. वालुका गाँव की ओर चले × रास्ते में वह रेती विकुर्वता है जिसमें भ. खूंप जाते हैं। फिर ७००-चोर विकुर्वता है, जो मारो-मारो कहकर परेशान करते हैं × फिर भारी वजन वाले वे भ. की पीठ पर चढ़कर वहन कराते हैं × फिर वे भ. का ऐसा आलिंगन करते हैं कि पर्वत हो तो फट जाए ×
वालुका गाँव पहुँचे × भ. भिक्षा के लिए निकले × तब संगम भ. का रूप ढांककर अन्य रूप दिखाता है जिसमें भ. स्त्रियों को खाँस मारते हैं। अतः तरुणी स्त्रियाँ भ. को मारती हैं ×
भ. सुभौम गाँव गए × भिक्षा गए × देव भ. का रूप ढांककर स्त्रियों को हाथ जोड़ता है × स्त्रियाँ भ. को मारती हैं ×
सुक्षेत्र गाँव गए × भिक्षा के लिए निकले भ. का रूप ढांककर देव लिट का रूप करता है, हँसता है, गालियाँ देता है, आँख मारता है जिससे लोग भ. को मारते हैं।

गा. ५०७ भ. मलय गाँव गए × वह भ. का रूप ढांककर पागल बनकर स्त्रियों को पकड़ता है × जिससे बालक भ. पर कचरा डालते हैं, पत्थर मारते हैं × भ. के रूप में देव बालकों को डराता है × बालक जाकर माता-पिता को कहते हैं × सब भ. को मारते हैं।
हस्तिशीर्ष गाँव में गए × देव भ. को भोजन का सागार कषायित करता है (रिपणक → अर्थात् लिंग के ऊपर की त्वचा दूर कर लिंग विकृत करता है) × जब भ. देव

स्त्रियों को देखता है तब लिंग उठता है जिससे स्त्री वि. त्याग भागते हैं x भ. ने सोचा- यह अत्यंत उड्डाह करता है अतः गाँव के बाहर रहूँ x गाँव के बाहर भी जहाँ स्त्रियों का समूह होता है, वहाँ लिंग स्तब्ध करता है, अतः हीलना होती है x शक्र भ. की पूजा करता है अतः हीलना बंद हुई x भ. एकान्त में गए x जिससे संगम बोला - आप गाँव में भागो तो देखूँ ! x तब शक्र भ. की साता पूछने आया ।

चूर्णि * यहाँ अन्य मत-लोक में प्रसिद्ध पांचाल देव का रूप संगम विकुर्वता है । तबसे पांचाल शुरु हुआ । [यह मत हरिभद्रीय टीका में भी]

टिप्पणक → विशिष्ट आम्नाय का अभाव होने से पांचाल देव का स्वरूप नहीं प्राप्त होता ।

मलयगिरीय टीका गा. 508 तोसलि गाँव गए x प्रतिमा में रहे x देव बालक का रूप कर खेतों में खाद डालने के उपकरण चोरी करने जाता है x लोग पकड़ते हैं तब कहता है - मुझे तो आचार्य ने भेजा है x लोग- कहाँ है ? x बालक - गाँव बाहर x लोग भ. को बांधकर मारते हैं x राजसभा में ले गए x वहाँ भूतिल नामक इंद्रजालिक था x उसने भ. को कुंडग्राम में देखा था x अतः भ. को छुड़ाता है x बालक को ढूँढते हैं x नहीं मिला तो पता चला कि देव उपसर्ग कर रहा है xx

गा. 509 भ. मोसलि गाँव गए x वहाँ देव बच्चे का रूप कर रास्ते को साफ करता है x और ढूँढता है लोग - तू ये क्या ढूँढ रहा है ? x बालक - मेरे गुरु रात को चोरी करने आएंगे से आ सके इसलिए रास्ता साफ कर रहा हूँ और रास्ता ढूँढ रहा हूँ x लोग रूष्कर उद्यान में पहुँचे x भ. को पकड़कर गाँव लाए x वहाँ सुमागध नामक राष्ट्रिक (राष्ट्र की चिंता करने वाला) भ. के पिता का मित्र था x उसने छुड़ाया x
तोसलि गए x वहाँ भी ऐसा ही हुआ x फाँसी पर भ. को लटकाया किंतु 7 बार रस्सी टूट गई x लोग भ. को निर्दोष छोड़कर बालक को ढूँढते हैं x पता चला देव उपसर्ग कर रहा है xx

गा. 510 सिद्धार्थ पुर गए x देव के कारण भ. को चोर मानकर पकड़ा x कौशिक नाम के अश्व व्यापारी ने कुंडग्राम में भ. को देखा था अतः छोड़ा x
गोकुल गए x वहाँ महोत्सव था x खीर बन रही थी x भ. ने सोचा छ मास पूर्ण हुई, अतः वह गया x भिक्षा के लिए गए x अनेषणा की x भ. ने उपयोग से जाना पुनः वापस आए x देव ने अवधि से देखा कि भ. के परिणाम गिरे या नहीं ? x भ. शुद्ध परिणाम वाले थे x जानकर देव माफी मांगकर गया x

गा. 511-2 संगम ने कहा- अब मैं उपसर्ग नहीं करूँगा, आप स्वेच्छा से विचरो। भ.- तुझे मुझे कहने की जरूर नहीं कि मैं विचरूँ या नहीं x
~~दूसरे दिन वत्सपालिका नामक वृद्धा ने खीर से पारणा~~
वत्सपालिका नामक वृद्धा को उत्सव के दिन खीर नहीं मिली अतः दूसरे दिन दूध मांगकर
उसने खीर बनाई x खीर से पारणा x कराया x 5 दिव्य प्रगट हुए
अन्य मत- वृद्धा ने भ. को खीर से पारणा कराया।
[चूर्णी में, हरिभद्रीय, टिप्पणक में अन्यमत मुख्य है, मलयगिरि म. का मत अन्य मत रूप में है]

गा. 513 सौधर्म कल्प में आज तक सभी देव उद्विग्न थे x संगम गया, तब शक्र पराङ्मुख रहा,
उसने कहा- हे देव! इसने मुझे बहुत दुःखी किया, तीर्थंकर की आशातना की अतः
कोई इससे बोलना मत x देवियों के साथ वह मेरुपर्वत की चूलिका पर गया x उसने
परिवार के अन्य देवों को शक्र में जाने के लिए मना किया x इसका 1 सा. आयु
शेष है।

गा. 514-5 भ. भातांबिका नगरी गए x वहाँ हरि नामक विद्युत्कुमारेंद्र ने भ. की शाता पूछी
और कहा थोड़े समय में केवलज्ञान होगा x
श्वेतांबिका नगरी x हरिस्सह नामक विद्युत्कुमारेन्द्र आया x
श्रावस्ती गए x वहाँ स्कंद (कार्तिकेय, महादेव के पुत्र) की प्रतिमा की लोग बहुत
पूजा करते हैं x शक्र अवधि का उपयोग देता है x लोग भ. का आदर नहीं करते,
अलंकृत प्रतिमा रथ में रखना होती है x शक्र ने प्रतिमा में प्रवेश किया और भ.
की ओर जाकर वंदन किया x अतः लोगों ने भी भ. की पूजा की।

गा. 516 कौशांबी गए x चंद्र-सूर्य विमान सहित साता पूछने आए x
वाणारसी में शक्र ने साता पूछी x
राजगृह में ईशानेन्द्र, मिथिला में जनक राजा और नागकुमारेन्द्र साता पूछी x

गा. 517 वैशाली गए x 11वां चौमासा x धृतानंद नागेंद्र आया, साता पूछी और कहा- थोड़े
समय में केवलज्ञान होगा x
सूसमार पुर गए x वहाँ चमरोत्पात भगवती सूत्र में से जानना x
भोगपुर गए x माहेंद्र नामक क्षत्रिय खजूर वृक्ष के धड़ से मारने दौड़ा x सनत्कुमारेंद्र
ने उसे भगाया और भ. की साता पूछी x

गा. 518 नंदिग्राम गए x नंदि नामक भ. के पिता का मित्र पूजा करता है x

मेंढिक गाँव गए x रस्सी से बाधते हुए ग्वाले को शक्र रोका, कुमारगाँव की तरह (Pg. No. 202 Last में) xx

M. 519-20 कौशांबी गए x शतानीक राजा, मृगावती रानी x तथ्यवादी धर्मपाठक x सुगुप्त मंत्री, नंदा मंत्रिपत्नी x वह श्राविका थी x मृगावती की सखी थी x धनावह सेठ था x मूला सेठानी थी x भ. उस नगर में पोष वद १ को ऐसा अभिग्रह करते हैं-

1. द्रव्य से - सुपड़े के भाग में उड़द से 2. क्षेत्र से - डेली से एक पैर बाहर, एक अंदर
3. काल से - भिक्षा काल के बाद ~~4. भाव से - दासपन को प्र~~
4. भाव से - दासपन को प्राप्त, सांकल से बंधी, मस्तक मुंडा हो, रोती हो, अट्ठम तप वाली राजकुमारी होवाये तो कल्प्य।

कौशांबी में ही रहे x रोज भिक्षा के लिए जाते हैं x ५ मास निकले x भ. नंदा के घर गए किंतु अभिग्रह पूर्ण न होने से वापस आए x वह समझ गई कि भ. को कोई अभिग्रह है x उसने मंत्री और मृगावती को कहा x शतानीक राजा को पता चला x धर्मपाठक से ७ पिंडैषणा, ७ पानैषणा वि. जानकर छह गोचरी अनुकूल की किंतु भ. ने कहीं भी नहीं लीया x

शतानीक राजा चंपा नगरी के दधिवाहन राजा को बंदी बनाने शतोसंत पहुँच गया x दधिवाहन राजा भाग गया x शतानीक ने युद्धग्रह घोषित किया (जो जिसे मिले वह उसका) x दधिवाहन राजा की धारिणी रानी और वसुमती पुत्री को चोर ने पकड़ा और कहा तुझे मैं पत्नी बनाऊँगा और लड़की को बेच दूँगा x रानी तो मानसिक दुःख से मर गई x चोर ने सोचा - मैंने इसे कहकर मृत्यु करी, यदि लड़की को कहूँगा तो वह भी मर जाएगी, मुझे कुछ नहीं मिलेगा, अतः मैं इसे कुछ नहीं कहूँगा x उसे लाकर बाजार में धनावह सेठ को बेच दी x धनावह ने सोचा - यह जिसकी पुत्री होगी उसे मैं दे दूँगा x वसुमती विनय वि. से सब की प्रिय हुई x मूला को ईर्षा हुई x एकदा उसने चंदना (उसका नाम चंदना पड़ गया था) को सेठ के पैर धोते हुए और सेठ को उसके बाल बांधते हुए देखा x मूला ने सोचा - यदि सेठ इसे परणेगा तो मेरा कुछ नहीं रहेगा अतः उसने सेठ की गैरहाजरी में मस्तक मुंडा, सांकल से बांधकर मारा और रूम में बंद कर दिया x सभी नौकरों को न बोलने के लिए डराया x सेठ ने आकर पूछा, कोई कुछ नहीं बोला x दो दिन तक ऐसे चला x फिर एक वृद्धा दासी को दया आई, उसने सोचा मुझे कितना जीना है अतः उसने खोल दिया x सेठ ने Room खोला x भूख पीड़ित थी x अतः सड़ घर में दिखने से एक सूपड़े में दिए x सांकल तोड़ने के लिए लुहार बुलाने गया x चंदना अपने भूतकाल को याद कर रोने लगी x तभी भ. पधारे x अभिग्रह पूर्ण हुआ x उड़द हीरे x ५ दिव्य प्रगट हुए x उसके बाल वैसे ही हो गए x सांकल दूर गई x देवों ने उसे अलंकृत किया x शक्र आया x १½ करोड़ बरसे x

कौशांबी में बात फैली x सबको उत्सुकता थी x संपुत्त नामक दधिवाहन राज

कंचुकी बांधकर वहाँ लाया गया x उसने पहचाना और कहा x मृगावती बोली - अरे यह तो मेरी बहिन की पुत्री है x मंत्री वि. सब वहाँ आए x
राजा धन लेने लगा x शक्र ने उसे रोका और कहा चंदना जिसे देगी, उसका यह है x चंदना ने कहा - यह धन मेरे पिता का है x श्रेष्ठि ने सभी धन ग्रहण किया x शक्र ने शतानीक को कहा - यह चंदना चरमशरीरी है, जब भ. को ज्ञान उत्पन्न न हो तब तक तू इसकी रक्षा करना, यह भ. की प्रथम शिष्या बनेगी x
शतानीक उसे कन्या अंतःपुर में भेजा (जहाँ राजकुमारियाँ रहती हैं))
भ. का यह 6 मास में 5 दिन कम ~~x~~ जितना तप हुआ x भ. वहाँ से निकले x मूला को लोगों ने धिक्कारा।

टिप्पणक * चंदना मृगावती की बहन की पुत्री कैसे ? - मृगावती की बहन पद्मावती दधिवाहन के साथ परणाई गई थी। धारिणी पद्मावती की शैक्ष्य थी अतः इस संबंध से धारिणी भी मृगावती की बहन हुई।

सत्यगिरीय टीका गा. 521 भ. कौशांबी से सुमंगला गांव पधारे x सनत्कुमारेंद्र साता पूछने आया x सुक्षेत्रा गाँव में माहेन्द्र कल्प का इंद्र साता पूछने आया x पालक नामक गाँव गए x वहाँ धनवंत नामक वणिक् यात्रा के लिए जा रहा था x भ. को अमंगल मानकर तलवार से मारने दौड़ा x सिद्धार्थ व्यंतर ने उसी तलवार से उसका मस्तक छेदा xx

(1) [ज्ञातिरत्ते] * (Pg. No. 221 पर)

गा. 522 चंपा नगरी गए x सोमदत्त ब्राह्मण की अग्निहोत्र शाला में चौमासा रहे x चौमासी तप किया x पूर्णभद्र और माणिभद्र नामक 2 यक्षेंद्र रोज रात को पूजा करते हैं x सोमदत्त ब्राह्मण ने सोचा - यह कोई ज्ञानी होना चाहिए x उसने परीक्षा करने पूछा - आत्मा कौन है ? x भ. - जो 'मैं' इस प्रकार की अनुभूति स्वयं को कराता है, वह x ब्राह्मण - वह कैसी है ? x भ. - सूक्ष्म x ब्राह्मण - सूक्ष्म यानि क्या ? x भ. - जिसे इंद्रिय से नहीं जान सकते x ब्राह्मण - उपदेश और पच्चक्खाण क्या है ? x भ. - उपदेश 2 प्र. का धार्मिक और अधार्मिक, पच्चक्खाण भी 2 प्र. के मूलगुण और उत्तरगुण x ब्राह्मण को भी बोध हुआ

टिप्पणक उपर्युक्त दार्शनिक चर्चा का विस्तार -
ब्राह्मण - आत्मा कौन है, पर्यात् 5 भूतों से अलग है या 5 भूतात्मक है ?
भ. - 'अहं सुखी, अहं दुःखी' इस प्रकार का अहं प्रत्यय करने वाला आत्मा 5 भूतों से अलग है।
ब्राह्मण - वह कैसा है यानि शरीर से अलग कुछ दिखता नहीं है तो उसका स्वरूप कैसा है ?
गा. भ. - वह अमूर्त है। कर्मसंबंध की अपेक्षा कथंचित् मूर्त होने पर भी सूक्ष्म है।

ब्राह्मण - सूक्ष्म क्या है ?
भ. - जो विशिष्ट ज्ञान से रहित छद्मस्थ इंद्रियों द्वारा न जान सके, वह सूक्ष्म।
ब्राह्मण - शब्द, हवा, गंध भी ~~इंद्रिय~~ आँख से न दिखने के कारण सूक्ष्म है ?
भ. - ये शब्दादि सूक्ष्म नहीं है क्योंकि ये इंद्रिय से ग्राह्य है। मैंने कहा जो इंद्रियों से ग्राह्य नहीं है, वह सूक्ष्म। शब्द - हवा - गंध तो क्रमशः श्रोत्र - स्पर्श - घ्राणेंद्रिय से ग्राह्य है।
ब्राह्मण - आपने इंद्रियों को विषय का ग्राहक कहा। अतः आत्मा तो उन्हें ग्रहण करने वाला नहीं है ?
भ. - आत्मा उनका ग्राहयिता है अर्थात् इंद्रिय विषय ग्रहण करती है तब आत्मा इंद्रियों को विषय करने के लिए प्रेरणा देती है। अथवा
करण की विवक्षा करो तो भी अनिष्ट नहीं है क्योंकि वस्तु अनंतधर्मात्मक है। आत्मा विषय को इंद्रियों द्वारा ग्रहण करती होने से ग्राहक है।

* यहाँ मलयगिरी म. ने सोमदत्त क्यों लिखा, वह पता नहीं चलता क्योंकि मूल निर्युक्ति में भी 'सायदत्त' पाठ है तथा अन्य सभी टीकाओं में स्वातिदत्त है ही है और चर्चा में आगे मलयगिरी म. ने भी 'साइदत्त' लिखा है।

मलयगिरीय टीका गा. ५२३ जृंभिक गाँव गए x शक्र आया x नाट्यविधि बताई x फिर कहा - इतने दिन बाद केवल-ज्ञान उत्पन्न होगा x
मिंढिक गाँव गए x चमरेंद्र ने साता पूछकर गया xx

गा. ५२५ धम्माणी गाँव गए x गाँव के बाहर कायोत्सर्ग में रहे x ग्वाला बैल भ. के पास रखकर गाय दोहने अंदर गया x बाहर आकर पूछा - बैल कहाँ है ? x बैल चरते हुए जंगल में चले गए थे x भ. मौन रहे x गुस्से में लकड़ी के दो खीले दोनों कान में इस तरह ठोंके कि अंदर दोनों के छेड़े एक हो गए x बाहर के छेड़े काट दिए, जिससे कोई निकाले नहीं x
अन्य मत - एक खीला इस कान से ठोंककर दूसरे से बाहर निकाला और दो छेड़े काट दिए।
त्रिपृष्ठ के भव ग्वाले के कान में गरम सीसा डलवाया, जिसके फल स्वरूप यह उपसर्ग हुआ x
भ. मध्यम अपापा नगरी गए x सिद्धार्थ वणिक् के यहाँ गए x उस समय उसका मित्र खरक वैद्य वहीं था x दोनों भ. को वंदन - पूजा करते हैं x वैद्य ने कहा - भ. सर्वलक्षण से पूर्ण हैं किंतु शल्य सहित हैं x देखते हुए कान में खीला देखा x भ. बाहर उद्यान में प्रतिमा में रहे x दोनों पीछे - पीछे गए x पुनः औषध लेकर वापस आए x तेल से मालिश जिससे खीले

से निकले x बहुत पुरुषों ने भ. को पकड़कर रखा x संडासी से पकड़कर खींचे x दोनों खीले खून सहित निकले x भ. की चीख निकली जिससे उद्यान और देवकुल बहुत अवाज वाले हुए x मनुष्यों ने भ. को उठाया x संरोहणी औषधी लगाई जिससे तुरंत स्वस्थ हुए x दोनों भ. को वंदन कर गए।
उपसर्ग पूर्ण हुए।

अव. ~~सबसे~~ उत्कृष्ट दुःसह्य परिषह = उपसर्ग -
गा. 525 कटपूतना का शीत उपसर्ग, कालचक्र और बाहर खींचाते हुए खीले, ये तीन उत्कृष्ट सु दुःसह्य थे। अथवा
जघन्यों में उत्कृष्ट दुःसह्य शीत उपसर्ग, मध्यमों में उत्कृष्ट कालचक्र और उत्कृ में उत्कृष्ट खीलो का उपसर्ग।

खीले ठोकने वाला ग्वाला नरी नरक गया। सिद्धार्थ वणिक् और वैद्य देवलोक में गए।
भ. को उपसर्ग ग्वाले से ही शुरू हुए और ग्वाले पर ही खत्म हुए।

जृंभिक गाँव गए x वहाँ अव्यक्त चैत्य यानि जीर्णप्राय और किस देव का है, ऐसा निर्धारित न किया जा सके वैसा चैत्य था (रिप्पणक) x चैत्य के पास ऋजुवालिका नदी के ~~किनारे~~ उत्तर किनारे श्यामक गृहपति के खेत में शाल वृक्ष नीचे गोदोहिका आसन में आतापना लेते, ~~भ. को~~ चौविहार छट्ठ तप से वै. सु. 10 के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चंद्र का योग आने पर पूर्व दिशा छाया जाने लगी तब, पोरसी प्राप्त हुई तब (अर्थात् एक पहर बाकी रहने प ध्यानांतरिका अवस्था में रहे भ. भ. को केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ।

ध्यानांतरिका यानि जब शुक्लध्यान के प्रथम दो भेद पूर्ण हो चुके हों और तीसरे भेद की प्राप्ति हुई न हो।

अव. भ. के तप -
गा. 526-33 9 चौमासी तप, 6 द्विमासिक, 12 मासिक, 12 अर्धमासिक, एक 6 मासिक, ~~एक~~ 2 त्रैमासिक, 2 ढाई मासिक, 2 डेढ़ मासिक।
भद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा, प्रतिमा पारणा किए बिना।
गोचरी के अभिग्रह से युक्त 6 मास में 5 दिन कम।
12 एकरात्रिकी प्रतिमा। प्रत्येक प्रतिमा अट्ठम से, उसमें तीसरे उपवास की रात्रि में प्रतिमा स्वीकारी।

229 छट्ठ किए।
इस प्रकार नित्य भक्त या चौथ भक्त कभी नहीं किया। सभी तप चौविहार*।
(टिप्पणक)

भव. पारणे का कालमान -
गा.534 345 दिन भ. ने पारणे किए।
उत्कुटुक निषद्या में सैंकड़ों प्रतिमाएँ करी।

भव. छद्मस्थ काल -
गा.535-6-7 दीक्षा के दिन को प्रथम दिन गिनो तो 12 वर्ष और 6 मास छद्मस्थ पर्याय।

टिप्पणक → भ. ने जब खीर वि. तेपकृद् आहार किया तब पानी ~~लिया~~ भी भोजन के साथ लिया। उसके सिवाय कभी पानी नहीं वापरा।
अन्य मत - भोजन के समय मिलने वाला क्षीरादि आहार ही भ. ने लिया, अर्थात् जो मिला वो वापर लिया। पानी कभी नहीं वापरा।

~~प्रत्यगिरीय~~
टिका केवलज्ञान होने पर और छाद्मस्थिक ज्ञान नष्ट होने पर रात्रि में देव आए।
गा.538 भ. जानते हैं कि यहाँ कोई दीक्षा नहीं लेगा किंतु यह कल्प है कि जहाँ ज्ञान हो वहाँ जघन्य से भी मुहूर्त मात्र रुकर देशना करना। अतः भ. विशेष से धर्मदेशना में प्रवृत्त नहीं हुए।
वहाँ से 12 यो. दूर मध्यमा नगरी है x वहाँ सोमिल ब्राह्मण है x उसने यज्ञ में 11 उपाध्यायों को बुलाया है x वे चरमशरीरी हैं और गणधर लब्धि उपार्जित की हुई है x भ. देवों के उद्योत से रास्ते को प्रकाशित करते हुए हजार पत्र वाले कमलों पर चलते हुए मध्यम नगरी के महसेन वन पहुँचे xx

गा.539-42 वहाँ भ. का दूसरा समवसरण हुआ x चारों निकाय के देव भ. की महिमा करते हैं x सोमिल ब्राह्मण और सभी लोग यज्ञवाट में एकत्रित हुए।

इति श्रीआवश्यकसूत्रस्य भद्रबाहुस्वामिकृतनिर्युक्तौ प्रत्यगिरीयविवरणमिदं वीरप्रभोः केवलज्ञानकल्याणकं ~~लिखितं~~ यावद्धरिभद्रीयावश्यके चूर्णौ प्रत्यक्षारिहेमचंद्रसूरिकृत-टिप्पणके चाऽपरान्तरैः सह लिखितम्।
स्थानं - जैन सोसायटी सङ्घः, अमदावाद।
दिवसः - चैत्रशुक्लनवमी वि.सं 2073।